असग़र वजाहत की रचनाओं में समाजिक चेतनाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Azgar Vajahat ki rachanaom mein samajik chetana: Ek vishleshanatmak Adhyayan

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

Under the faculty of Humanities

By

निम्मी ए.ए.

NIMMY A.A.

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA

AUGUST 2009

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA

Dr. P.A. Shemim Aliyar, M.A, Ph.D
Professor, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

Phone:
0484-2575954 (Off)
0484-2556575 (Res)

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled 'AZGAR VAJAHAT KI RACHANAOM MEIN SAMAJIK CHETANA: EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN' is an authentic record of research work carried out by Nimmy A.A. under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

Place: CUSAT
Date: 24.08.09

Dr. P.A. Shemim Aliyar
Professor, Department of Hindi

Declaration

I here by declare that the thesis entitled 'AZGAR VAJAHAT KI RACHANAOM MEIN SAMAJIK CHETANA: EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN' is a bonafide record of the orginal work carried out by me under the supervision of Prof. (Dr.) P.A. SHEMIM ALIYAR at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part thereof has been included in any other thesis submitted previously for award of any degree.

Nimmy

NIMMY A.A.

भूमिका

भूमिका

हर रचना दरअसल युग जीवन की उपज होती है। अपने समय के यथार्थ का भोक्ता और साक्षी होने के नाते समय का सत्य ही रचना का भी सत्य है। अपने परिवेश के प्रति ईमानदार होने में ही रचनाकार की प्रतिबद्धता निर्भर रहती है। सार्थक रचना के तहत हमेशा मनुष्य की धड़कन स्पन्दित होती है। लिहाज़ा सृजन की प्रक्रिया जो है, मनुष्य की मुक्ति एवं उसकी गरिमा को बहाल करने की भी प्रक्रिया है।

परिवेशगत यथार्थ के प्रति हर रचनाकार की अपनी खास दृष्टि होती है। उस अहम दृष्टिकोण के तहत समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं पर नज़र रखते हुए मुझे महसूस हुआ कि असग़र वजाहत के साहित्य में निचले तबके के प्रति एक प्रकार की हमदर्दी है। इसी वजह से उनके साहित्य के प्रति मेरा विशेष लगाव रहा है। अतः मैंने अपने शोध कार्य केलिए उनकी रचनाओं को चुना है। उनकी रचनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस शोध प्रबन्ध में संपन्न हुआ है।

अध्ययन की सुविधा केलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहला अध्याय है : 'साहित्य और सामाजिक सरोकार'।

इस अध्याय में मैंने साहित्य और समाज के अटूट संबन्ध को उजागर किया है। साथ ही साहित्य के सामाजिक पक्ष को रेखांकित करने की कोशिश की है।

शोध प्रबन्ध का दूसरा अध्याय है 'असग़र वजाहत का रचना परिवेश'। इसमें असग़र वजाहत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को परखने की कोशिश की गयी है। असग़र वजाहत की जीवन रेखाएँ, सृजनात्मक धरातल, पुरस्कार, रचना संसार, कार्य क्षेत्र, रचना प्रक्रिया की संवेदना आदि पर विचार विमर्श किया गया है। उनके कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, पत्रकार, आलोचक व अनुवादक व्यक्तित्व को रेखांकित किया गया है।

प्रबन्ध का तीसरा अध्याय 'असग़र वजाहत की नाट्य रचनाओं में सामाजिक संसक्तियाँ' है। इसमें हिन्दी नाट्य विकास के विभिन्न पडावों को रेखांकित करते हुए असग़र वजाहत की नाट्य रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक संसक्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय का शीर्षक है 'असग़र वजाहत की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विसंगतियाँ'। इसमें मैंने हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न आन्दोलनों पर सरसरी निगाह डालते हुए असग़र वजाहत की कहानियों में विरेचित सामाजिक विसंगतियों व विद्रूपताओं को उकेरने का प्रयास किया है।

प्रबन्ध का पाँचवाँ अध्याय 'असग़र वजाहत के उपन्यासों में सामाजिक चेतना है।' इसके अन्तर्गत समकालीन हिन्दी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियों के तहत असग़र वजाहत के उपन्यासों की सामाजिक चेतना को आँकने की कोशिश की गयी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार दिया गया है। इसमें शोध द्वारा मिले निष्कर्षों का शब्दांकन किया गया है। उपसंहार के पश्चात् शोध संबन्धित ग्रन्थ सूची समाहित है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की निर्देशिका एवं पदप्रदर्शिका, मातृसमान स्नेहमयी, परम आदरणीया डॉ. पी.ए. शमीम अलियारजी (प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कोची विश्वविद्यालय) के प्रति मैं शुक्रगुज़ार हूँ, जिनके बहुमूल्य सुझावों एवं सलाहों में ही यह अध्ययन पूर्ण हुआ है।

कोची विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर डॉ. एन. मोहनन जी के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने यथा संभव सहयोग दिया।

मेरी 'शोध विशेषज्ञा' डॉ. के. वनजा जी(रीडर, हिन्दी वीभाग, कोची विश्वविद्यालय) के प्रति भी मैं शुक्रिया अदा करती हूँ, जिन्होंने मुझे यथा समय आवश्यक निर्देशन तथा सहायता प्रदान किया।

हिन्दी विभाग, कोची विश्वविद्यालय के सभी गुरुजनों, सहयोगियों एवं मित्रों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोधकार्य के दौरान मेरी मदद की है।

कोची विश्व विद्यालय, हिन्दी विभाग के कार्यालय तथा पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

हिन्दी विभाग, संस्कृत विश्वलिद्यालय (कालड़ी) के सभी गुरुजनों को मैं इस अवसर पर याद करती हूँ और उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे हर कदम पर प्रार्थना एवं प्रोत्साहन के ज़रिए मेरा साथ देनेवाली

नानी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। मेरे माँ-बाप, मामा - मामी, भाई और बहनों की याद करती हूँ। मेरे पति श्री. अनस के परम स्नेह, प्रार्थना व सतत् प्रेरणा के प्रति मैं चिरऋणी हूँ। अन्त में, मैं एक साथ उन सबको याद करती हूँ जिन्होंने जाने-अनजाने मेरी मदद की है।

सर्वोपरि मैं खुदा की कृपा का ऋणी हूँ।

सविनय,

निम्मी ए.ए.

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - २२
तारीख अगस्त २००९

विषय सूची

१. साहित्य और सामाजिक सरोकार १-२०

१.१. साहित्यकार की दायित्व भावना १

१.२. साहित्य की मानवीय संसक्तियाँ ३

१.३. साहित्यकारः आज़ादी का मसीहा ४

१.४. साहित्यः एक बेहतर व्यवस्था की उत्कृष्ट कामना ५

१.५. सत्ता और साहित्यकार की आपसी टकराहट ८

१.६. साहित्य की सामाजिकताः एक ऐतिहासिक झाँकी १०

२. असग़र वजाहत का रचना परिवेश २१-५४

२.१ डॉ. असगर वजाहतः जीवन रेखाएँ २१

२.२ सृजनात्मक धरातल २२

२.३ पुरस्कार २३

२.४ रचना संसार २४

२.४.१ फिल्म - टीवी निर्देशन और लेखन २४

२.४.२ स्वैच्छिक सेवा २५

२.४.३ एक पत्रकार के रूप में २६

२.४.४ यात्रा विवरण २६

२.४.५ यात्राएँ २७

२.४.६ प्रकाशित कृतियाँ २८

२.५ अकादमी संगठनों के सांसद के रूप में ३०

२.६ असगर वजाहतः राष्ट्रीय सीमाओं से परे ३१

२.७ असगर वजाहत कहानीकार के रूप में ३६

२.८ असग़र वजाहतः नाटककार के रूप में ३८

२.९ असगर वजाहत उपन्यासकार के रूप में ४०
२.१० अनुवादक ४२
२.११ आलोचक ४३
२.१२ टेलीविज़न लेखन ४४
२.१३. यात्रा संस्मरण ४५
२.१४ रचना धर्मिता ४६
२.१५ एक प्रतिबद्ध रचनाकार ५३
२.१६ भाषा संबन्धी मान्यताएँ ५४

३. असग़र वजाहत की नाट्य रचनाओं में सामाजिक संसक्तियाँ ५५-१३२

३.१. हिन्दी नाटकः विकास के भिन्न पडाव ५५
३.१.१. कथ्य चेतना के विभिन्न आयाम ५८
३.१.२. नये शिल्प ६१
३.२. असग़र वजाहत के नाटक ६८
३.२.१. ओ जन्म्या ई नईं: मज़हबी मतवालापन के विरुद्ध गूँजती आवाज़ ६८
३.२.१.१. विस्थापितों की अन्दरूनी तकलीफ़ ७२
३.२.१.२. सच्ची मानवीयता का पाठ ७४
३.२.१.३. मानव धर्म का संदेश ७६
३.२.१.४. लेखक का तटस्थ दृष्टिकोण ७८
३.२.२. समिधाः धर्म का बाज़ारीकरण ७९
३.२.२.१. धर्म बनाम भ्रष्टाचार ८३
३.२.२.२. पत्रकारिता के क्षेत्र में नैतिक गिरावट ८६
३.२.२.३. अभिशप्त नारियों की मज़बूरी ८७
३.२.३. सबसे सस्ता गोश्तः साम्प्रदायिकता की डरावनी सूरत ८८
३.२.३.१. सबसे सस्ता गोश्त ८८
३.२.३.२. फर्क कहाँ है ९०
३.२.३.३. मुजरिम कौन है ९१

३.२.३.४. दोनों मारे जायेंगे ९२
३.२.४. इन्ना की आवाज़ः इनसानियत का गला घोंटनेवाली बर्बर सत्ता ९४
३.२.४.१. सत्ता के निरंकुश शासन का दस्तावेज़ ९९
३.२.४.२. मानव मूल्यों की हत्या १०२
३.२.४.३. आम आदमी के ख़िलाफ साजिश १०३
३.२.४.४. सत्ता और कलाकार की टकराहट १०४
३.२.४.५. आत्मीय संबन्धों में आयी हुई दरारें १०४
३.२.५.वीरगतिः दौलत को सलाम करती दुनिया १०५
३.२.५.१. आर्थिक प्रभाव में झुलसता मानव १०८
३.२.५.२. पूँजीवादी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य १०९
३.२.५.३.वर्तमान समाज में धनपतियों की प्रतिष्ठा ११०
३.२.५.४. अर्थ केन्द्रित समाज पर करारा व्यंग्य १११
३.२.५.५. मौजूदा भ्रष्ट अर्थ व्यवस्था के ख़िलाफ
असफल विद्रोह ११२
३.२.६. फिरंगी लौट आयेः आज़ादी की फ़ज़ीहत ११४
३.२.६.१. सत्ताधारियों की अवसरवादिता और स्वार्थ नीति ११७
३.२.६.२. धर्म परिवर्तन को लेकर दंगे - फिसाद ११९
३.२.६.३. वर्तमान न्याय व्यवस्था पर हस्तक्षेप ११९
३.२.७.हड्डीः राजनीति की छीना झपटी १२०
३.३. असग़र वजाहत के नाटकों की शिल्पगत विशेषताएँ १२२

४. असग़र वजाहत की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विसंगतियाँ...................................... १३३-२२१

४.१. हिन्दी कहानीः विकास के भिन्न दौर १३३
४.२. कहानीः भिन्न आन्दोलनों के दौर में १३८
४.३. असगर वजाहत की कहानियाँः सृजनगत परिवेश १४३
४.४. असग़र वजाहत की कहानियाँः वर्गीकरण १४४
४.४.१. फिरकापरस्ती के विपक्ष में १४५

४.४.१.१. ज़ख्म १४६

४.४.१.२. मैं हिन्दू हूँ १५२

४.४.१.३. तेरह सौ साल का बेबी कैमिल १५५

४.४.१.४. सारी तालीमात १५९

४.४.१.५. गुरु - चेला संवाद १६२

४.४.१.६. शाह आलम कैम्प की रूहें १६४

४.४.१.७. मेरे मौला १६५

४.४.१.८. शीशों का मसीहा कोई नहीं १६७

४.४.१.९. उनका डर १६८

४.४.२. गंदी और गलीज़ राजनीति से जूझती कहानियाँ १६९

४.४.२.१. नया गणित १७०

४.४.२.२. मुर्दाबाद.. १७३

४.४.२.३. मुश्किल काम...१७५

४.४.२.४. स्विमिंग पूल १७७

४.४.२.५. पागलखाना १७९

४.४.२.६. बनना १८१

४.४.२.७. दिल्ली पहूँचना है १८२

४.४.३. भूमण्डलीकरण की साजिश का पर्दाफ़ाश करनेवाली कहानियाँ १८३

४.४.३.१. गिरफ़्त १८४

४.४.३.२. विकसित देश की पहचान १८७

४.४.३.३. नाच १८७

४.४.३.४. श्री. टी. पी. देव की कहानियाँ............................... १८८

४.४.३.५. आग १८९

४.४.३.६. सरगम कोला १९०

४.४.४. नारी की बेबसी की अभिव्यक्ति करनेवाली कहानियाँ १९१

४.४.४.१. लड़कियाँ १९२

४.४.४.२. अपनी अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास १९४

४.४.४.३. ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ १९५
४.४.५. अन्य सामाजिक समस्याओं से जुड़ी कहानियाँ १९७
४.४.५.१. ज़िम्मेवारी १९७
४.४.५.२. ऊसर में बबूल १९८
४.४.५.३. आठवाँ आश्चर्य...२००
४.४.५.४. पन्नू..२०१
४.४.५.५. तख्ती २०२
४.४.५.६. होज वाज पापा (कैसे हो पापा ?) २०४
४.४.५.७. केक २०५
४.४.५.८. गवाही २०६
४.४.५.९. खूँटा... २०८
४.४.५.१०. चन्द्रमा के देश में २०९
४.४.५.११. राजधानी के नीचे २१०
४.४.५.१२.हरिराम और गुरु - संवाद................................. २११
४.४.५.१३. मुक्ति..२१२
४.४.६. लघु कहानियाँ २१३
४.४.६.१. कवि का एलान...२१३
४.४.६.२. कवि और उनकी बिल्ली २१३
४.४.६.३. कवि की भोपाल - यात्रा २१३
४.४.६.४. कवि और लोटा २१३
४.४.६.५. कवि के दिन फिरे २१४
४.४.६.६. राजा २१४
४.४.६.७. योद्धा २१४
४.४.६.८. बंदर २१४
४.४.६.९. बेमौसम की बारिश में २१५
४.४.६.१०. चार दिशाएँ २१५
४.४.६.११. शेर २१५
४.४.६.१२. डंडा २१६

४.४.६.१३. पहचान... २१७

४.४.६.१४. ज-१ २१७

४.५. असग़र वजाहत की कहानियों में शिल्प विधान २१८

५. असग़र वजाहत के उपन्यासों में सामाजिक चेतना.... २२२-२९२

५.१ हिन्दी उपन्यास विकास के विभिन्न मोड़ २२२

५.२. असग़र वजाहत के उपन्यास २३१

५.२.१. रात में जागनेवालेः बनते-बिगड़ते पारिवारिक रिश्ते २३१

५.२.२ पहर दोपहरः फिल्मी दुनिया के पैंतरे २३७

५.२.३.सात आसमानः सामन्ती सभ्यता का उत्थान और पतन.........२४३

५.२.४ कैसी आगी लगाईः एक विश्वविद्यालयी परिसर की धड़कनें....२५८

५.३ असग़र वजाहत के उपन्यासों का शिल्प पक्ष............................ २८७

उपसंहार २९३-३००

ग्रन्थ सूची.. ३०१-३२०

पहला अध्याय:

१

साहित्य और सामाजिक सरोकार

पहला अध्याय:

साहित्य और सामाजिक सरोकार

१.१. साहित्यकार की दायित्व भावना

साहित्य समाज की उपज है। अतएव सामाजिक संसक्तियों से उसका सरोकार बेहद गहरा है। जिस साहित्य में सामाजिक सापेक्षता की कमी हो वह साहित्य कहने लायक नहीं होता। बहरहाल साहित्य की सबसे बड़ी प्रसंगिकता सामाजिक होने या सामज से जुड़ने तथा समाज को अपने से जोड़ने में है, तभी साहित्य के जीवन सापेक्ष मूल्य व्यापक फलक पर कारगर और उपयोगी हो सकेंगे। तभी साहित्य अपनी विशेषताओं, अपने मुद्दों एवं अपनी विलक्षणताओं के साथ अपना महत्त उद्देश्य प्राप्त कर सकता है। ऐसे में साहित्यकार का दायित्व बदतर समाज को बेहतर बनाने का हैं। प्रेमचन्द के अनुसार 'साहित्यकार का लक्ष्य महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, वह देश - भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं। बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने-वाली सचाई है।' [१] लिहाज़ा साहित्यकार मात्र अपना जीवन ही नहीं जीता, बल्कि अपने समय और समाज की, आनेवाले समय व समाज को भी वह जीता है।

---

(१) प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ - २०

समाज में सर्वदा दो शक्तियाँ मौजूद है। एक शक्ति समाज को अधोन्मुखी बनाने की भरसक चेष्टा करती हैं तो दूसरी, उसे पार करके ऊर्धोन्मुखी बनाने में समक्ष रहती हैं। साहित्यकार को चाहिए कि वह दूसरी शक्ति का तरफदार बनें।

'जो साहित्यकार मानव नियति के संदर्भ में राष्ट्र के नव निर्माण के प्रति अपना दायित्व अनुभव करता है, उसकेलिए सबसे प्रमुख चिन्ता हो जाती है - सामान्य जन की मुक्ति। भारत की स्वतन्त्रता तब तक सार्थक नहीं है जब तक सामान्य जन स्वतन्त्र नहीं है। सामान्य जन के स्वतन्त्र होने का अर्थ यही नहीं है कि उसे भरपेट भोजन, ज़रूरत के मुताबिक कपड़ा मिल जाय। यह भी है तथा इसके अलावा और बहुत कुछ भी है। उसके मानस में जो अन्ध रूढ़ियाँ है, कुण्ठाएँ हैं, अविवेक है, मूर्च्छना हैं, मृत परम्पराएँ आदि प्रवृत्तियाँ है, जिसके कारण वह युग युग से दास बनता चला आया है। उनसे भी उन्हें मुक्त करना है'।[१]

गौरतलब है कि आज़ादी केवल बाह्य परिवेश ही नहीं वरन् एक आन्तरिक मूल्य भी है। जब रचनाकार साधारण जनता के स्वातन्त्र्य का दायित्व अपने ऊपर लेता है तो वह तमाम बाह्य व आन्तरिक जटिल इनसानी हक़ीक़त की पृष्ठभूमि में उसे आत्मसात् करता है। इसके संबन्ध में भीष्म साहनी की प्रतिक्रिया इस प्रकार है 'साहित्य का सरोकार चूँकि मानव स्थिति से होता है, इसलिए वह मानव मूल्यों से गहरी मानवीय सहानुभूति से, मनुष्य के

---

(१) मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती, पृ - ७४

कुशल क्षेम की चिन्ता से, मानवता के प्रति गहरे आत्मीय लगाव से प्रेरित होता है। मनुष्य के कुशल क्षेम की इसी चिन्ता से लेखक सत्य और न्याय की चिन्ता केलिए प्रेरित होता है।'[१]

१.२. साहित्य की मानवीय संसक्तियाँ

युग चेतना से जुड़े साहित्य में ही ज़िन्दगी का संस्पर्श देख सकते हैं। अतः समूचे विश्व में मानव पीड़ा एवं संघर्ष के वक्त कला और साहित्य ने सर्वथा सार्थक भूमिका निभायी है। काल और देश की सीमा का उल्लंखन करते हुए ऐसी श्रेष्ठ रचनाओं ने लगातार मानव मुक्ति के द्वार खोले हैं। अतः उन रचनाओं में इनसानियत का अभूतपूर्व चित्रण मिलते हैं। मानव विरोधी जालसाज़ी एवं ताकतों से निजात पाने की क्षमता साहित्य में होनी चाहिए।

सच्चे साहित्य में वाणिहीनों को वाणी देने, अपने अधिकारों से वाकिफ कराने की कोशिश ज़ारी है। साहित्य को जीवन्त रहने का एक ही मार्ग या उपाय यह है कि वह मनुष्य से जुड़े, ज़मीनी हक़ीक़तों से जुडे। साहित्य जीवन के विस्तृत फलक में उतरकर ठोस सच्चाइयों को उलट - पुलटकर उन तमाम खतरों से सतर्क रहने की चेतावनी मनुष्य को देता है जो मानवीयता को दबाने की कोशिश करते हैं। 'साहित्य, संसार को देखने की एक संवेदित, समावेशी दृष्टि है, देश हो या व्यक्ति अथवा समाज-यह हर एक के ज़िन्दा रहने की वकालत है।' [२]

---

(१) अपनी बात - भीष्म साहनी पृ १३४

(२) समय समाज साहित्य - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ - ९९

१.३. साहित्यकारः आज़ादी का मसीहा

यदि कोई अपनीचौतरफा ज़िन्दगी के प्रति संवेदनशील है तो उसके मन में उस ज़िन्दगी की खुशहाली केलिए अदम्य इच्छा होती है। तत्फल वह अपने समाज के कल्याण हेतु कोई न कोई रास्ता अपनाता है। कोई राजनीति में सजग होने लगता है, कोई समाज सेवा में तो कोई जनहित केलिए सृजनरत होता है। राजनीतिज्ञ व समाज सेवी अगर पदभ्रष्ट हो जाएँ तो साहित्यकार उसे सही रास्ता दिखाता है। अतः समाज के प्रतिबद्ध लेखक टूटते हुए, पराजित होते हुए उत्पीडित एवं असहाय जन को अपने पैरों पर खड़े होने की उत्प्रेरणा देता है। लिहाज़ा 'रचनाकार की प्रतिबद्धता दुहरी होती है। एक स्तर पर वह अपने प्रति प्रतिबद्ध होता है, अर्थात् अपने अनुभव, अपने विवेक और अपनी रचना के प्रति। दूसरे स्तर पर वह उस समय, परिवेश या जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होता है जिसके बीच सांस ले रहा होता है।' [१]

साहित्यकार एक निष्पक्ष चिन्तक के बतौर तटस्थ होकर सामाजिक संबन्धों का विश्लेषण करता है। वह धर्म, कला व संस्कृति का विश्लेषण करके समाज को नए मूल्यों से प्रभावित करता है। परम्पराओं तथा रूढ़ियों से लगातार संघर्ष करके नई मान्यताओं व प्रतिमानों की सृष्टि करता है जोकि मानव व समाज की मुक्ति केलिए ज़रूरी है। 'जो रचनाकार सामाजिक जीवन की गहराइयों में जितना ही अधिक उतर सकने की क्षमता रखता है, उसकी रचना के औज़ार उतने ही तीक्ष्ण होते हैं और उसकी रचना उतना ही अधिक जीवन्त होती है।'[२]

---

(१) रचना के सरोकार - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ १११

(२) साहित्य और सामाजिक संदर्भ - शिवकुमार मिश्र, पृ - ११

वस्तुतः साहित्यकार का सीधा सरोकार मानव से होता है। मानव की रग-रग से पहचान होने वाला ही सच्चा साहित्यकार कहलाता है। सर्जक मूलतः ज़िन्दगी से जुड़ा होता है। मानव जीवन को ही वह आँकता है, उसी में ही वह सत्य की खोज करता है और उसकी गहराई में पैठकर ही वह जीवन - मूल्यों का अनुसंधान करता है। इसलिए 'सर्जन से जुड़े व्यक्ति में तीसरी आँख का होना ज़रूरी है। यह उनकी बनावट का अनिवार्य अंग है। चूँकि साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है, वे उसी के सुख - दुख की बात करते हैं, तो सामाजिक चेतना का ज्वार उसमें कुछ अधिक पैना होता है।'[१]

१.४. साहित्यः एक बेहतर व्यवस्था की उत्कृष्ट कामना

साहित्य और समाज के आपसी रिश्ते को विभिन्न रूपों में पूर्व व पश्चिम के विद्वतजन सैकड़ों वर्षों से मानते आये है। इस संबन्ध की वैज्ञानिक व्याख्या मार्क्स ने अपनी किताब 'क्रिटीक ऑफ पोलीटिकल इकनॉमी' की भूमिका में स्पष्ट रूप से दी है। सामाजिक उत्पादन हेतु मानव अपनी इच्छा व अनिच्छा पर निर्भर हुए बगैर सामाजिक संबन्ध स्थापित करते हैं। ऐसे संबन्ध मात्र उत्पादन की भौतिक शक्तियों पर निर्भर रहते हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का जमाव समाज का आर्थिक ढाँचा कहलाता है। लिहाज़ा इसी नींव के ऊपर कानून और राजनीति का महल खड़ा किया जाता है।

समाज की आर्थिक व्यवस्था के आधार पर संस्कृति का प्रासाद बनाया जाता है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इस आर्थिक व्यवस्था में उत्पादन

---

(१) नासिरा शर्मा - 'साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है', साहित्य अमृत - फरवरी २००२, पृ - ३२

संबन्धों से उत्पादक शक्तियों का विकास होता है या वे उसके विकास में बाधक है। उदाहरण केलिए सामन्ती व्यवस्था में उत्पादक शक्तियाँ किसान है। भूमि व्यवस्था का आधार ज़मीन्दारी प्रथा हैं। ज़मीन्दार व किसान का उत्पादन संबन्ध उत्पादक शक्ति या किसान के विकास में बाधक होता है। दोनों में आपसी टकराहट होती है और यह टकराहट संस्कृति में भी झलकती है। इस सामाजिक वैषम्य की रोकथाम साहित्यकार का कर्तव्य हैं। तभी मनुष्य और समाज की मुक्ति मुमकिन है।

'जो साहित्य मनुष्य द्वारा मनुष्य के उत्पीड़न को छिपाता है, संस्कृति की झीनी - बीनी चादर बुनकर उसे ढाँकना चाहता है, वह प्रचारक न दिखते हुए भी वास्तव में प्रतिक्रियावाद का प्राचारक होता है। जो साहित्य यथार्थ जीवन के इस सत्य को प्रकट करता है, वह वास्तव में गम्भीर साहित्य होता है और मनुष्य के हृदय में रस - सृष्टि करने के साथ - साथ उसे विकास की प्रेरणा भी देता है।' [(१)]

विज्ञान मनुष्य जीवन को भौतिक सुख सुविधाओं से भर देना चाहता है। तत्फल वह नये - नये खोजों के पीछे लगातार जुटा रहता है। वह मानवीयता की चिन्ता किए बगैर समाज को नई आविष्कृत वस्तुएँ प्रदान करने में तत्पर रहता है। सत्ता के आदेशानुसार वह घातक औज़ार भी निर्मित करता है। चूँकि सत्ता के वरदान के बगैर विज्ञान आगे नहीं बढ़ सकता। सत्ता के हाथों की कठपुतली बनकर विज्ञान निरन्तर मानव विरोधी हथकण्डे अपनाते हैं। लिहाज़ा वे ऐसी सभ्यता को कायम करते हैं जहाँ खोखली चमक - दमक होती है, चन्द लोगों केलिए सुविधाएँ ज़रूर होती है परन्तु मानव मात्र केलिए रोग, कष्ट व

---

(१) मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य   रामविलास शर्मा, पृ - २९

बेचैनी में कमी हरगिज़ नहीं होती। ऐसा लगता है कि विज्ञान - आधारित आज की सभ्यता मानव केलिए हानिकारक है। ऐसी हालत में चैन भरी ज़िन्दगी से मानव दरकिनार हैं।

विज्ञान के राक्षसी पंजों से मनुष्य की मुक्ति, मानवता को बहाल करने की क्षमता साहित्य, कला और दर्शन में निहित हैं जहाँ विज्ञान सुविधा के साधन निर्मित करता है वहाँ साहित्य, कला व दर्शन जीवन - मूल्य निर्मित करते हैं। आम जनता की खुशहाली को तरजीह देने की कूवत साहित्य, कला और दर्शन में होती है। 'ज़ाहिर है कि अपने अस्तित्व हेतु हर मोल चुकाने और हर रास्ता अख्तियार करने केलिए तत्पर सत्ता से टकराने और जूझने केलिए रीढ़ ही हड्ड़ी की मज़बूती की ज़रूरत होती है, जो अधिकांश रचनाकारों में सिरे से ही गायब होती है।' (१)

साहित्य में देश के नव निर्माण के साथ सभ्यता संस्कृति और विकास के बीज निहित होते हैं। जीवन में साहित्य की हैसियत के संबन्ध में चर्चा करते वक्त डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदजी ने सूचित किया है कि मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। एक गुलाम देश की जनता अपनी ज़िन्दगी की हर घड़ी और क्षण अपनी राजनीतिक पराधीनता की छटपटाहट को महसूस करती है। अतएव राजनीति का सवाल उसकी ज़िन्दगी के तमाम वाकयों में घुल-मिल जाता है। साम्राज्यवाद एक आर्थिक और राजनीतिक ताकत है। मुल्क में अपने पैर जमाये रखने केलिए उसने फौज, पूलिस, कचहरी, शिक्षालय, ज़मीन्दार, मुनाफाखोर आदि वर्गों व संस्थाओं द्वारा समूचे देश को जकड़ रखा था। पग-पग पर इसकी कठोरता का परिचय मिलता रहता है।

---

(१) समकालीन साहित्य चिन्तन - डॉ. राम दरश मिश्र, डॉ. महीप सिंह, पृ - ३५

अतः दूसरे लोग इस पराधीनता का आदी भले ही हो जायें साहित्यकार जो कि समाज का सबसे भावुक, विचारशील और सहृदय प्राणी होता है, अपने साहित्य में इस प्रतिक्रिया को व्यक्त किये बगैर चैन की सांस नहीं ले सकता। लिहाज़ा जीवन की पूर्णता को चाहने वाला, अपने साहित्य को समाज का दर्पण बनाने वाला रचनाकार समाज की सबसे कठोर वास्तविकता, राजनीतिक पराधीनता के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। बहरहाल 'लेखकों केलिए आज ज़रूरत ऐसे साहित्य के सृजन की है जो कोरे मनोरंजन केलिए न लिखा गया हो, जिसके लिखने का उद्देश्य लेखकीय कैरियर का निर्माण और व्यक्तिगत स्वार्थ - लिप्सा न होकर बहुसंख्यक जन - समुदाय के सुख - दुःख, आशा - आकांक्षा और विजय - पराजय की सार्थक अभिव्यक्ति हो, जो जीवन के प्रति लोगों की सक्रियता और विश्वास को बहाल रखते हुए उनकी चेतना को जुझारू, आशावादी और आस्थावादी बनाता चला जाए।' (१) समाज की हर धड़कन को महसूस करनेवाला साहित्यकार नैतिकता की दृष्टि से अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निबाहता है।

१.५. सत्ता और साहित्यकार की आपसी टकराहट

हमेशा सत्ता और लेखक के बीच टकराहट हेती है। सत्ता की नीति की कटु आलोचना करनेवाले रचनाकारों पर हमेशा सत्ता की वक्र दृष्टि पड़ती है। सत्ता की नींद हराम कर देनेवाले लेखकों पर स्वतन्त्रता के पहले और बाद में सत्ता द्वारा हस्तक्षेप रहा है। हर युग में, हर देश में उसको इच्छानुसार लिखने की स्वतन्त्रता नहीं रही। दरअसल पराधीन भारत में उसे सृजन के अधिकार

(१) साहित्य की सामाजिकता - मिथिलेश्वर, पृ - ६० ६१

केलिए बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा है। गुलामी की ज़जीरों में जकड़े अवाम् की बदहालत को वाणी देनेवाले लेखक, उससे भी ज़्यादा पराधीनता पाश में बन्धे रहे। स्वाधीन भारत में भी लेखक की स्वतन्त्रता पर हस्तक्षेप देखने को मिलते हैं। सत्ता ने हमेशा उसपर बेदखली के जाल बिछाए है।

आपात्काल में साहित्यकार को ऐसे हालात से गुज़रना पड़ा। ऐन वक्त पर संप्रेषण के तमाम साधनों पर व्यवस्था का अंकुश लग चुका था। लेखक की अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता पर ताला बांधा गया था। इसके संबन्ध में कमलेश्वर की प्रतिक्रिया है 'सेंसरशिप उस निरंकुशता का सबसे बड़ा सबूत था। यह सबूत आपात्स्थिति लागू होते ही सामने आ गया था और उसकी ज़्यादतियाँ साफ झलकने लगी थी, पर आपात्काल की ज़्यादतियाँ तो आपात्स्थिति समाप्त होने के बाद सामने आयी।'[१] इसकी मिसाल इतिहास के पन्नों में भरी पडी है।

आपात्काल में कई साहित्यकारों को इन्दिरा गाँधी के खिलाफ बोलने के जुल्म में सींखचों में रहना पड़ा। कश्मीर में पाश की गिरफ्तारी और उसे कैदी बनाने के पीछे सत्ता की तानाशाही ही रही। 'ब्लाकआउट' के कहानीकार बल्लभ सिद्धार्थ को खतरा मोल देना पड़ा। 'तर्पण' तथा 'शपथ' सरीखे कविताओं के रचयिता नागार्जुन को काल कोठरी में डाला गया। इस तरह कला और संस्कृति कर्म को ज़जीरों में जकड़ने की साजिश आज भी जारी है।

हाल ही में हबीब तनवीर के द्वारा निर्देशित असग़र वजाहत के नाटक 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जन्म्याई नई' के प्रस्तुतीकरण पर छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा रोक लगा दी गई। 'सृजन' के संपादक हेमलता को दंडित करना

---

(१) मेरा पन्ना - कमलेश्वर, पृ-६६

और भाडे के गुंड़ों द्वारा सफदर हाशमी की निर्दय हत्या सत्ता के अनैतिक कर्तूतों का दस्तावेज़ है।

निडर साहित्यकार कभी सत्ता से समझौता करने केलिए तैयार नहीं है। सत्ता द्वारा बुने जानेवाले सुविधाओं के जाल में वह कभी नहीं फँसता और सत्ता की नीति या इच्छा के मुताबिक कलम चलाने केलिए भी वे तैयार नहीं होते। इसलिए सच्चे साहित्यकार केलिए राज्याश्रय ठंठी कब्र या प्राणशोषक समाधि के जैसा दुस्सह होता है। सत्ता की बर्बरता के खिलाफ अपना प्रतिशोध प्रकट करके जिहाद छे ड़नेवाले लेखकों में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवकुमार मिश्र, ज्ञानरंजन, महादेवी वर्मा, आलोक धन्वा, राजेन्द्र यादव, नामवर सिंह, नमिता सिंह, मलयश्री हाशमी, रमणिका गुप्ता, हबीब तनवीर, भीष्म साहनी, रमेश उपाध्याय, फैसल अलकाजी, कीर्ति जैन और महाश्वेता देवी उल्लेखनीय है।

१.६. साहित्य की सामाजिकताः एक ऐतिहासिक झाँकी

बहरहाल साहित्य का इतिहास इस बात का गवाह है कि सामाजिक सद्भाव से जुड़ी रचनाओं ने ही कालातीत का परिचय दिया है। समाज तथा साहित्य का यह रिश्ता अनादि काल से चला आ रहा है। आदि कवि वाल्मीकि से लेकर अद्यतन युग के साहित्यकारों तक यह सिलसिला जारी है। आदि कवि वाल्मीकि के ज़ुबान से जब 'मानिषाद' शब्द निकले तो वह मात्र निषाद को नहीं बल्कि समस्त उत्पीड़कों, एवं अत्याचारियों को चेतावनी दे रहा था।

आदिकालीन साहित्य यद्यपि सामाजिक सारोकार की दृष्टि से उतना

चर्चित नहीं हुए है तदापि तत्कालीन समाज को उभारने में उस समय का साहित्य बेहद सफल हुए है। आदिकाल के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो की पहेलियाँ जन-जीवन के साथ इतनी घुल-मिल गई है कि उसे समाज से पृथक नहीं रखा जा सकता। वे एक प्रगतिशील विचारक और अपने समय के प्रतिभा संपन्न सृजनशील कलाकार थे। मानव की आत्मिक गुलामी के बरखिलाफ लड़ने में वे कभी नहीं थके। 'उन्होंने सामान्य जनता के गुणों के पक्ष में बोलने का बीड़ा तो उठाया और इसमें पादशाह (राजा) या दरवेश की परवाह नहीं की, और मानव प्रतिष्ठा केलिए अपनी गहरी चिन्ता के सामने उन्होंने किसी धार्मिक नखरे को नहीं टिकने दिया'।[१] राजा के गले का हार देखकर उनको ऐसा लगा कि वह स्वर्णाभूषण नहीं बल्कि पीड़ितों के आँसू रूपी मोती से पिरोया गया हार है। उन्होंने जो मानववादी लहर चलायी वह तमाम भारतीय साहित्य में खूब बढ़ी और आज भी चल रही है। अतः उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता आज भी चर्चित है।

भक्तिकाल के प्रमुख हस्ताक्षर जानते थे कि सामाजिक सांस्कृतिक रूपान्तरण में रचना की कारगर भूमिका होनी चाहिए और उन्हें इसका सही मार्ग भी ज्ञात था। उन्होंने भक्ति के द्वारा विराट जन समूह की भावनाओं को अभिव्यक्ति दी। अपने से बाहर निकलकर बृहत्तर अनुभव संसार में फैलने की आकांक्षा भक्ति काव्य को सर्वजन सुलभ बनाती है और उसकी विश्वसनीयता स्थापित होती है। उस मध्यकालीन वातावरण में कबीर की रचनाएँ कई मोर्चों पर एक साथ संघर्ष करती है। सभी बन्धनों और चौतरफा शोषणों के खिलाफ लगातार संघर्ष करते कबीर युग-युगान्तकारी कवि है। फिलहाल कबीर भारतीय

---

(१) प्रगतिशील भारतीय साहित्यकारों के छविचित्र - डॉ. वी. आर. शर्मा, पृ-२२

साहित्य और इतिहास में एक भक्त कवि ही नहीं, बल्कि वह कभी न खत्म होनेवाली संघर्ष चेतना का प्रतीक है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदीजी ने सूचित किया है कि हिन्दी साहित्य के हज़ार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ है। 'मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सबकुछ को झाड़-फटकार कर चल देनेवाले तेज़ ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है। उसी ने कबीर की वाणियों में अनन्य साधारण जीवन रस भर दिया है।' (१) तुलसीदास का दार्शनिक दृष्टिकोण कहीं भी समाज से विमुख नहीं है, बल्कि वह जीवन को सुखी और सार्थक बनाने केलिए सक्षम है।

रीतिकालीन काव्य सामाजिक चेतना की दृष्टि से कोई साकारात्मक पक्ष नहीं अख्तियार करता। रीतिकाव्य की परम्परा शाश्वत साहित्य की परम्परा नहीं थी। वह विशेष हालातों में फूली फली थी और सामन्ती व्यवस्था के साथ उसका विनाश भी अवश्यम्भावी था। 'हिन्दी में रीतिकाव्य प्रायः उपेक्षा का ही भागी रहा है। द्विवेदी युग के आलोचकों ने इसको नीतिभ्रष्ट कहकर तिरस्कृत किया, छायावाद के प्रतिनिधि कवि लेखक इस कविता को अति - ऐन्द्रिय और स्थूल कहकर हेय समझते रहे और आज का प्रगतिशील समीक्षक इसको सामन्तवाद की अभिव्यक्ति मानकर प्रतिक्रियावादी कविता कहता है।' (२) लिहाज़ा कालजयी साहित्य की कोटि में रीतिकालीन साहित्य को नही ले सकता।

साहित्येतिहास में आधुनिक काल वह समृद्धि का युग है जहाँ आकर साहित्य की विविध विधाओं का प्रणयन हुआ। सामाजिक चेतना की दृष्टि से

---

(१) कबीर - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ १७०
(२) रीति - काव्य की भूमिका - डॉ. नगेन्द्र (भूमिका)

भक्तिकाल के बाद आधुनिक काल विशेष श्रेय रखते है। भारतेन्दु युग में यह चेतना सामाजिक द्वन्द्व की तरह थी। द्विवेदी युग में समाज सुधार के रूप में इसकी अभिव्यक्ति हुई तो प्रगतिवादी युग में मार्क्सवादी विचार धारा के आवरण में प्रकट हुई। स्वातन्त्रोत्तर भारतीय साहित्य में यह सरोकार ज़िन्दगी की गहराई से जुड़ने लगे। साहित्य की प्रत्येक विधा में सामाजिक सरोकार की रश्मियाँ प्रज्ज्वलित है। कविता हो, कहानी, उपन्यास हो या नाटक, सब समय सापेक्ष है।

भारतेन्दु ने साहित्य की सभी विधाओं में गुलामी के ज़जीरों में छटपटाती मानव संवेदना को उजागर करने की बलवती कोशिश की है। भारत की भाषा और संस्कृति की सुरक्षा हेतु उन्होंने काव्य सृजन किया। यही नहीं पत्र-पत्रिकाओं द्वारा स्त्री शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने समाज और साहित्य की आवश्यकताओं को पहचाना और उसका निर्वाह भी सफल ढंग से किया। चूँकि 'वह जानते थे कि बिना इस विशाल जन-समुदाय में आन्दोलन किये देश की उन्नति असम्भव है'।[१] द्विवेदीयुगीन साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय - सांस्कृतिक जागरण ही था। भारतेन्दु - युग में इस जागरण ने साहित्य धारा को नये पथ पर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम किया था। द्विवेदी युग में यह जागरण प्रत्येक साहित्य - विधा का अन्तर्वर्ती प्रवाह बन गया। यहाँ राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य परिलक्षित है।

छायावाद ने उस मानव शक्ति का निरूपण किया जो विश्व के मानवतावाद की पहचान बनकर वर्तमान कविता को अद्‌भुत विस्तार दिया। परन्तु छायावाद

---

(१) भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा - रामविलास शर्मा, पृ - १२

का युवा मन इतनी सामाजिक विसंगतियों के रहते हुए भी अपनी मर्यादाओं के अनुशासन में अन्तर्मुखी हो गया। दरअसल छायावादी कवियों की पलायनवादी मानसिकता भी सामाजिक वैषम्य का परिणाम है। छायावादी कविता में जो निराशा, वेदना व पलायनवाद दिखाई पड़ते है वह एक हद तक पराधीनता का असर ही है। डॉ. नमवर सिंह के अनुसार 'वस्तुतः छायावाद की मूल स्वच्छन्द भावना जगत के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण था जो केवल कविता में ही नहीं बल्कि उस युग के उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि सभी साहित्य रूपों में अभिव्यक्त हुआ।' [१]

छायावादी चार स्तंभों (पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी) में क्रान्तिकारी कवि निराला तत्कालीन सामाजिक अन्तर्विरोधों के खिलाफ़ दरपेश है। उनका मानवतावाद हिन्दी साहित्य में उनके अभ्युदयकाल से शुरू होता है और अन्तिम दौर तक निरन्तर गहरा होता जाता है। रामविलास शर्मा के मुताबिक 'साहित्य में उन्होंने जिस मानव की प्रतिष्ठा की है, वह रीतिवादी काव्य के अतिरंजित वर्णनों का नायक नहीं है, वह अनेक क्रान्तिकारी कवियों का अतिमानव नहीं है जिसका चिर उन्नत शिर देखकर हिमालय का शिखर नतशिर हो जाता हो। निराला ने जिस वीरता का चित्रण किया है वह जीवन संग्राम की वीरता है, वह उस मनुष्य की वीरता है, जो दुःख और पराजय संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अवरोधों से भली-भाँति परिचित है।' [२]

प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिन्दी काव्य धारा को व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकालकर जन-जीवन के बीच प्रवाहित कर दिया, जीवन और साहित्य के मूल्य, सौन्दर्य - बोध और लक्ष्य को समाज

---

(१) इतिहास और आलोचना - नामवर सिंह, पृ - १२८

(२) निराला की साहित्य साधना - रामविलास शर्मा, पृ - १५९

के यथार्थ और उसकी रचना से जोड़ा। अतः प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही सृजन का मकसद मानता है। भारतीय साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा की शुरुआत १९३६ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन से माना जाता है। इसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचन्द ने की थी। इस संस्था का उद्देश्य भारत के विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों का संगठन करके ऐसे प्रगतिशील साहित्य की रचना करना है जो कलात्मक दृष्टि से निर्दोष हो। 'प्रगतिशील साहित्य समाज के युगीन संबन्धों को छोड़कर हवा नें शाश्वतवाद का महल बनानेवाले साहित्य को नकली और निर्जीव मानता है।' (१)

प्रगतिशील लेखक संघ की यह मान्यता रही कि उनका साहित्य देश के सांस्कृतिक अवसाद को दूर करके भारतीय स्वतन्त्रता एवं सामाजिक उत्थान की दिशा में प्रवृत्त हो सके। प्रगतिशील आन्दोलन के संबन्ध में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है 'प्रतिशील आन्दोलन अखिल भारतीय आन्दोलन था। इस तरह का कोई भी साहित्य आन्दोलन उस समय देश में न था। इस आन्दोलन में यह क्षमता थी कि वह भारत की विभिन्न भाषाएँ बोलनेवाली जनता और उसके साहित्यकारों को एक दूसरे के निकट लाकर देश की एकता दृढ़ करे। यदि यह आन्दोलन शक्तिशाली रूप से आगे बढ़ता तो भारत के विभाजन की नौबत न आती।' (२)

ज़ाहिर है प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के मूल में सामाजिकता ही रही। हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में प्रमुख हैं सुमित्रानन्दन पन्त, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन रामविलास शर्मा व शिवमंगल सिंह सुमन। नागार्जुन ने ज़मीनी सचाई के तहत काव्य सृजन किया था। उन्होंने ज़िन्दगी के

---

(१) हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम - रामदरश मिश्र पृ - ६४

(२) प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ - डॉ.रामविलास शर्मा - पृ १३८

तुच्छ से तुच्छ अंशों और अनुभवों को भी कविता में दर्ज किया और कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा के करीब खड़ा किया। साथ ही अविचल जनता के संघर्षों का साथ दिया और उनमें यथाशक्ति शिरकत ली।

प्रयोगवादी दौर में 'तारसप्तक' का प्रकाशन समाज सापेक्ष्य कविताओं के नये राहों की माँग का नतीजा है। नई कविता के संबन्ध में यह आरोप विद्यमान है कि वह पूर्णतः व्यक्तिवादी है। मगर इस व्यक्तिवाद के पीछे यथार्थोन्मुख व्यक्तिवाद की बगावत ही रही जो कि सामाजिक दायित्वबोध से कहीं भी दूर नहीं भटकती। अतः वह व्यक्ति सापेक्ष होने के साथ - साथ समाज सापेक्ष भी थी। मुक्तिबोध का तर्क है 'हमारा सामाजिक व्यक्तित्व हमारी आत्मा है। आत्मा का सारा सार-तत्व प्राकृत रूप से सामाजिक है। व्यक्ति और समाज का विरोध - बौद्धिक विक्षेप है, इस विरोध का कोई अस्तित्व नहीं। जहाँ व्यक्ति समाज का विरोध करता - सा दिखायी देता है, वहाँ वस्तुतः समाज के भीतर की ही एक सामाजिक प्रवृत्ति दूसरी सामाजिक प्रवृत्ति से टकराती है। वह समाज का अन्तर्विरोध है न कि व्यक्ति के विरुद्ध समाज का, या समाज के विरुद्ध व्यक्ति का'।[१] उसकी संवेदनाएँ व आत्म संघर्ष ज़िन्दगी की कड़ुवाहट को दर्ज करने में सक्षम रही। मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह आदि की कविताएँ सामाजिक चेतना केलिए उत्कृष्ट निदर्शन पेश करती हैं।

मुक्तिबोध अपनी पूरी जनवादी समझ के होते हुए भी ऐसे समाज के मध्यवर्ग के अंग थे जिसमें पूर्ण बुर्जुआ विकास की संभावनाएँ अवरुद्ध होकर जनवादी विकास की संभावनाओं में परिणत होने लगी थी। वे 'नई कविता की

---

(१) नयी कविता का आत्म संघर्ष - गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ - २६

उस धारा को प्रतिनिधित्व देते है जो सामाजिक यथार्थ और जनवादी मूल्यों में विश्वास रखती है।'[१]

समकालीन कविता का प्रतिमान जीवन की विसंगतियाँ ही है। वर्तमान दौर की तमाम विद्रूपताओं को उकेरने का दायित्व उस पर है। जैसे, सांस्कृतिक संकट की समस्या हो या पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति। संवेदन हीनता व संवाद हीनता की स्थिति हो या वैश्वीकरण की यांत्रिकता की। एक ओर धार्मिक विश्वास व आस्था का सामाजिक पक्ष चिर काल से ही एक जुनून भरी असहिष्णुता से जुड़ा रहा है। यह असहिष्णुता किसी न किसी तरह इनसानों को बाँटकर उन्हें एक दूसरे के खून के प्यासे हैवानों में तब्दील कर रही है।

समकालीन कविता के संबन्ध में डॉ. अरविन्दाक्षन जी का कहना है यह 'जीवन की जटिलतर परिस्थितियों में जन्म लेनेवाली असंगतियों के बीच जीवन्तता की प्रतीति को बनाने में सही काल का योगदान है।'[२] धूमिल, श्रीकान्त वर्मा, राजकमल चौधरी, इब्बार रब्बी, अशोक वाजपेयी, अरुण कमल, असद जैदी, ज्ञानेन्द्रपति, कुमार विकल, मंगलेश डबराल, कुमार अंबुज, विनोद कुमार शुक्ल आदि की कविताएँ इन समाज विरोधी ताकतों व स्थितियों से समाज को उभारने का प्रयत्न करती है।

हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रत्येक दौर का जायजा लेने से यह बात ज़ाहिर होती है कि भारतेन्दु तथा प्रसाद के नाटकों ने काल की सीमाओं का उल्लंखन किया है। भारतेन्दु के नाटकों में युग का स्पन्दन झलकता है तो प्रसाद के नाटक

---

(१) मुक्तिबोध की कविताई - अशोक चक्रधर, पृ - १२

(२) समकालीन हिन्दी कविता -ए. अरविन्दाक्षन, पृ - ५७

मानवीय धरातल के प्रबल प्रस्तोता रहे। दोनों के नाटकों में पराधीन भारत की जो हक़ीक़त है वह आज की भी हक़ीक़त है चूँकि आज़ादी हमें नाम मात्र केलिए ही प्राप्त हुई। प्रसादोत्तर युग सामाजिकता की दृष्टि से कार्यशाला ही रहा। जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी आदि के नाटक तत्कालीन सामाजिक गतिविधियों से लैस है।

हिन्दी कथा साहित्य की चर्चा करते वक्त यह बात मकबूल है कि मुंशी प्रेमचन्द ने कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में अमिट छाप छोड़ी है। उपन्यास साहित्य के युग के संदर्भ में 'प्रेमचन्द युग' की संज्ञा से अभिहित करना भी उनकी काबिलियत का परिचायक है। उन्होंने सबसे पहले कथा साहित्य के कलेवर को जीवन अनुभवों से जोड़ने का सफल प्रयास किया। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों का उल्लंखन किया।

प्रेमचन्द के पश्चात् कहानी के क्षेत्र में जितने भी आन्दोलन हुए मगर वे अधिक समय तक नहीं रहे। प्रेमचन्द की परम्परा में सामाजिक और समाजवादी कहानियाँ लिखने वालों में भी परिवेशगत यथार्थ और लेखकीय अनुभूति के परस्पर संबन्ध कम दिखाई पड़ते हैं। हालाँकि प्रेमचन्द की जनवादी विचार धारा को आत्मसात करनेवाले ऐसे भी कहानीकार है जिनमें प्रमुख है यशपाल, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, अमरकान्त, शेखर जोशी, कमलेश्वर, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, स्वयंप्रकाश, रमेश उपाध्याय, हेतु भारद्वाज, रमेश बतरा, नमिता सिंह, धीरेन्द्र अस्थाना, संजीव, राजेश जोशी, उदय प्रकाश आदि। इन कहानीकारों ने देश व समाज की समस्याओं को ऊपर उठाने के साथ तमाम शोषितों के दुःख दर्दों को शब्दबद्ध करने की सराहनीय कोशिश की।

उपन्यास साहित्य में हम देखते है कि प्रेमचन्द वह आलोक स्तंभ है जिनकी विरासत को आगे बढ़ाने वाले कथाकार ही सामाजिक सद्भावना की दृष्टि से सराहे गये हैं। प्रेमचन्द की विरासत को आगे बढ़ाने की महत्वपूर्ण कोशिश यशपाल, रंगेय राघव, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, फणीश्वरनाथ रेणु, राही मासूम रज़ा, भीष्म साहनी आदि ने की। प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य को ज़ेहन में रखते हुए ही इन्होंने अपना रचना दायित्व संभाला।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सामाजिक सरोकार की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार 'आँचलिक उपन्यासकार अपने अनुभवों केलिए ही आँचलिक जीवन को चुनता है किन्तु प्रकारान्तर से वह सही अर्थों में अपनी भारतीय ज़िन्दगी को भी उजागर करता है, क्योंकि नगरों और महानगरों की सारी टीमटाम के बावजूद भारत की पहचान उसके गाँवों और अन्यान्य अंचलों से ही हो सकती है। इसलिए जब हम स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास की बात करते हैं तो सबसे पहले हमारी दृष्टि जाती है उन उपन्यासों पर जिन्होंने आंचलिक जीवन को रूपायित कर भारतीय जीवन के उभरते हुए, संक्रांत होते हुए अनेक अनुभवों, संबन्धों और मूल्य संघर्षों का संश्लिष्ट चित्रण किया है।'(१) पारिस्थितिक, दलित व स्त्री विमर्श पर केन्द्रित उपन्यासों की कथाभूमि भी सामाजिक चेतना को अक्षुण्ण मानती है।

ज़ाहिर है सामाजिकता साहित्य सृजन की पहली शर्त है। सामाजिक संसक्तियों को पूर्णतः उजागर करने वाली रचना ने ही कालातीत का परिचय दिया है। बेशक वही कालजयी रचना साबित होती है।

---

(१) आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि - डॉ. रामदरश मिश्र, पृ - १२८

वर्तमान काल में विश्व साम्राज्यवाद, देशीय पूँजीवाद से मिलकर लोकतन्त्र की नसों को काट रहा है और जातीय साम्प्रदायिक, पृथकतावादी शक्तियों को नये सिरे से बढ़ावा दे रहा है। आज पूरे देश में धर्म और जाति के नाम पर हिंसा भड़काने का दुष्चक्र फिर से चलाया जा रहा है। सभी तरह की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ एकजुट होकर विश्व साम्राज्यवाद की साजिश का अंग बन रही है। मौजूदा व्यवस्था में जड़ें जमाए सारे अन्तर्विरोधों एवं विसंगतियों को पहचानने एवं निरावृत करने की हर लेखक की पहल बिलकुल सराहनीय है। इस दिशा में असग़र वजाहत ने महत्मपूर्ण भूमिका निभायी है।

२

दूसरा अध्याय:

असग़र वजाहत का रचना परिवेश

दूसरा अध्याय:

असग़र वजाहत का रचना परिवेश

२.१ डॉ. असग़र वजाहत   जीवन रेखाएँ

साठोत्तर दौर के सशक्त एवं सजग रचनाकार डॉ. असग़र वजाहत का जन्म ५ जूलाई सन् १९४६ ई को उत्तर प्रदेश के एक पिछड़े हुए शहर फतेहपुर में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई और उसके बाद उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से सन् १९६८ को हिन्दी में एम. ए. तथा सन् १९७४ को पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने जवाहर नेहरू विश्वविद्यालय में सन् १९८२-८३ में पोस्ट डॉक्ट्रल शोध किया। ये सन् १९७१ से जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्ययन कर रहे है। आजकल वे यूरोपीय अध्ययन विभाग, ओत्वोश लोरंद विश्वविद्यालय बुदोपस्त (हंगरी) में विज़िटिंग प्रोफेसर है। संप्रति वे जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष है।

२.२ सृजनात्मक धरातल

असगर वजाहत उभरते नये नाटककार है। नाटककार होने के अतिरिक्त वे कथाकार भी हैं। वे अपनी मौलिक शैली, शिल्प कलात्मकता और कथ्य की पकड़ केलिए माहिर है।

कतिपय फिल्मों की पटकथाएँ लिखने के अतिरिक्त गज़ल की कहानी, वृत्त - चित्र तथा दूरदर्शन केलिए 'बूँद - बूँद' धारावाहिक का भी निर्माण उन्होंने किया। 'बूँद - बूँद' धारावाहिक जो है आदिवासी जीवन पर आधारित है। यह उनका पहला दूरदर्शन धारावाहिक है। मुज़फ्फ़र अली द्वारा निर्देशित 'गमन', 'आगमन' और 'अंजुमन' के पश्चात् उन्होंने 'जूनी' फीचर फिल्म के पटकथा एवं संवाद लिखे हैं।

विभिन्न साहित्यिक, राजनीतिक पत्र - पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन के बजाय बी.बी.सी. लन्दन केलिए भी इन्होंने लेखन कार्य किया। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, रूसी, हंगेरियन तथा उज़्बेक में इनकी कतिपय रचनाएँ अनूदित तथा प्रकाशित हुई।

इन्होंने डॉ. कार्लो कपोला, डॉ. स्टीव पूलस तथा डॉ. मारिया नेज्यैशी के साथ हिन्दी रचनाओं का अंग्रेज़ी तथा हंगेरियन में अनुवाद और प्रकाशन भी किया। इन्होंने क़ुर्रतुलऐन हैदर के उपन्यास, 'आखिरेशब के हमसफर' का हिन्दी रूपांतर 'निशान्त के सहयात्री' नाम से ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित कराया।

इन्होंने कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं तथा राष्ट्रीय श्रम संस्थान के साथ बिहार और मध्यप्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य किया। अमरीकी, फिलिपीन्स तथा यूरोप के कई देशों की यात्राएँ की।

२.३. पुरस्कार

असग़र वजाहत अपने जीवन में भिन्न भिन्न प्रसंगों पर पुरस्कार से सम्मानित हुए है -

१ संस्कृति सम्मान - १९७४

२ संस्कृति एवार्ड फॉर क्रियेटिव रैटिंग संस्कृति प्रतिष्ठान, दिल्ली १९७८

३ साहित्यकार सम्मान, हिन्दी अकादमी, दिल्ली - १९८६

५ सोसाइटी फॉर अंडरस्टैंडिंग एंड फ्रेटर्निटी द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव पुरस्कार १९९२

५ हिन्दी - उर्दु एवार्ड कमेटी लखनऊ द्वारा सम्मानित, १९९३

६ बेस्ट प्ले राइट ओफ द इयेर भुवनेश्वर नाट्य संस्थान, १९९५

७ वनमाली एवार्ड फॉर फ्रिक्षन, भोपाल, २०००

८ कथाक्रम सम्मान, लखनऊ, २००५

९ इन्दू शर्मा कथा सम्मान, कथा (UK) २००६

असग़र वजाहत लेखन में सम्मान या पुरस्कार की अहम भूमिका को मानते हैं। विपक्ष में हरगिज़ नहीं। उनका मानना है - 'सम्मान और पुरस्कार यदि ईमानदारी से दिए जायें तो उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। वे लेखक और पाठक दोनों को उत्साहित करते हैं।' (१)

---

(१) असग़र वजाहत - 'रचनाकार असग़र वजाहत से मधु की बातचीत' साक्षात्कार, अप्रैल - २००६, पृ - १६

२.४. रचना संसार

असगर वजाहत मूलतः कथाकार है। अभी तक उनकी उन्नीस रचनाएँ प्रकाशित है; जिनमें कहानी, उपन्यास, नाटक, नुक्कड नाटक, यात्रावृत्तान्त, असंख्य वृत्तचित्र, टेलीविज़न लेखन, फिल्म और पटकथाएँ आदि निहित हैं। इनकी कहानियों का अनुवाद व संपादन विभिन्न भारतीय भाषाओं में हुए है। इनके नाटकों का मंचन, हबीब तनवीर, एम. के रैना, कविता नागपाल, दिनेश तश्कर और अनिल चौधरी जैसे प्रतिभा संपन्न निर्देशकों द्वारा हुए हैं। बहुचर्चित नाटक 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या ई नईं' का मंचन देश विदेश में हुआ है। इसका मंचन खालिद अहमद के निर्देशन में पाकिस्तान व उमेश अग्निहोत्री के द्वारा वाशिंग़टण डी.सी. में संपन्न हुआ। खैर, सुप्रसिद्ध फिल्म निर्माता राज कुमार संतोषी, इस नाटक पर सिनेमा बना रहे हैं। इन्होंने विविध नुक्कड़ नाटकों का संपादन 'सबसे सस्ता गोश्त' नाम से किया और पाँच हज़ार बार विभिन्न भारतीय भाषाओं में विभिन्न संस्थाओं द्वारा इसका मंचन मुमकिन हुआ। अन्तर्देशीय तौर पर ख्यात अभिनेत्री, शबाना आसमी ने इसमें बहुत बार पात्रा का रूप ग्रहण किया।

२.४.१. फिल्म - टीवी निर्देशन और लेखन

इन्होंने १९८४ में उर्दू गज़ल के विकास और रुझान पर आधारित एक बीस मिनट के वृत्तचित्र का निर्देशन किया। १९९० में तेरह - हिस्सा टेलीवीज़न सीरीज़ 'बूँद - बूँद' का लेखन व प्रसारण राष्ट्र भर में किया। कुछ फीचर

फिल्मों केलिए लिपियों और टीकाओं का सृजन किया और व्यापक सांस्कृतिक विषयों पर कई वृत्तचित्र लिखे। १९८९ में उन्होंने प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता, पर्यावरणविद् और अमृतसर व पंजाब के विकलांग अस्पताल के संस्थापक सरदार पूरन सिंह पर महत्वपूर्ण वृत्तचित्र का निर्माण किया। उन्होंने दूरदर्शन केलिए 'लैला - मजनू की नई नौटंकी', 'वापस चलो', 'माध्यम', 'दस्तकार', 'रोशनी' एवं 'फूलवालों की सैर' नामक वृत्त चित्रों और लघु फिल्मों का लेखन किया।

मध्यप्रदेश के व्यापार संघ के आन्दोलन के प्रमुख नेता व समाज सुधारक शंकर गुहा नियोगी पर एक दस्तावेज़ लिखा। इन दोनों वृत्तचित्रों का प्रसारण भारत भर में किया गया। 'गालिब की दुनिया' और 'मुख्यमन्त्री प्रो. नाइम के साथ बातचीत' नामक वृत्तचित्रों का निर्देशन किया। १९८० में उन्होंने 'आगमन' फीचर फिल्म केलिए बातचीत लिखी जो कि गाँवों में सहयोग आन्दोलन पर आधारित है। एन. एफ. डी. सी (NFDC) द्वारा तात्या टोप (Tatya Top) के जीवन पर आधारित फिल्म पटकथा पर काम किया। उन्होंने राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित फीचर फिल्म केलिए संवाद भी लिखा।

२.४.२. स्वैच्छिक सेवा

इन्होंने एफ. ए. ओ. (F.A.O.) परियोजना में (संगठित राष्ट्रीय श्रम संस्थान, दिल्ली द्वारा) एक आदिवासी गाँव में विकास योजना को सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करने केलिए सहायता प्रदान की है। राज्य संसाधन केन्द्र, दिल्ली केलिए प्रौढ़ शिक्षा परियोजना को बढ़ावा देने के नाते 'नुक्कड़ नाटकों'

का सृजन किया। इन्होंने साम्प्रदायिक सद्भाव और जनजातीय विकास जैसे विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर लिपियों व दस्तावेज़ी फिल्मों की रचना की। एक नाटककार और फिल्म निर्माता के रूप में, वे विभिन्न अभियान से जुडे रहें। १९९१ में Tagatytay व फिलिपिंस में आयोजित एशियाई और दक्षिण प्रशान्त ब्यूरो प्रौढ़ शिक्षा (Assembly of the Asian and South Pacific Bureau of Adult Education) द्वारा आयोजित पहली आम सभा में एक प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। उन्होंने राष्ट्रीय श्रम संस्थान (भारत) की विभिन्न परियोजनाओं में भाग लिया।

२.४.३. एक पत्रकार के रूप में

१९६८ से वे नियमित रूप से पत्रकार रहे और हिन्दी समाचार पत्र, पत्रिकाएँ व रिपोर्टों का लेखन करते रहे। प्रतिष्ठित हिन्दी समाचार जैसे 'हिन्दुस्तान दैनिक', 'दहरा दैनिक', 'नव भारत टाइम्स', 'जनसत्ता', 'हंस', 'कथादेश', 'पहल', 'वर्तमान साहित्य' आदि में सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक मुद्दों पर एक हज़ार से अधिक लेख, रिपोर्ट (रपट) समाचार कथाएँ लिखें।

२.४.४. यात्रा विवरण

- अमरीका की यात्रा पर लिखे लेखों को 'दिनमान' में संपादित किया।
- 'दैनिक भास्कर' में हंगेरियन जीवन व संस्कृति पर केन्द्रित दस लेखों का संपादन किया।

- मध्य प्रदेश राज्य सरकार केलिए विभिन्न अभियान हेतु आदिवासी क्षेत्रों की यात्रा की और वहाँ के लोगों की सामाजिक व आर्थिक हालत पर रपट तैयार की। १९८४ में 'दिनमान' में इसका शब्दांकन भी किया।

- २००५ में इरान व अज़ेरबैजान (Azerbaijan) की यात्रा की। टेहरान, Tabrez, Qom, ईस्फहान, षिराज़, येज़ड (Yezd) मष्षाड, बाकु, क्यूबा की यात्राएँ की। 'चलते तो अच्छा था' नामक यात्रावृत्तान्त का संपादन किया।

२.४.५. यात्राएँ

इन्होंने अमरीका, रूस, फिलिपींस, होंगकोंग, ओस्ट्रिया, ज़ेच, जर्मनी, फ्रान्स, नेतरलेन्ट, इटली, रोमानिया, सुरिनाम, इरान, आज़रबाईजान आदि देशों की यात्राएँ की हैं।

उन्होंने देश विदेश की खूब यात्राएँ की है। बचपन से ही यात्रा करने की उन्हें बेहद दिलचस्पी थी। जब अलीगढ़ विश्वलिद्यालय आया तो अपने पाठ्यक्रम की किताबों से ज़्यादा वे विदेशों पर छपी किताबों के पन्ने पलटकर तस्वीरें देखा करता था। दरअसल घूमते वक्त उनके ध्यान में यह नहीं रहता कि यह अनुभव कहानी - उपन्यास में किस तरह शामिल होंगे। लेकिन समय आने पर उनका कहीं न कहीं उपयोग होता है। अतः उनके लेखन में यात्राओं की अहम भूमिका रही हैं। यात्राएँ कई अर्थों में रचनाकार को ताज़ा कर देती है। अतएव यह ताज़गी उनके लेखन केलिए ही नहीं जीने केलिए भी ज़रूरी हुई है।

२.४.६. प्रकाशित कृतियाँ

कहानी संग्रहः

१. अंधेरे से (पंकज बिष्ट के सहयोग में) (१९७७)

२. दिल्ली पहूँचना है (१९८१)

३. स्विमिंग पूल (१९९०)

४. सब कहाँ कुछ (१९९१)

५. मैं हिन्दू हूँ (२००६)

उपन्यासः

१. रात में जागने वाले (कथादेश) (१९८३)

२. पहर दोपहर (इंडिया टुडे) (१९९६)

३. सात आसमान (१९९६)

४. कैसी आगी लगाई (२००४)

नाटकः

१. फिरंगी लौट आये (१९७६)

२. इन्ना की आवाज़ (१९८६)

३. वीरगति (१९८८)

४. पाँच नाटक (१९९०)

५. सबसे सस्ता गोश्त (नुक्कड़ नाटक संग्रह) (१९९१)

६. ओ जन्म्या ई नई (२००१)

आलोचनात्मक ग्रन्थः

१. हिन्दी कहानी पुनर्मूल्यांकन (१९७९)

२. हिन्दी उर्दू की प्रगतिशील कविता (१९८५)

अनूदित ग्रन्थः

१. निशान्त के सहयात्री (उपन्यास) (१९८२)

२. नज़ीर अकबराबादी (आलोचनात्मक ग्रन्थ) (१९८९)

टेलीविज़न धारावाहिकः

बूँद बूँद (गुरुचरण के साथ) (१९९०)

टेलीविज़न लेखनः

टेलीविज़न लेखन (प्रभात रंजन के साथ) (२००१)

यात्रावृत्तः

चलते तो अच्छा था (२००८)

२.५. अकादमी संगठनों के सदस्य के रूप में

१. भारतीय अन्तर्देशीय केन्द्र, नई दिल्ली

२. अकादमी कौन्सिल, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

३. इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

४. जनसंपर्क अनुसंधान केन्द्र, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली

५. फाकल्टी कमिटि, फाकल्टी ओफ आड्र्स, ए. एम. यू, अलीगढ़

६. जूरी फोर पब्लिक यूटिलिटी प्रोग्राम ए. ऐ. आर, नई दिल्ली २००५

७. गवर्निंग़ बोड़ी आनड एक्सीक्यूटीव कमिटी, हिन्दी अकादमी, दिल्ली १९९०-९२

८. अध्यक्ष, जनवादी लेखक संघ, दिल्ली (भारतीय जनतन्त्र लेखक संघ)

९. सलाहकार, 'उद्भावना' साहित्यिक पत्रिका, नई दिल्ली

१०. एक्सीक्यूटीव कौन्सिल के सांसद, महात्मा गाँधी अन्तर्देशीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वार्धा

११. सांसद, भारतीय प्रेस क्लब, दिल्ली।

२.६. असग़र वजाहतः राष्ट्रीय सीमाओं से परे

बहुप्रशंसित हिन्दी नाटककार, कथाकार और आलोचक असग़र वजाहत, जो मुलतः एक पत्रकार है, हमेशा अपनी सफलता की अपेक्षा विफलताओं के बारे में बात करना पसंद करते हैं। हास्य की एक भयानक भावना से सक्षम असगर, अपने आप पर हँसने से भी नहीं चूकते। अपने दादा के मानद मजिस्ट्रेट पद व सामन्ती पृष्ठभूमि में पले असग़र में सामूहीकरण की कमी थी, पढ़ाई में भी अच्छा नहीं था और एक साधारण पब्लिक स्कूल की शिक्षा का लाभ भी नहीं उठा सका।

असग़र के माता-पिता उसे एक डॉक्टर बनाना चाहते थे। इसके परिणाम स्वरूप वे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में बी.एस.सी के छात्र बने। मगर जहाँ विज्ञान के अध्ययन से भी उसने मुज़फ्फ़र अली के साथ कला कार्यशालाओं, साहित्यिक व सांस्कृतिक समारोहों में भाग लेने और समय खर्च दर्ज करने में लगा दिया। दोनों पहली बार की परीक्षा में असफल रहे। दूसरे प्रयास में बी.एस.सी परीक्षा को पारित करने के पश्चात् मुज़फ्फ़र अली विज्ञापन और फिल्म निर्माण में चला गया। उसने 'उमराओ जान अदा' बनाया। असगर अपने भविष्य के विचार के पीछे छोड़ दिया था। उसने कहा कि वह शर्मीला था, उसे मुज़फ्फ़र अली के समान पब्लिक स्कूल की पृष्ठभूमि नहीं प्राप्त थी जिसमें सब कुछ तोड़ सके।

विश्वविद्यालय की शिक्षा के समय असग़र ने 'वो बिक गया' नामक एक लघु कहानी (उर्दु में नास्तालिक लिपि में)लिखी जो कि विश्वविद्यालय की

पत्रिका में प्रकाशित की गयी थी। के. पी. सिंह ने जो हिन्दी में पी.एच.डी के छात्र थे, हिन्दी में देवनागरी लिपि में लिखने केलिए असग़र को सलाह दी। हिन्दी में लिखते समय असग़र ने उसकी असली प्रतिभा की खोज की। पहली बार उसने खुद पर गर्व महसूस किया। इस स्वयं की खोज और उपलब्धि की भावना उनकेलिए आश्वस्त था।

मात्र आत्म सम्मान और बौद्धिक उसकाव जीवित रहने को सुनिश्चित नहीं था। उन्होंने एक नौकरी खोजने की कोशिश की। लेकिन एक बी. एस. सी स्नातक केलिए कुछ नहीं खुल सकता था। एक बार फिर के.पी. सिंह उसके बचाव केलिए हाज़िर हुआ। अतः उसने असगर को हिन्दी में एम. ए. करने की सलाह दी। लेकिन प्रवेश पाने को उनके पास कोई अकादमिक योग्यता नहीं थे। इसलिए सिंह ने उसे अपनी प्रकाशित लघु कहानियों के बल पर प्रयास करने को कहा। परन्तु एम. ए. के शिक्षण पद्धति व पाठ्यक्रम से वह संतुष्ट नहीं थे और यहीं नहीं वहाँ के सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली छात्रों को या शिक्षकों को आकर्षित करने में यह नाकाफी था। चूँकि पाठ्यक्रम उसे पारंपरिक और पुराना लगा। हालाँकि उसने पढ़ाई ज़ारी कि की और १९६८ में एम.ए. में प्रथम आया। उसने अपना पी.एच.डी १९७४ में पूरा किया। लघु कहानी 'तख्ती' उनकी शिक्षा की कहानी है। पत्रकारिता की नौकरी उनकेलिए एक स्वाभाविक पसंद थी।

दिल्ली में स्वतंत्र पत्रकारिता करने केलिए ग्रिश माथुर (लिंक ग्रूप) ने उनकी सहायता की और इसी वजह असग़र को अपनी किस्मत आज़माने का अवसर मिला। मगर एक स्वतन्त्र पत्रकार कभी भी खुद का समर्थन नहीं कर

सकता। लिहाज़ा एक वर्ष के बाद उसने अपने गृहनगर, फतेहपुर वापस जाने का फैसला किया और वहाँ खेती करने का प्रयास किया। लेकिन खेती - बारी के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं थी। हालांकि, फतेहपूर में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए और नगर निगम चुनाव में लड़े, मगर खोया। वह वापस शून्य बिन्दु पर था।

ऐसी हालत में उनके मसीहा के. पी. सिंह ने जामिया मिलिया इस्लामिया में एक अध्यापक के पद के बारे में उनको लिखा। असगर शिक्षक की नौकरी में उत्सुक नहीं था, लेकिन आय केलिए हताश थे। उन्होंने आवेदन दिया और चयन किया गया। दिसंबर १९७१ से वे काम करने लगे। वे विभाग के अध्यक्ष बने और २००१-२००४ तक जामिया में जन संचार अनुसंधान केन्द्र में समन्वयक रहे। १९९२-१९९७ में उन्होंने इटोवोस (Eotovos) लोरान्ट विश्वविद्यालय, बुद्धपेस्ट में हिन्दी सिखायी। १९७१ में प्राध्यापक के रूप में, असगर को रु. ६०० का आय था। अब कमाई की समस्या का संकल्प, अपने लिखित उपन्यास, लघु कथाएँ उसके मन में पुनर्जीवित रहा। पत्रकारिता और समाचार पत्रों में भी उनकी रुचि जारी रही। अतएव उन्होंने अपनी स्वजन्य रुचि का हित साधन किया।

असग़र वजाहत आम लोगों की चिन्ताओं व भावनाओं को बाहर लाता और उनके अस्तित्व वृत्ति व उनके जीवन पर राजनीतिक निर्णयों के प्रभाव का परिचय देता है। वे बिना भावुक या सनसनीखेज होकर सूक्ष्म हास्य और व्यंग्य काटने की एक अच्छी खुराक के साथ लिखते हैं। उनके हास्य, मूल लेखन की प्रत्यक्ष शैली और रोज़मर्रा का भाषा प्रयोग, पाठकों व दर्शकों को हर्षजनक

पढ़ने या देखने को आकर्षित करते हैं।

उनके अनुसार भाषा के रूप में उर्दू और हिन्दी को अलग नहीं किया जा सकता। आप भाषाओं का वर्गीकरण व्याकरण के आधार पर करते हैं न कि उच्छारण के आधार पर। हिन्दी व उर्दू का मूल स्रोत खड़ी बोली में है। दोनों के व्याकरण, वाक्य विन्यास और विरासत समान हैं। हिन्दी कवि गज़ल लिखते है। पाकिस्तान में भी उर्दू कवि दोहा लिखते है। उन्होंने कहा कि विभाजन के तुरन्त बाद हिन्दी प्रेमियों द्वारा एक अलग पहचान स्थापित करने का प्रयास माननीय है। लेकिन सत्तर में विशेष रूप से साहित्य में परिवर्तन आया। फिलहाल लेखक रोज़ की भाषा में लिखते हैं। वे सहमत हुए कि भारत में उर्दू में लिखनेवाले लोगों की संख्या में काफी कमी आई है। एक समय उर्दू में रतन नाथ सरशर और प्रेमचन्द जैसे हिन्दू लेखक हाज़िर थे, आज बहुत कम है। वहाँ हिन्दुओं से अधिक मुसलमान हिन्दी में लिखते हैं। सामाजिक संरचना में आये परिवर्तन, साम्प्रदायिकता और राजनीति ने अपने टोल ले लिया है। लेकिन इस गिरावट केलिए असली कारण वाणिज्य है। उर्दू किताबों की माँग इतनी कम है कि केवल पाँच सौ प्रतियाँ प्रति संस्करण प्रकाशित हो पा रही है। उनका मानना है कि भारत में देवनागरी लिपि को गोद लेने से उर्दू बच सकती है।

पचास साल से अब तक यहाँ केवल रोमन लिपि का प्रचलन है। एस.एम.एस (SMS) और ई मैल (E-mail) रोमन में लिखे जा रहे है। विज्ञापनदाताओं ने भी रोमन लिपि को बढ़ावा दिया है। विज्ञापन यदि हिन्दी मुहावरों पर निर्भर है तो भी रोमन में लिख जाते है, *'Lay lo duniya mutti*

main', 'Dil mange more', 'Hum hain ....na, 'Jee bhar ke khao', 'Jee bhar ke jiye', 'kismat chamkao' हर कोई अंग्रेज़ी में अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहता है। नई पीढ़ी रोमन लिपि के आदि हैं।

असग़र वजाहत कई स्वयंसेवी गतिविधियों में शामिल हैं। सी.पी.आई (एम) के सदस्य न होने पर भी हालाँकि वे अब भी उनकेलिए काम करते हैं क्योंकि उनके अनुसार दक्षिण पंथी एजेंडे पर मुकाबला करने केलिए यह सबसे उपयुक्त एजेंडा है।

असग़र वजाहत आज कल प्रसिद्ध फिल्म निर्माता श्री राजकुमार संतोषी और श्री विनय शुक्ल के साथ 'गोड मदर' (God mother) फिल्म के पटकथा लेखन में व्यस्त है। उन्होंने 'Lies Half told' शीर्षक से कहानियों का संकलन अंग्रेज़ी में अनूदित किया है। इसके अतिरिक्त वे लेखन और टीवी कार्यक्रमों में सक्रिय हैं।

असग़र वजाहत दुनिया भर के गैर सरकारी संगठनों में सजग शामिल है। आदिवासी गाँवों में विकास योजना के सामाजिक प्रभाव के मूल्यांकन हेतु उन्होंने एफ.ए.ओ (FAO) परियोजना (राष्ट्रीय श्रम संस्थान दिल्ली द्वारा संगठित)में सक्रिय रूप से काम किया है।

साक्षरता, स्वास्थ्य, संचार, पार - सांस्कृतिक समझ जैसे मुद्दों पर राष्ट्रीय श्रम संस्थान (भारत) 'प्रिया', 'पीस', 'विहा', 'चक्र्का' और अन्य गैर सरकारी संगठनों द्वारा आयोजित विभिन्न परियोजनाओं में इनकी भागीदारी है।

२.७. असग़र वजाहत : कहानीकार के रूप में

स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानी साहित्य को जिन रचनाकारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से एक व्यापक फलक प्रदान किया, उनमें असग़र वजाहत का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने विभाजन की त्रासदी के साथ ही टूटते मानवीय मूल्यों, कला और साहित्य के क्षेत्र में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप, निम्न और मध्यवर्गीय चरित्र को पूरी जीवन्तता के साथ अपनी कहानियों में उकेरा है। उनकी कहानियों में भारतीय जन-जीवन अपने पूरे परिवेश के साथ भिन्न-भिन्न किस्सों में उभरकर सामने आया है।

साठोत्तर कहानी के अनेक रचनाकारों की तरह असग़र ने भी अपना कथा परिवेश ज़्यादातर मध्यवर्ग के जीवन को ही बनाया है। उनके समकालीन कथाकारों के यहाँ मध्यवर्ग के उच्च मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय दोनों तबकों और उनके सूक्ष्मतर स्तरों की विविधता और सूक्ष्मदर्शिता प्रायः दुर्लभ है। मगर असग़र की कहानियों में ये सारे तत्व मौजूद है।

असग़र वजाहत की कहानियों की सफलता का सबसे बड़ा जो राज़ खुलकर सामने आया है, वह सीधे जनता से खासकर आम जनजीवन से जुड़े रहना है। शायद यही वजह है कि वे हिन्दी भाषा में अच्छी कहानी दे सकने में सफल हुए है। सामाजिक संरचना की उनकी समझ ज्यादा पकी है। सामान्य से सामान्य रोज़मर्रा की घटनाओं के द्वारा बड़ी बात कहते जाने की क्षमता आसग़र वजाहत की कहानियों में निहित है।

असग़र वजाहत प्रेमचन्द के बाद दूसरे ऐसे लेखक है जो कहानी को

वास्तविक जगत् से उठाते है। उनके पात्र हमारे इर्द गिर्द दिखाई देते है। प्रेमचन्द की तरह उनके भी पात्र एक पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। असग़र वजाहत किसी भी चरित्र के विकास केलिए प्रयास नहीं करते, बल्कि उन पात्रों के चरित्र का विकास अपने-आप होता जाता है।

सन् १९६४-६५ से इन्होंने कहानी लिखना शुरू किया था। इतना लम्बा समय, चालीस - पैंतालीस साल लम्बे काल - खण्ड में कुल मिलाकार बहुत कम कहानियाँ ही इनके खाते में दर्ज है, परिणाम में औसतन औरों की बनिस्बत कम है। इतने लम्बे समयान्तराल में मात्र इतनी कहानियाँ लिखने के पीछे उनकी वस्तु चयन संबन्धी यथार्थ गत प्राथमिकताएँ ही है। एक और वजह यह बता सकते हैं कि वे अन्य अनुशासनों, विधाओं इत्यादि में व्यस्त थे। शंभु गुप्ता की राय में 'असग़र वजाहत कहानी केलिए उस उद्दाम जीवन्तता और गतिशीलता की प्रतीक्षा में रहते हैं जो उन्हें अपने साथ वहा ले चले। इनके अभाव में कहानी बनती ही नहीं; बन सकती भी नहीं।[१]

असग़र वजहत अपनी ज़िन्दगी में सरलता को प्रमुखता देनेवाले कहानीकार है। किसी भी प्रकार के बनावटीपन, बड़बोलापन, अतिरंजना इत्यादि से उन्हें संभवतः व्यक्तिगत जीवन में भी चिढ़ है और यही प्रवृत्ति परिवर्तित होकर उनकी कहानियों में भी प्रतिष्ठित है। ज़्यादातर उन्होंने साम्प्रदायिकता और उससे जुड़े तत्ववाद पर खुलकर और पर्याप्त तलख़ी के साथ लिखे है।

गौरतलब है कि उन्होंने मुस्लिम संप्रदायवाद पर अधिक बहस की हैं और गैर साम्प्रदायिक व धर्म - निरपेक्ष लेखक का एक अनिवार्य दायित्व है कि वह

---

(१) शंभु गुप्ता - 'असग़र वजाहत जो कहूँगा सच कहूँगा, सच के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा,' पक्षधर वाता - जनवरी - अप्रैल, २००८, पृ - १६६-६७

पहले पहल अपने लोगों की तरफ देखें। हर आदमी इस तरह अपने - अपने संप्रदाय पर केन्द्रित होंगे तो आहिस्ता - आहिस्ता साम्प्रदायिकता का वह संपूर्ण चेहरा उजागर होता चलेगा। कभी कभी उनकी इस प्रवृत्ति के कारण उन्हें मुसलमान लेखक की प्रतिष्ठा देने का प्रयास हुए है। मशहूर लेखक राजेन्द्र यादव ने सन् २००४ में, लखनऊ में आयोजित कथाक्रम सम्मान के दौरान हुई संगोष्ठी में असगर वजाहत को मुसलमान लेखक के रूप में संबोधित किया था। बल्कि नाभिनालबद्ध है कि असगर वजाहत हिन्दी का लेखक है।

असग़र वजाहत के कथा हृदय को परखने की कोशिश श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने की है। उन्होंने लिखा है 'असगर वजाहत में प्रेमचन्द्र और मंटो का सुखद मिश्रण है। यदि वह प्रेमचन्द की तरह अपनी धरती से और गहराई से जुड़ सके, मंटो की तरह सामाजिक चीरफाड़ में एक सर्जक की तरह एक स्तर पर निर्मम और दूसरे स्तर पर मानवीय करुणा से भाषा की कैची संभाल सके तो हिन्दी कहानी को बहुमूल्य योग दे सकेंगे।[१] असग़र वजाहत की कहानियों का विहंगावलोकन आगे के अध्यायों में किया जायेगा।

२.८. असग़र वजाहतः नाटककार के रूप में

वे एक सफल नाटककार ही नहीं, कुशल रंगकर्मी भी है। विभाजन की त्रासदी ने ऐसे बहुत बड़े लेखक पैदा किए, उनमें असगर वजाहत अपनी संवेदनशील रचनाधर्मिता के हिमायती है। हिन्दी में नाटक लेखन की स्थिति को लेकर उनका मन बहुत चिन्तित है। 'हिन्दी लेखन की प्रतिभा जो कहानी,

---

(१) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - संपूर्ण गद्य रचनाएँ (खण्ड ३), पृ - १२० १२१

उपन्यास, संस्मरण, लेखन के क्षेत्रों में दिखाई पड़ती है वह नाटक में नज़र नही आती।' [१] कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी की श्रेष्ठ प्रतिभा का लाभ नाटक को नहीं पहूँच रहा है। वे इसकी वजहों से भी वाकिफ हैं कि जीवन्त और मंचानुकूल नाट्य लेखन कुछ विशेष परिस्थितियों में ही संभव है। प्रायः युरोप के नाटककार के सामने ऐसी कठिनाई नहीं है। वे रंग मंडलियों से जुडे होते हैं और अभिनेताओं और निर्देशकों से तालमेल बैठाकर नाटक लिखते है।

मतलब यह कि नाटक लेखन की पूरी प्रक्रिया मंच की लोकतान्त्रिक अवधारण से मेल खाती है और इस तरह अच्छे नाट्य लेखन का जन्म होता है। हमारे मुल्क में यूँ हि व्यावसायिक रंग मंडलियाँ बहुत कमज़ोर होने की वजह से नाटककार अपने से जोड़ पाने की क्षमता नहीं रखते। ऐसी हालत में नाटककार और रंगमंच की दूरी लगातार बढ़ रही है और एक समस्या वे यह मानते है कि हिन्दी के मौलिक नाटक प्रायः कम मंचित होते हैं।

नाटक के साथ दिक्कत यह है कि वह मंचित हुए बिना अधूरा माना जाता है चूँकि रंगमंच ही नाटक का अन्तिम सत्य है। अतः हिन्दी के मौलिक नाटकों का मंचित न हो पाना नाटककारों को हतोत्साहित करता है। संस्थाओं की तरफ से भी कोई कार्यवाई न होने से वे चिन्तित है। उनका कहना है कि संगीत नाटक अकादमी का कोई कार्यक्रम या योजना अच्छे नाट्य लेखन को आगे बढ़ाने पर केन्द्रित नहीं है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में नाटक लेखन का कोई विभाग ही नहीं है।

कहानी के रंगमंच ने एक ओर रंगमंच के कैनवास को व्यापक किया है तो दूसरी ओर नाटककारों केलिए रास्ते बंद कर दिए हैं। बहरहाल नाट्य लेखन

---

१. असग़र वजाहत - 'नाट्य लेखन को समर्पित नहीं है', नव भारत टाइमस २५ मई २००८, पृ - ६

और रंगमंच में कोई जीवन्त संबन्ध न होने की स्थिति बदलनी चाहिए। इसकी वजह उन्होंने बताया है 'हिन्दी में प्रायः सभी लेखक जो नाटक लिख रहे हैं पूर्णतः नाटक या नाट्य लेखन को समर्पित नहीं है।' [१] असग़र वजाहत के नाटकों की चर्चा आगे के अध्यायों में की जायेगी।

२.९. असग़र वजाहतः उपन्यासकार के रूप में

एक उपन्यासकार के रूप में असगर वजाहत ने जीवन के नये यथार्थ को इस तरह चित्रित किया कि उससे जीवन और समाज का मानवीय भवितव्य तय होता है। प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के दायित्व को जिस प्रकार उन्होंने निभाया, वैसा अन्य ने कम। प्रेमचन्द के पश्चात सामाजिक यथार्थ की उनकी कथा परम्परा को रचना तथा विचार दोनों आयामों पर अपने समय सन्दर्भों में नए तेवरों और सामाजिक यथार्थ के नए निहितार्थों में विकसित करनेवाले कथाकारों में असग़र वजाहत कदाचित सबसे शाख्सियत वाले कथाकार है।

जो बात बुनियादी तौर पर प्रेमचन्द की विरासत से उन्हें जोड़ती है वह है अपने समय के सामाजिक यथार्थ से उनकी वैसी ही सीधी मुठभेड़, अपने समय और समाज की विसंगतियों और विडम्बनाओं की उतनी ही खरी पहचान जैसी कि प्रेमचन्द की थी। रचना के अपने ढंग और ढब में उन्होंने अपने उपन्यासों में उसे उजागर किया है। महज़ किस्सोगाई से आगे उपन्यास को बहुसंख्यक मनुष्यता के हक में समाज के बुनियादी रूपान्तरण के अभियान का हिस्सा बनाने और आदमीयत के बड़े सरोकारों से अपने रचनाधर्मी संकल्प को

---

(१) असग़र वजाहत *'नाट्य लेखन को समर्पित नहीं है'*
नव भारत टाइम्स २५ मई २००८, पृ - ६

जोड़ने में भी असग़र वजाहत अपनी समूची जन - पक्षधरता के साथ प्रेमचन्द की परम्परा को मज़बूत करते हैं, उसे नये आयामों तक ले जाते है। अपने मानवीय सरोकारों को असग़र वजाहत ने रचना के माध्यम से सजीव ढंग से उजागर किया।

उपन्यास लेखन की ज़रूरतों व संभावनाओं पर उनको सुनिश्चित धारणा है। वे कहानी को पीट - पीट कर उपन्यास बनाने के पक्ष में बिलकुल नहीं। हालाँकि उन्हें ऐसा लगता है कि लेखक जो कुछ उपन्यास में लिख सकता है वह कहानी द्वारा असम्भव है। अतः कहानी से ज़्यादा स्पेस कभी कभी लेखक को उपन्यास में प्राप्त होता है। वे समाज शास्त्रीय अध्ययन को उपन्यास मानने के पक्ष में नहीं है।

फिलहाल उपन्यास लेखन के रास्ते में आये संप्रदायवाद के विरुद्ध उनका खुलासा है 'आदिवासियों पर उपन्यास, दलितों पर उपन्यास, अंचलों पर उपन्यास, अर्थात् उपन्यास न हुआ कोई समाजशास्त्रीय अध्ययन हो गया। मैं तो बिलकुल नहीं कहना चाहता कि उपन्यास समाज शास्त्रीय अध्ययन नहीं होता। लेकिन अवश्य ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि समाजशास्त्रीय अध्ययन उपन्यास नहीं होता। जहाँ जीवन का ताप न हो,न कला। जहाँ सहजता और जटिलता न हो, जहाँ जीवन की भट्टी में पके विचार न हो, जहाँ व्यापक जीवन की गतिशीलता न हो, जहाँ उत्कृष्ट प्रतिभा न हो, अबाध गति से भाषा अपना रास्ता न बनाती हो, जहाँ व्यक्ति और समाज के मर्म तक पहूँच कर वापस लौट आने की कला न हो, जहाँ व्यक्त और अव्यक्त के बीच की दूरी न मिट गयी हो, वहाँ उपन्यास नहीं होता'।[१]

---

(१) असग़र वजाहत - 'जहाँ व्यक्त और अव्यक्त की दूरी मिट गयी हो वहीं उपन्यास नहीं होता' हंस - जनवरी १९९९, पृ - ११०

२.१०. अनुवादक

अनुवाद के क्षेत्र में भी असग़र वजाहत ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने क़ुर्रतुलऐन हैदर के उपन्यास 'आख़िर ए. शब के हमसफ़र' (एक उर्दू क्लासिक माना जाता है) का हिन्दी अनुवाद 'निशान्त के सहयात्री' नाम से किया। यह १९८९ के ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित कृति है। इसके रूपान्तर भी ज्ञानपीठ द्वारा ही संपादित है। 'निशान्त के सहयात्री' उपन्यास केवल ३३ वर्षों (१९३९-७२)की छोटी - सी अवधि में ही हमारी ऐतिहासिक और सामाजिक परम्पराओं की विशालता को एक पैने दृष्टिकोण से अपने में समोता है।

कहानी १९३९ में पूर्वी भारत के एक प्रसिद्ध नगर से आरम्भ होती है। पर वास्तव में यह पांच परिवारों - दो हिन्दू, एक मुसलमान, एक भारतीय ईसाई और एक अँग्रेज़ - का इतिहास है जो आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस समय के क्रान्तिकारी परिवर्तन ने जन - सामान्य की मानसिकता, उसके नैतिक मूल्य, आदर्श और उद्देश्य के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित किया। इन सबका बड़ा वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में है। इसमें मानवीय संवेदना की प्रखरता है। उपन्यास के शिल्प ने कहानी की वास्तविकता और जीवन्तता के सम्मिश्रण को और भी प्रखर करके जिस रस का संचार किया है वही इस कृति की विशेष उपलब्धि है।

असग़र वजाहत ने कहानियों व लेखों का सफल एवं सहज अनुवाद प्रस्तुत किये हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, रूसी, हंगेरियन

तथा उज़्बेक में कतिपय रचनाएँ अनूदित तथा प्रकाशित भी किया। प्रो. मुहम्मद हसन के आलोचनात्मक ग्रन्थ का अनुवाद 'नज़ीर अकबराबादी' नाम से किया। इन्होंने 'न्यू राइटिंग इन इन्डिया' शीर्षक से हिन्दी कविताओं और कहानियों के अंग्रेज़ी अनुवाद का 'पेंग्विन' में प्रकाशन किया।

२.११. आलोचक

आलोचना के क्षेत्र में भी असग़र वजाहत ने अपनी काबिलियत की मिसाल पेश की है। हिन्दी उर्दू की प्रगतिशील कविता और 'हिन्दी कहानीः पुनर्मूल्यांकन' इनके प्रमुख अलोचनात्मक ग्रन्थ है। इन्होंने विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में सामाजिक मुद्दों पर आलोचनात्मक टिप्पणी भी प्रस्तुत की है।

असग़र वजाहत ने अपने समकालीन साहित्यकारों पर साहित्यिक टिप्पणी पेश की है। उनकी काबिलियत की प्रशंसा की है। समाजवादी कथाकार यशपाल के संबन्ध में उनका कहना है 'शहर का मज़दूर वर्ग जो हिन्दी कथा साहित्य से बहिष्कृत था, यशपाल के साहित्य में अपनी पूरी गरिमा और सार्थक भूमिका के साथ आया है। मध्यवर्ग या ग्रामीण जीवन प्रेमचन्द की विशेषज्ञता है तो शहर का मज़दूर वर्ग पहली बार यशपाल के साहित्य की पहचान है। इस मज़दूर वर्ग में गतिशीलता है। उसकी ऐतिहासिक भूमिका को यशपाल अच्छी तरह पहचानते है और वे यह भी जानते हैं कि इस वर्ग में भटकाव की कौन - सी दिशाएँ हो सकती है। यही कारण है कि यशपाल के साहित्य में मज़दूर वर्ग सम्भावना और सीमाओं के साथ चित्रित हुआ है।' [१]

---

(१) यशपाल पूनर्मूल्यांकन - प्रो. कुँवरपाल सिंह, पृ - १४४

असग़र वजाहत का यह दृढ़ अनुमान है कि यशपाल की प्रासंगिकता इस बात में है कि युवा वर्ग जिस निष्ठा, लगन, त्याग और संघर्ष की माँग करता है वह यशपाल के जीवन और साहित्य में पूरी तरह मौजूद है।

असग़र वजाहत ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के समय राही मासूम रज़ा के साथ बीते दिनों के कुछ अंश याद की है। जिसका उल्लेख प्रो. कुँवर पाल सिंह ने, अपनी पुस्तक 'राही और उनका रचना - संसार' में किया है। इसी किताब में असग़र वजाहत की सैयद शाहिद मेंहदी (जामिया मिलिया इस्लामिया के कुलपति) के साथ की बातचीत भी संग्रहीत है जो कि 'राहि' के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में सफल हुए हैं। इन्होंने प्रसिद्ध कथाकार भीष्म साहनी का साक्षात्कार लिया है जिसमें भीष्म साहनी के रचनात्मक व्यक्तित्व झलकता है।

२.१२. टेलीविज़न लेखन

इन्होंने उपन्यास और कहानी से संपृक्ति बनाए रखने के बावजूद पटकथा लेखन में दो आँखों को चार बनाने की कोशिश की है। रचनात्मक प्रतिभा, बुनियादी जानकारी, अभ्यास और अनुशासन ही उनकी सफल पटकथा का राज़ है। इन्होंने प्रभात रंजन के सहयोग से हिन्दी में दूरदर्शन लेखन की विभिन्न पद्धतियों की चर्चा 'टेलीविज़न लेखन' नामक पुस्तक में की है। अतएव टेलीविज़न लेखन में व्यावहारिक पक्षों को सोदाहरण मित्रवत् शिक्षक की तरह समझाया गया है। पुस्तक हमें बताती है कि बुद्धि, विचार, संवेदना तथा प्रतिक्रिया को किस तरह गुंफित कर उसे 'विज़ुलाइज़' करना है।

यहाँ पृष्ठभूमि संबन्धित तमाम वाँछित जानकारियाँ है। टेलीविज़न लेखन की संरचना और उसके निर्माण की सभी प्रविधियों के उल्लेख के साथ महत्वपूर्ण और चर्चित पटकथाओं के अंश भी दिए गए हैं। टेलीविज़न लेखन के व्यावहारिक पक्ष को सशक्त बनाने केलिए विख्यात पटकथा लेखकों (जैसे कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, अशोक चक्रधर व अरुण प्रकाश) के साक्षात्कार भी दिए गए हैं और कुछ महत्वपूर्ण पटकथाओं के अंश भी पुस्तक में सम्मिलित किए गए हैं।

टेलीविज़न लेखन के संबन्ध में बहस के वक्त असग़र वजाहत का यह दावा है कि आधुनिक संचार पद्धतियों के विकास ने दृश्य श्रव्य को अभिव्यक्ति का केन्द्रीय माध्यम बना दिया है। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि तरह-तरह की सैद्धान्तिक आपत्तियों, बाज़ार पूँजी के प्रभावों, अपसंस्कृति के खतरों आदि के बाद भी टेलीविज़न, फिल्म, रेडियो और दूसरे दृश्य-श्रव्य माध्यम अपनी जगह तेज़ी से बना रहे हैं।

२.१३. यात्रा संस्मरण

असग़र वजाहत ने देश-विदेश की कई यात्राएँ की है। अपने असंख्य लेखों में उन्होंने उन यात्राओं की गुर को रेखांकित किया है। 'चलते तो अच्छा था' उनके ईरान यात्रा वृत्तान्त है। यह ईरान और आज़रबाईजान के यात्रा संस्मरण है। असग़र वजाहत ने केवल इन देशों की यात्रा ही नहीं की बल्कि उनके समाज, संस्कृति और इतिहास को समझने का भी प्रयास किया है। उन्हें

इस यात्रा के दौरान विभिन्न प्रकार के रोचक अनुभव हुए है। मसलन, उन्हें आज़रबाईजान में एक प्राचीन 'हिन्दू अग्नि' मिला। कोहेकाफ़ की परियों की तलाश में भी भटके और तबरेज़ में एक ठग द्वारा ठगे भी गए।

यात्राओं का आनन्द और स्वयं देखने तथा खोजने का सन्तोष 'चलते तो अच्छा था में जगह-जगह देखा जा सकता है। इन्होंने ये यात्राएँ साधारण ढंग से एक साधारण आदमी के रूप में की है जिसके परिणाम स्वरूप वे उन लोगों से मिल पाए हैं, जिनसे अन्यथा मिल पाना कठिन है।

भारत ईरान तथा मध्य एशिया के बीच प्राचीन काल से लेकर मध्य युग तक बड़े प्रगाढ़ संबन्ध रहे हैं। इसके चलते आज भी ईरान व मध्य एशिया में भारत की बड़ी मोहक छवि बनी हुई है। लेकिन उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अपने पड़ोसी देशों के साथ भारत का रिश्ता शिथिल पड़ गया था। आज के परिदृश्य में यह ज़रूरी है कि पड़ोस में उपलब्ध संभावनाओं पर ध्यान दिया जाए। प्रस्तुत यात्रा संस्मरण के बहाने लेखक ने हमें कुछ गहरे सामाजिक और राजनीतिक सवालों पर सोचने केलिए भी मजबूर किया है।

२.१४. रचना धर्मिता

असग़र वजाहत आठवें दशक के महत्वपूर्ण कथाकार हैं जिन्होंने मध्यवर्गीय जीवन के साथ गरीबी रेखा के नीचे जी रही ज़िन्दगी पर अपनी कलम चलाई है जो अपनी अस्मिता की लड़ाई में संघर्षरत् है जो टूट गया है परन्तु हताश - निराश नहीं हुआ। उन्होंने अपने आकार में छोटी - छोटी मगर

संदेश में बड़े कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में तहदार जीवन की गहरी पर्तो में आँका है और इंसान के उज्ज्वल पक्ष को सामने रखा है। उन्होंने विद्रूपता, अमानवीयता, साम्प्रदायिक उन्माद में पागल इनसानों पर लेखनी चलाई।

बचपन की घटनाएँ, छवियाँ या कच्ची उमर के सपने, महत्वकांक्षाएँ और उन सपनों का टूटना, ये सारी स्थितियाँ हर लेखक के लेखन में बार - बार आती हैं। अतीत कभी पीछा नहीं छोड़ता। वह चाहे अनचाहे सबके अन्दर जगमगाता रहता है। ऐसे ही अतीत में पले रचनाकार, असग़र वजाहत के बचपन और लड़कपन न सिर्फ बार-बार रचनाओं में झाँकता है बल्कि वह उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है। अपनी तमाम बुराइयों व अच्छाइयों के साथ वे अपने आपको एक ऐसा आदमी मानते है जो अराजक तो नहीं है पर पूरी तरह अनियोजित हैं। अतएव योजनाबद्धता उनके स्वभाव में नहीं है क्योंकि उनके बचपन और लड़कपन जिस माहौल में बीता वहाँ यह न थी। वहाँ सिर्फ बेफिक्री और मस्ती थी। वहाँ भविष्य का डर भी नहीं था। वहाँ जितना पैसा आता था, अनाज आता था, फल आते थे सब खा लिए या, बाँट दिये जाते थे क्योंकि यह पक्का विश्वास था कि आते रहेंगे। स्वभावगत बेफिक्री, मस्ती, खिलंदड़ापन और लोगों तथा चीज़ों पर पक्का विश्वास उनके लेखन में झलकता है चूँकि वे उनके स्वभाव के हिस्से बन चुके हैं।

उनके रचनाकार व्यक्तित्व ने एक भयमुक्त समाज व देश का सपना देखा था कि गरीबी कम होगी, असमानता घटेगी, लोग स्वस्थ और शिक्षित होंगे। अपराध कम होगा और जीवन स्तर बेहतर होगा। लेकिन राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और पूँजीपतियों ने मिलकर उनकी ख्वाहिशों को फिलहाल चकनाचूर कर दिया

है। हालाँकि उनके सपनों की एक दुनिया है - 'जहाँ गरीबी नहीं होगी, अत्याचार नहीं होंगे, शोषण नहीं होगा, हर आदमी को शिक्षा मिलेगी, न्याय मिलेगा, सम्मान मिलेगा।' [१] इन्हीं अधूरे सपनों ने ही उन्हें लिखने केलिए बाध्य किया है।

हिन्दी भाषा और साहित्य को लेकर भी उनका मन आशंकित था। वह यह था कि हिन्दी क्षेत्र में - यानी पचास - साठ करोड़ लोगों की भाषा के क्षेत्र में भाषा, साहित्य और संस्कृति फूले - फलेगी लेकिन आज स्थिति यह है कि हिन्दी की किताबें कुछ हज़ार भी नहीं बिकती। हिन्दी में अनूदित साहित्य विश्व साहित्य और भारतीय साहित्य कम है। शब्दकोश और विश्वकोश कम है। समाज या विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी सुदूर है। फिलहाल हिन्दी के समाचार पत्र भी अपने को हिन्दी क्षेत्र की संवेदना से अलग कर रहे हैं। हिन्दी समाचार पत्र अंग्रेज़ी की धुआँधार नकल में अजीब तरह से हास्य और करुणा के विषय बन गये हैं।

अतएव फिलहाल हिन्दी के नाम पर करोड़ों - खरबों रुपया हर साल नष्ट हो जाता है। इन हालातों में एक तटस्थ लेखक का हृदय आशंकित ज़रूर होता है। एक प्रतिबद्ध रचनाकार इन सपनों के टूटने से बेचैन नहीं रह सकता। एकता, देशप्रदान और बलिदान की भावना अपने शिखर पर पहूँची भारतवर्ष में, व्यक्ति केलिए अपने को असहाय, मज़बूर और विवश पाना कितनी निन्दनीय बात है।

अतः इन विद्रूपताओं के खिलाफ़ प्रतिबद्ध रचनाकार इसप्रकार प्रतिक्रिया प्रकट करेगा ही 'जहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता का डंका

---

१. *कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत (भूमिका)*

बजता था वहाँ आज क्या है? भयानक और आक्रामक धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, हिंसा और अपहरण, भ्रष्टाचार, लोकतान्त्रिक मूल्यों का विघटन नागर समाज का घोर पतन। ये सब कैसे हुआ? किसने किया? यह सपनों का टूटना है' [१] यही स्थितियाँ और इनके विभिन्न स्वरूप उनके लेखन में प्रतिध्वनित होते हैं। इन्हीं हालातों ने उन्हें इतनी दार्शनिक, कलात्मक पारदर्शी, व गतिशील बनाया।

एक सिद्धहस्त लघु कथाकार, कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार असग़र वजाहत, प्रत्येक विधा में लिखने को सहज महसूस करते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक विषय अपनेलिए स्वयं फार्म को चुन लेता है। प्रायः परिस्थितियों की वजह से 'फार्म' में बदलाव आता है। इसलिए उनकी स्थितियों के शैली और फार्म में परिवर्तन आते हैं। अतः कहीं उन्होंने प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी है तो कहीं लघु पंचतन्त्र शैली की कहानियाँ। नुक्कड़ नाटक लिखें तो, कभी आत्मकथात्मक उपन्यास। प्रत्येक लेखन के पश्चात् वे अपने को असंतुष्ट और बेचैन पाते हैं। यही अतृप्ति व बेचैनी ही उनकी रचना की आत्मा है, जो उसे श्रेष्ठतर कोटि तक पहूँचाने में काबिल है।

उनके लेखन की सबसे बड़ी खासियत उनकी भाषा की सादगी और किस्सागोई में महारत है। सादगी और किस्सागोई के संस्कार उन्हें मिलते रहे है। वे सर्वदा अपनी रचनाओं में सच का मज़ा लेने के पक्षधर है। चूँकि वे जानते हैं कि साहित्य में लाग-लपेट केलिए कोई स्थान नहीं होता। उनकी शर्त है कि लेखक की जीवन दृष्टि पाठक को प्रेरित करती है। लेखक अपनी कृतियों में जिन मूल्यों को स्थापित करता है वे उसकी रचना के माध्यम से पाठक के मन

---

(१) असग़र वजाहत - 'रचनाकार असग़र वजाहत से मधु की बातचीत' साक्षात्कार - अप्रैल २००६, पृ -१३

पर प्रभाव डालते हैं। बहरहाल व्यक्तिवादी, कलावादी और विचारधारा का विरोध करने वाले लेखकों से पृथक असगर वजाहत का साहित्य हमें जीवन से आँखें चार करने और उसे बदलने की दिशा देता है।

वे मानवीय गरिमा केसंघर्ष के लेखक हैं। वे अपने पाठकों व दर्शकों को भी संघर्ष और बदलाव का संदेश देते हैं। वे परिवर्तन की दिशा ही नहीं बल्कि परिवर्तन के उपादान भी प्रस्तुत करते हैं। एक प्रतिबद्ध रचनाकार की तरह उनका साहित्य मात्र कल्पना जगत की सैर नहीं कराता। वे जीवन और जगत के रहस्यों से पर्दा हटाने का काम करता है। उन्होंने जो जीवन में किया वही लेखन में किया है। वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर जीवन जीना और लेखन करना उनकी विशेषता है।

आध्यात्मिकता और धर्म के प्रति असग़र वजाहत का दृष्टिकोण बिलकुल स्पष्ट है। वे तर्क के आधार पर मानव विरोधी विचारों का खण्डन करते हैं। गैरतलब है उनके अन्दर अपने विचारों के सामने रखने की निर्भीकता और साहस है तो उसके साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शक्ति भी है। मार्क्सवादी लेखक होने की वजह से उनमें बुद्धि और तर्क के आधार पर अपना मत प्रकट करने की कलात्मक ऊर्जा है। उनका मन सांस्कृतिक संकट की वजह से होने वाली आपत्तियों से त्रस्त हैं। उनके मतानुसार सांस्कृतिक उदासीनता के कारण या बीज १८५७ की असफल क्रान्ति में छिपे हुए हैं। अंग्रेज़ों के राज को समाप्त कर देने की योजना बहुत लम्बे समय से बनाई जा रही थी। हॉलकि इस लड़ाई में राजा, नवाब, मौलवी, पंड़ित, सामन्त, किसान, दस्तकार और यहाँ तक कि वेश्याएँ भी शामिल थे जो कंपनी के शासन से बहुत दुःखी थे।

मतलब यह हुआ कि हिन्दी क्षेत्र ने बहुत बड़ा सपना देखा था। इस प्रकार की लड़ाई केलिए नैतिक बल की ज़रूरत है। मगर नैतिक बल के रहते हुए भी वह लड़ाई इसलिए हारे गये कि वे कबूतरबाज़ी, शतरंजबाज़ी, पतंगबाज़ी आदि में पड़े थे। यह भारतवर्ष का पहला सांस्कृतिक हार था। संस्कृति के प्रति उदासीन समाज में किताबों की स्थिति को लेकर असग़र वजाहत का मन चिन्तित है। यह बात निश्चित रूप से लेखक को हर हालत में सालती है लेकिन भविष्य के प्रति वे आस्थावान है।

यही आस्थावादी दृष्टि लेखक केलिए वाजिब है। अतः समाज की विद्रूपताओं के रहते आस्थावादी दृष्टिकोण ही उसे राह दिला सकते हैं- 'आशा है कि जनसंचार माध्यम अपने प्रतिस्पर्धा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे। यथास्थितिवाद के पोषक संचार माध्यम अपनी प्रतिस्पर्धा के कारण यथास्थिति को तोड़ने पर विवश होंगे और यदि वे ऐसा नहीं कर पाएँगे तो प्रतिस्पर्धा में असफल हो जाएँगे, और इक्कीसवीं सदी में असफलता सबसे बुरा शब्द होंगे जिसे कोई भी स्वीकार नहीं करेगा।' [१]

असग़र एक ऐसे रचनाकार है जो सामाजिक जीवन की गहराइयों में उतरने की क्षमता रखती है। वे उन वरिष्ठ कथाकारों में है; जिन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर भारत के संक्रमणशील समाज में बदलते हुए सामाजिक यथार्थ और मानव - मूल्यों की प्रामाणिक पहचान की है। उनका सामाजिक मूल्य उनके साहित्यिक मूल्य से किन्हीं अर्थों में कम नहीं है। भाषा और शिल्प के स्तर पर इनमें कहीं कोई आग्रह नहीं दिखाई देता। सूक्ष्म और संश्लिष्ट स्थितियों को भी यह इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उनमें बौद्धिकता का आरोप नहीं होने पाता।

---

(१) असग़र वजाहत - 'इक्कीसवीं सदी में असफलता सबसे बुरा शब्द होगा', हंस - फरवरी २००१, पृ - १४

उनकी रचनाएँ मानव - जीवन की भीषण त्रासदियों और कुरूपताओं को बहुत सहज ढंग से हमारे समक्ष रखती हैं और उनका एक आस्थावादी विकल्प प्रस्तुत करती हैं। यही दृष्टि उनके लेखन की शक्ति है। संवेदना की दृष्टि से असगर वजाहत उस परम्परा में आते हैं, जो प्रेमचन्द, यशपाल, भीष्म साहनी आदि की विरासत है और जो हिन्दी की वास्तविक और केन्द्रीय कथा - धारा है।

असग़र वाजाहत का कमोबेश लेखन साम्प्रदायिकता के खिलाफ एक सतत् संघर्ष है। लिहाज़ा उनका तमाम लेखन हिन्दूस्तानी सभ्यता - संस्कृति और उसकी साक्षी विरासत का प्रबल पक्षधर है। वे हमेशा उन ताकतों और हरकतों का विद्रोह करते रहे है जो भारतीय जनता की एकता को धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्रीयता, जातिवाद और भाषा के आधार पर अपने राजनैतिक व आर्थिक स्वार्थ केलिए बाँट रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने भविष्य के परिवर्तनों और सामाजिक संरचना की धड़कनों को स्वर और शब्द दिए है। उनके पास एक द्वन्द्वात्मक ऐतिहासिक समझ है। उनके लेखन का केन्द्रीय स्वर सामन्ती संस्कृति और पूँजीवादी समाज की विकृतियों का विवेक सम्मत विवेचन रहा है। उनका विचार है कि इन दोनों के पास मानव समाज को देने केलिए कोई भविष्य नहीं है और ये अपनी जीवनी शक्ति खो चुके हैं। वे दोनों अपनी स्वार्थ और धनलिप्सा हेतु भारत की अमूल्य धरोहर को नष्ट कर रहे हैं; परम्परा के नाम पर रूढ़ियों एवं कुरीतियों को प्रोत्साहन दे रहे है। अविवेकशील और अयथार्थ चिन्तन को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। जन हित की बात करके ये लोग स्वहित में संलग्न है। असग़र वजाहत ने अपनी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों व लेखों में भारत की इसी त्रासदी का इज़हार किया है।

२.१५. एक प्रतिबद्ध रचनाकार

असग़र वजाहत की प्रतिबद्धता समाज के सबसे कमज़ोर व्यक्ति के प्रति है। उन्होंने अपने चारों ओर की ज़िन्दगी के नब्ज़ को जाना है। देश के भविष्य के प्रति उनका मन आशंकित है। उनका आशंकित मन इस प्रकार विकल उठता है - 'सोचा था गरीबी कम होगी, असमानता घटेगी, लोग स्वस्थ और शिक्षित होंगे। अपराध कम होगा। जीवन स्तर बेहतर होगा। लेकिन राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों और पूँजीपतियों ने मिलकर हमारी पीढ़ी के इस सपने को फिलहाल चकनाचूर कर दिया है।' (१)

उनकी सृजन धर्मिता वामपंथी विचार धारा की ओर झुकी हुई है। इसलिए ही उनकी संवेदना आम आदमी के प्रति है। असग़र वजाहत ने अपनी निजी ज़िन्दगी के अनुभवों के आधार पर यह महसूस किया है कि मौजूदा व्यवस्था में साहित्य और साहित्यकार का भविष्य भी खतरे में है। दूषित राजनीति, रूढ़िवादी धर्म, नव उपनिवेशवाद, भूमण्डलीकरण आदि की काली छाया साहित्य और साहित्यकार के ऊपर भी मँडराती है। लेकिन वे कभी भी निराशावादी नहीं होते। वे सकारात्मक सोच ही पाठकों को अपनी रचनाओं के माध्यम से देते रहते हैं। उनका कहना है - 'शब्दों में जब राजनीति या कहिए अवसरवादी छद्म राजनीति की काली छाया पड़ने लगी तो लेखक को बड़ी बेचैनी होती है और वह शब्दों को बचाने केलिए बेचैन हो जाता है। वह जानता है शब्द ही न रहेंगे। यानी अर्थवान शब्द ही न रहेंगे तो मनुष्य ही न रहेगा समाज ही न रहेगा। इसलिए लेखक लिखता है शब्दों को अर्थ देने या अर्थवान बनाये रखने केलिए। चूँकि उसकेलिए साहित्य को छोड़कर अभिव्यक्ति देने का कोई और मंच नहीं बचा है'। (२)

---

(१) असग़र वजाहत 'रचनाकार असग़र वजाहत से मधु की बातचीत', साक्षात्कार - अप्रैल २००६, पृ - १२-१३

(२) कैसी आगी लगाई - असगर वजाहत (भूमिका)

२.१६. भाषा संबन्धी मान्यताएँ

असग़र वज़ाहत का कहना है कि भाषा का सवाल समाज व्यवस्था और सत्ताधारी वर्ग की सांस्कृतिक अभिरुचियों, व्यापार, शासन, विदेशों के साथ संबन्ध और ज्ञान के अन्य क्षेत्रों से जुडा हुआ है। भाषा की छीछलेदारी से उनका मन आशंकित है। उनका मानना है कि मुख्यतः अंग्रेज़ी काम - काज की भाषा, ज्ञान - विज्ञान की भाषा के रूप में प्रचलित रहेगी। वे हमेशा समाज की पिछड़ी दलित जातियों, अल्पसंख्यकों के भाषाई अवमूलन की स्थिति से चिन्तित है। इसकेलिए उनका विकल्प है कि अगर अंग्रेज़ी बोलने वाले वर्ग के वर्चस्व को समाप्त करना है तो भारत में आमूल परिवर्तन करना होगा। अतः सांस्कृतिक जागरूकता और साहित्यिक आन्दोलन को इस दिशा में योगदान देना होगा। बहरहाल बाज़ार की ताकतों से भाषा की मुक्ति उनका मकसद है।

भाषा संबन्धी उनका मन्तव्य है कि बाज़ार की गुलामी नहीं उसमें सम्मान जनक भागीदारी अपेक्षित है। 'अंग्रेज़ी विहीन या कम पढ़े लिखे लोगों का शोषण उस समय तक होता रहेगा, जब तक वे संगठित होकर लोकतन्त्र का एक जवाबदेह जनोन्मुखी पारदर्शी और सहभागी लोकतन्त्र नहीं बनायेंगे। फिलहाल लेखकों से उनकी बिनती है कि उन्हें हमेशा अपनी रचना के प्रति ईमानदार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि, लेखक अपने बदलाव के विचारों को समाज में होते देखना चाहते हैं तो निश्चित रूप से उसे एकजुट होना चाहिए।

बेशक असग़र वजाहत बहुमुखी प्रतीभा के धनी है।

३

तीसरा अध्याय:

असग़र वजाहत की नाट्य रचनाओं में सामाजिक संसक्तियाँ

तीसरा अध्याय:

असग़र वजाहत की नाट्य रचनाओं में सामाजिक संसक्तियाँ

३.१. हिन्दी नाटकः विकास के भिन्न पडाव

हिन्दी नाटक साहित्य विकास के कई पड़ाव तय कर चुका है। इस नाट्य यात्रा के दौरान जो नाट्योपलब्धियाँ हुई, उन्हें समीक्षकों ने कतिपय युगों के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया है जैसे 'भारतेन्दु युग' 'प्रसाद युग' तथा 'प्रसादोत्तर युग'। नाट्य लेखन की दिशा में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होता है उसमें स्वतन्त्रता काल एक बहुत बड़ी विभाजक रेखा का काम करता है।

प्राक् स्वतन्त्रकालीन हिन्दी नाटक के अन्तर्गत भारतेन्दु एवं प्रसाद युगीन नाट्य सर्जनाएँ संपूर्णता के साथ समाविष्ट हो जाती है। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप प्राक् स्वतन्त्रकालीन नाटकों की प्रवृत्तियाँ भी पृथक दिखाई पड़ती है। जैसे, ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, समस्या प्रधान सामाजिक नाटक, प्रतीक नाटक, गीति नाटक तथा एकांकी नाटक।

भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को युगबोध से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। रंगकर्मी भारतेन्दु ने कुल मिलाकर सत्रह मूल्यवान नाटकों की रचना की। उनके आदर्शवादी नाटकों का मकसद भारतीय राजनीतिक, धार्मिक व, आर्थिक, दुर्व्यवस्था को उखाड़ना था। उन्होंने 'अंधेर नगरी', 'पाखण्ड विडम्बन', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम', 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में सामाजिक अन्तर्विरोधों को उकेरने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने विभिन्न नाट्य शैलियों को अपनाया। भारतेन्दु ने नाटक को जनता के नज़दीक लाने केलिए उसके प्रस्तुतीकरण पक्ष को भी तरजीह दी।

स्वच्छन्दतावादी चेतना से युक्त प्रसाद के नाटकों का मुख्य स्वर अतीत का गौरवगान रहा है। साथ ही साथ देश की अवनति के मूल कारणों की खोज, राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने की कोशिश, साम्प्रदायिक सद्भावना पर ज़ोर, खोयी हुई आज़ादी को पुनः प्राप्त करना, आज़ादी की लड़ाई को एक प्रकार की गर्मी एवं स्फूर्ति प्रदान करना आदि उद्देश्य उनके नाटक में परिलक्षित हैं। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'अजात शत्रु' आदि उनके प्रमुख नाट्य कृतियाँ हैं।

समीक्षकों ने* उनके नाटकों को अभिनय की दृष्टि से टेढ़ी खीर माना है। यद्यपि आलोचकों ने प्रसाद के नाटकों की मंचीयता पर कई आपत्तियाँ उठायी है, फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि कुशल और प्रतिभाशाली निर्देशकों के आगमन के साथ उनके नाटकों का प्रस्तुतीकरण संभव हुआ। शान्ता गाँधी और रामगोपाल बजाज जैसे निर्देशकों द्वारा प्रसाद के नाटकों का सफल मंचन मुमकिन हुआ है।

** (१) दृथ्यान्तर - नरेन्द्र मोहन, पृ २११*
(२) जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ - ३

प्रसाद की ऐसिहासिक नाट्य परम्परा को आगे बढ़ाने की पहल जिन नाटककारों ने की उनमें हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्द दास, गोविन्द वल्लभ पन्त, वृन्दावन लाल वर्मा, उदय शंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा और जानकी वल्लभ शास्त्री आते हैं।

प्रसाद युगीन नाटकों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप एवं इब्सन और बर्नाड़ शॉ जैसे पश्चिमी नाटककार के बुद्धिवाद या प्रोब्लम प्ले से प्रेरित होकर हिन्दी में 'समस्या नाटक' का आविर्भाव हुआ जिसका संवाहक थे लक्ष्मीनारायण मिश्र। उनके प्रमुख नाटक है 'सिन्दूर की होली,' 'राक्षस का मंदिर' और 'आधीरात'। समस्या नाटक की नाट्य धारा को सर्जनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय उपेन्द्रनाथ अश्क को है। उन्हेंने अपने नाटकों में वैयक्तिक कुण्ठा एवं सामाजिक समस्याओं को बड़े ही यथार्थवादी ढंग से उभारा है। 'कैद' 'उड़ान' 'अलग - अलग रास्ते,' 'अंजोदीदी' इत्यादि कृतियाँ सही मायने में ज़िन्दगी के अनुभव को पेश करते हैं।

१९५० से लेकर हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रयोगशीलता के नये आयाम विकसित होने लगे और इसके संवाहक थे - जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश और धर्मवीर भारती। इन्होंने अतीत के फलक पर समकालीन समस्याओं की सफल अभिव्यक्ति करने की महत्वपूर्ण कोशिश की। हिन्दी नाट्य साहित्य को आधुनिकता के आयाम से जोड़ने की पहली महत्वपूर्ण कोशिश जगदीश चन्द्र माथुर ने की है। 'कोणार्क' में उन्होंने दो कलाकार के कला तथा जीवन संबन्धी विचारों को उकेरने का प्रयास किया है तो मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' में सत्ता तथा कलाकार के बीच की आपसी टकराहट को वाणी दी है।

'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने मिथकीय कथावस्तु के माध्यम से द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में युद्ध की विभीषिका का इज़हार किया है।

ज़ाहिर है अतीत के माध्यम से समसामयिकता की अभिव्यक्ति करने का प्रथम श्रेय जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश तथा धर्मवीर भारती को प्राप्त है। इस कड़ी में अगली कोशिश लक्ष्मी नारायण लाल की रही। उनके मिथकीय परिवेश में समसामयिक समस्याओं का बखूबी चित्रण करनेवाले नाटकों में 'कलंकी', 'सूर्यमुख', 'नरसिंह कथा' आदि उल्लेखनीय हैं।

समसामयिकता के इन अतीतोन्मुखी नाटकों में इतिहास का स्वर गौण है तथा वर्तमान यथार्थ की व्याख्या मुख्य है। यह प्रवृत्ति और भी तीव्र रूप में साठोत्तर नाटकों में अभिव्यक्त होती है। साठ के बाद के नाटकों में कथ्य चेतना के विभिन्न आयाम परिलक्षित हैं।

३.१.१. कथ्य चेतना के विभिन्न आयाम

कथ्य चेतना का पहला आयाम मिथकीय यथार्थ की समसामयिक व्याख्या से जुड़ा रहा। सुदूर अतीत चाहे इतिहास हो या पुराण के धरातल को वर्तमान धरातल के आमने - सामने खड़ा करके समसामयिक समस्याओं को पेश करने की प्रवृत्ति इन नाटकों में दिखाई पड़ती है। मौजूदा व्यवस्था में दूषित राजनीति के क्षेत्र में पल प्रतिपल बढ़ती मूल्य च्युति, बेचारी नारी का अन्तहीन शोषण, आम आदमी की बदहालत, युद्ध जन्य विभीषिका, संस्कृति का संकट आदि मुद्दों पर नाटककारों ने ज़ोर दिया है। माथुर का 'पहला राजा', लाल के 'सूर्यमुख', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'कलंकी' 'यक्ष प्रश्न', 'उत्तर युद्ध',

'नरसिंह कथा' और 'चतुर्भुज राक्षस', सुरेन्द्र वर्मा का 'आठवाँ सर्ग', शंकर शेष के 'कोमल गाँधार', 'एक और द्रोणाचार्य', दुष्यन्त कुमार का 'एक कण्ठ विषपायी', भीष्म साहनी के 'माधवी' 'हानुश' रेवती शरण वर्मा का 'राजा बली की कथा' गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' दूधनाथ सिंह का 'यमगाथा', दया प्रकाश सिंह का 'कथा एक कंस की', 'प्रभाकर श्रोत्रिय का 'इला' आदि नाटक इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। राजनीतिक विसंगतियों पर प्रत्यक्ष रूप से कुठाराघात करनेवाले नाटकों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी', 'लड़ाई' और 'अब गरीबी हटाओ' प्रमुख है। 'बकरी' के माध्यम से नाटककार ने तत्कालीन राजनीति के छलछद्म को चित्रित करते हुए जनवादी चेतना के आक्रोश को उभारने का जो प्रयास किया है, वह बेशक सराहनीय है। 'मौजूदा हालात को देखते हुए'(मृणाल पाण्डे), 'शुतुर्मुर्ग' (ज्ञानेन्द्र अग्निहोत्री) 'सिंहासन खाली है' (सुशील कुमार सिंह), 'प्रजा ही रहने दो' (गिरिराज किशोर), 'जादूगर जंगल में' (राजेश जोशी) आदि इस खेमे में आने वाले प्रमुख नाटक हैं। ये सारे के सारे नाटक व्यवस्था विरोधी भी है।

कथ्य का दूसरा आयाम महानगरीय ज़िन्दगी का ज़हरीला वातावरण और उस माहौल में बनते बिगड़ते पारिवारिक संबन्ध, पारिवारिक मूल्यों में आये हुए बदलाव, स्त्री - पुरुष संबन्धों की नैतिक गिरावट, महानगरीय सभ्यता में पनपते अमानवीय मूल्य, ऊब, संत्रास, अकेलापन, नारी शोषण एवं नारी अस्मिता की तलाश आदि से जुड़ा हैं। 'मरजीवा', 'युअर्स फेथपुली', 'तिलचट्टा,' 'गुफाएँ' (मुद्राराक्षस), 'देवयानी का कहना है' (रमेश बक्षी), 'कर्फ्यू', 'व्यक्तिगत', 'सगुन पंछी' (लक्ष्मी नारायण लाल), 'चार यारों की यार' (सुशील कुमार सिंह)

'एक और अजनबी' (मृदुला गर्ग), 'बिना दिवारों का घर' (मन्नू भण्डारी), 'नरमेध' (गिरिराज किशोर), 'घरौंदा', 'रक्त बीज', 'मूर्तिकार' (शंकर शेष), 'सुनो शेफाली' (कुसुम कुमार), 'और अब नहीं', 'श्वेत कमल' (विष्णु प्रभाकर), 'तीसरा हाथी' (रमेश बक्षी) 'ठहरी हुई ज़िन्दगी' (लक्ष्मीकान्त वर्मा) आदि नाटक महानगरीय परिवेश के अमानवीय मूल्यों को उद्घाटित करते हैं।

बदलते हुए जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री - पुरुष संबंध को विभिन्न कोणों से परखने की नव्य प्रवृत्ति का सूत्रपात दरअसल मोहन राकेश के नाटकों में ही हुआ। 'आधे - अधूरे' की सावित्री, एक नौकरी पेशा है, किन्तु घर की टूटती - बिखरती ज़िन्दगी से ऊबकर एक पूर्ण पुरुष की तलाश में, वह इधर उधर चार पुरुषों के पीछे भटकती रहती है।

स्त्री - पुरुष संबंधों की नैतिक गिरावट को शब्दबद्ध करने में सुरेन्द्र वर्मा के 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', मुद्राराक्षस के 'मरजीवा', 'युअर्स फेथफुली', 'तिलचट्टा', 'गुफाएँ', रमेश बक्षी का 'देवयानी का कहना है', लाल का 'कर्फ़्यू' आदि नाटक सफल हुए हैं।

इस दौर में नारी चेतना से जुडे नाटकों का प्रणयन भी काफी हुआ। सामयिक परिवेश से नारी समाज काफी प्रभावित रहने की वजह से उसके स्वरूप में आमूल परिवर्तन होने लगा। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता से उसमें नवोन्मेष का संचार हुआ। फलतः वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के बराबर की भूमिका निभाने लगी। अतः इस दौर के नाटकों में नारी विषयक सभी विचारों एवं तथ्यों का विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिरूपण मिलता है। किन्तु कहना न होगा

कि नारी जागरण के बजाय उसकी बेबसी को ज़्यादातर नाटककारों ने मुखरित करने का प्रयास किया है।

'तिलचट्टे' में नपुंसक पति (देव) को पतिव्रता बनकर बर्दाश्त करने के बदले केशी किसी डाक्टर से गर्भवती होना कुबूल करती है। 'मादा कैक्टस' की सुजाता अन्ततोगत्वा पुरुष के निर्मम व्यवहार का शिकार बनती ही है। 'रातरानी' की कुन्तल नारी की अन्दरूनी तकलीफ को वाणी देती है।

३.१.२. नये शिल्प

नया कथ्य हमेशा नये शिल्प की माँग करता है। पूर्ववर्ती नाटकों में कथ्य के लिए घटनाएँ काफी महत्वपूर्ण थी, लेकिन स्वतंत्रता के बाद विशेषकर साठ के बाद घटनाओं की जगह संवेदना ने ले ली। अतएव नये कथ्य के लिए पुराने शिल्प नाकाफी सिद्ध हुए। तदनुरूप पचास से लेकर विशेषकर साठ से लेकर शिल्प में भी नये आयाम दीख पडने लगे। पात्र एवं चरित्र चित्रण, भाषा, रंगमंच आदि के धरातल पर भी नव्य प्रयोग होने लगे।

वर्तमान युग की सामाजिक विसंगतियों और विशेषतः विघटित हो रहे जीवन मूल्यों को चित्रित करने के लिए पश्चिमी नाट्य शिल्प का प्रयोग हुआ। विपिन कुमार अग्रवाल के लघु नाटक 'तीन अपाहिज', 'लोटन', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'रोशनी एक नदी है', हमीदुल्ला का 'उलझी आकृतियाँ', मणि मधुकर का 'रस गन्धर्व' 'बुलबुल सराय' तथा 'खेला पोलमपुर', लक्ष्मीनारायण लाल का 'अब्दुल्ला दीवाना' आदि असंगत शैली के महत्वपूर्ण नाटक हैं। इन नाटकों में विसंगतियों को हमेशा हर क्षण होनेवाली घटनाओं से जोड़ने की सराहनीय कोशिश हुई है।

इस प्रकार के पाश्चात्य शिल्प के इस्तेमाल के साथ - साथ कतिपय नाट्यकारों ने लोक नाट्य शैली को अपनाया। इस युग के नाटककारों ने प्राचीन नाट्य परंपरा को आत्मसात् करने के साथ ही साथ दर्शक एवं अभिनेता के बीच के फासले को मिटाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शैली को अपनानेवालों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अग्रगण्य है। उनके 'बकरी', 'अब गरीबी हटाओ' और 'लड़ाई' इस दिशा के हिमायती है। मणि मधुकर का 'रस गन्धर्व', सुशील कुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है', मुद्राराक्षस का 'आला अफ्सर', शंकर शेष का 'अरे मायावी सरोवर', हबीब तनवीर का 'आगरा बाज़ार' आदि नाटक जो हैं परंपरा के पुनरान्वेषण में तत्पर दिखाई पडते हैं। इस प्रकार के लोक नाट्य रूपों के उन्मुक्त शैली के अन्तर्गत यक्षगान शैली, नौटंकी शैली, तमाशा शैली, जात्रा शैली तथा लोक कथा शैली सन्निहित होती है। हबीब तनवीर का 'मिट्‌टी की गाडी', नागबोडस का 'वसीयत', राकेश का 'रामलीला' आदि इसी शैली पर आश्रित नाटक हैं।

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में चरित्र - सृष्टि के स्तर पर जो नव्य प्रयोग हुए हैं, वह अवश्य नाटक की अपनी उपलब्धि है। चरित्र संबंधी पुरानी अवधारणा के मूल में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित जैसा जो वर्गीकरण मौजूद था वह एकदम गायब हो चुका है। साथ ही उत्तम, मध्यम, अधम वाली परिकल्पना भी। पात्रों के अन्तस्तल में घुसकर संघर्षों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना, चरित्र परिकल्पना में निश्चय ही एक नई दिशा है। जीवन मूल्यों को तरजीह देनेवाले पात्र निःसन्देह एक उपलब्धि है। अधिकतर पात्रों की वाणी में दलित - पीड़ित, शोषित तबके के लोगों की व्यथा मूर्त हुई है। अपनी अस्मिता को पहचाननेवाले

सशक्त नारी पात्रों की सृष्टि भी की गई हैं। 'पहला राजा' का कवष, 'एक कंठ विषपायी' का सर्वहत, 'बकरी' का युवक, 'मरजीवा' का आदर्श, 'कलंकी' का हेरूप, 'सत्य हरिश्चन्द्र' का लौका, 'लडाई' का सत्यव्रत, 'रोशनी एक नदी' की लड़की एवं कुमकुम ये सब आम आदमी के प्रतिनिधि हैं। अतएव जनमानस की पीडामय ज़िन्दगी को मुखरित करने हेतु नाटकों में लघु मानव को स्थान देना, एकदम वाजिब था। नामहीन पात्रों की सृष्टि भी हुई है। 'जिन स्थलों पर नाटककारों को ऐसा महसूस हुआ है कि वह जो कुछ दिखलाना चाहता है वह एक व्यक्ति की बात न होकर मानव समुदाय की बात है, वैसे स्थलों पर उसने चरित्रों को नामहीन रखा है।'[१] अतः व्यक्तिवादि संज्ञा के बदले जातिवादी संज्ञा का प्रयोग करने लगा। 'तालों में बन्द प्रजातन्त्र,' 'चिन्दी मास्टर' 'इकतारे की आँख', 'व्यक्तिगत', 'सबरंग मोहभंग', 'वामाचार', 'रसगन्धर्व', 'बुलबुल सराय' आदि अनेक नाटकों में इस प्रकार के नवीन प्रयोग मिलते हैं।

भाषा को आम आदमी की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम बनाने में इस युग के नाटक सफल हुए हैं। नाट्य भाषा को साहित्य या पुस्तकों की सडी - गली भाषा से उबार कर इस दौर के नाटककारों ने युग की मनःस्थिति को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम बनाया। बिम्बों एवं प्रतीकों के सहारे भाषा को रंगमंच के अनुकूल बनाना, लिखी गयी भाषा से की गयी भाषा का इस्तेमाल आदि नव्य प्रयोग होने लगा। भाषा को प्रयोग के धरातल पर एक सर्जनात्मक उपलब्धि के रूप में स्वीकार करने की शुरूआत मोहन राकेश के नाटकों से होती है। राकेश के बाद लाल, सुरेन्द्र वर्मा, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, शंकर शेष आदि ने भाषा में भाव की तीव्रता के साथ बोलचाल की

(१) नया नाटक उद्भव और विकास - डॉ. नर नारायण राय - पृ - २४९

सहजता को जोड़ने का जो प्रयास किया वह दरकार भी था।

स्वतंत्रता के दरमियान लगभग पचास से लेकर ही रंगमंच में नवीन प्रयोगों का बोलबाला हुआ। वैसे तो हम सब जानते हैं कि नाटक का संबन्ध रंगमंच से है और रंगमंच का सीधा संबन्ध दर्शक से। हिन्दी रंगमंच के विकास में 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा', बंबई की 'पृथ्वी थियेटर्स' और दिल्ली की 'श्रीराम सेण्डर' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ध्वनियोजना, प्रकाश योजना, रंग संकेत, पार्श्वध्वनि आदि नव्य प्रयोग साठोत्तर रंग मंचीय उपलब्धि है।

हिन्दी रंगमंच को समृद्ध एवं दिलचस्प बनाने में इब्राहिम अलकाजी, बी. वी. कारान्त, सत्यदेव दुबे, ऊर्मिला थपलियाल, किरण कुमार, विमल राठ, ओमशिवपुरी, हबीब तनवीर, सुभाष सहगल, श्यामानन्द जालान, के. के. रैना आदि की देन सराहनीय है। ज़ाहिर है बीसवीं सदी के छठे दशक से नवें दशक तक हिन्दी नाटक एवं रंगमंच के स्वरूप और उद्देश्यो में कई प्रकार का बदलाव आया है। अपनी सर्जनात्मक सार्थकता पाने केलिए साठोत्तर निर्देशकों ने काव्यात्मक, यथार्थवादी, विस्संगतिवादी और गैर यथार्थवादी शैलियों का इस्तेमाल किया। महिला निर्देशिकाओं का आगमन रंगमंच के क्षेत्र की एक अन्य उपलब्धि है। महिला निर्देशिकाओं में अमाल अल्लाना, कीर्ति जैन, उषा गांगुली, अनामिका हक्सर, शान्ता गान्धी, मृणाल पाण्डे,कविता नागपाल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

एक ही नाटक भिन्न - भिन्न निर्देशकों के हाथ में पड़कर भिन्न - भिन्न अर्थ पाते है। यह तो निर्देशक की सूझ - बूझ पर आश्रित है।

देश के भिन्न - भिन्न राज्यों के नाटककारों के अपसी सहयोग और लेन

- देन भी रंगमंच के क्षेत्र में एक नई दिशा की सूचना देते हैं। नाटककार और निर्देशक के आपसी समझौता और सहयोग रंगमंच के क्षेत्र में एक सर्जनात्मक सफलता का कारण बनता जा रहा है। समकालीन हिन्दी नाट्य लेखन को वैविध्यपूर्ण, सार्थक, रोचक एवं नई संभावनाओं से परिपूर्ण करने में अनूदित एवं रूपान्तरित नाटक सहायक सिद्ध हुए हैं। हिन्दी के संपूर्ण रंग परिदृश्य पर उपन्यासों के नाट्य रूपान्तरों की एक लंबी परंपरा कायम है। 'होरी' (विष्णु प्रभाकर), 'सूरज का सातवाँ घोडा' (नरेन्द्र आचार्य), 'रंगनाथ की वापसी' (गिरीश रस्तोगी), 'महाभोज' (मन्नू भण्डारी) आदि इस खेमे के उल्लेखनीय नाट्य रूपांतर हैं।

उपन्यास के अतिरिक्त कविता, कहानी, खण्डकाव्य, व्यंग्य और फिल्मालेख इत्यादि के नाट्य रूपान्तर भी हिन्दी रंगमंच पर गाहे - ब- गाहे पेश किये ही जाते रहे हैं। मुक्तिबोध की लंबी कविता 'अन्धेरे में' (आशंका के दीप), धर्मवीर भारती की नाट्य कविता 'मुनादी', अज्ञेय की बिम्बात्मक कविता 'असाध्य वीणा', धूमिल की 'मोचीराम' तथा सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी' आदि का मंचन क्रमशः विजय सोनी, गिरीश रस्तोगी तथा मुद्राराक्षस द्वारा मुमकिन हुआ। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (उसने कहा था) प्रेमचन्द, प्रसाद से लेकर आज के कथाकारों की अनेकानेक कहानियों के कई रूपों में हुए नाट्य रूपान्तरों का मंचन भी हुआ है। इन सबके पीछे निःसन्देह कुशल, प्रतिभासंपन्न, नयी सूझ-बूझ से युक्त एवं अनुभव संपन्न निर्देशकों का सहयोग है।

भारतीय रंगमंच के नये दौर में नयी प्रदर्शन शैलियों की तलाश का जो सिलसिला शुरू हुआ है वह बेशक विचारणीय है। यानी कि नाटक खुले मैदान,

गली, नुक्कड़, चौराहा, लान चौराहा आदि सार्वजनिक स्थानों पर आसानी से खेले जाने लगे। गोविन्द रजनीश के मुताबिक 'भारतीय नाटकों में कथ्य के स्तर पर ही बदलाव नहीं आये, अपितु रंगमंचीय तकनीक व प्रयोगों में भी नयायन दिखाई पड़ा। यथार्थवादी मंच जो पहले चौखटों में बन्द था, उसकी जकड़न टूटी।'(१) अर्थात् राजनीतिक समाज के खुरदरे यथार्थ एवं पेचीदी समस्याओं को अभिव्यक्त करते हुए नुक्कड़ नाटकों का सृजन साठोत्तरी हिन्दी नाटकों की विशेषता है।

सन् १९७४-७५ के आसपास ही जनवादी आन्दोलन के साथ - साथ 'नुक्कड़ नाटक' का उदय हुआ। रंगकर्मी सफदर हाशमी ने इप्टा और दिल्ली जन नाट्य मंच में काम करते हुए नुक्कड़ नाटक की संभावनाओं का विस्तार किया था। डॉ. नर नारायण राय, डॉ. जयदेव तनेजा जैसे आलोचक इसकी शुरुआत पारंपरिक लोक नाट्य से जोड़ते हैं। लेकिन हक़ीक़त में हिन्दी जनवादी आन्दोलन की जड़ों को नुक्कड़ नाट्य साहित्य ने आत्मसात् किया था। नुक्कड़ नाटक के संबन्ध में सफ़दर हाशमी का कहना है 'वर्तमान पीढ़ी के नुक्कड़ रंगकर्मी, अपने पाँचवें और छठें दशक के पूर्वपतियों के विपरीत, इसके विशिष्ट आकारगत स्वरूप के बारे में कहीं ज़्यादा सजग है। अपने रंगकर्म की सैद्धांतिक प्रकृति और राजनीतिक शक्तियों के साथ इसकी खुली पक्षधरता को बिना झिझक स्वीकार करके वे अब सिर्फ इश्तहार नाटक नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं।'(२) नुक्कड़ नाटकों के फलस्वरूप चौराहों, सड़कों, पार्कों एवं मैदानों में खेले जानेवाले नाटकों की धूम मच गई। इसका नतीजा यह हुआ कि नाटक बन्द हाल से स्वतन्त्र हुआ और आम जनता के एकदम नज़दीक

---

(१) गोविंद रजनीश - 'भारतीय नाटक एवं रंगमंच के चार दशक',
मधुमती - मई २००२ पृ - २९

(२) जन नाट्य मंच - सफदर हाशमी, पृ -४५

पहूँचने लगे। इसलिए ही नेमिचन्द्र जैन ने यों व्यक्त किया कि 'सबसे पहले पिछले सौ वर्ष के अतिनाटकीय और बनावटी भावना प्रधान प्रदर्शनी के बजाय अधिक स्वाभाविक और ज़िन्दगी की हालत तथा लोगों के आपसी संबन्धों को ज़्यादा से ज़्यादा यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश इस दौर के नाटकों में हुई है।'[१]

दरअसल नुक्कड़ नाटक आम जनता को दृष्टि में रखकर उसकी समस्याओं को उसी की भाषा में प्रस्तुत करता हैं। अतएव नुक्कड़ नाटक जीवन व समाज के सम्मुख एक बेहतर विकल्प रख सकते हैं। यह सच्चे जनतन्त्र की माँग करते हैं जहाँ जनता का अत्थान हो। नुक्कड़ नाट्य आन्दोलन के प्रारम्भ में नुक्कड़ नाट्य मंडलियों ने (जैसे 'जन नाट्य मंच' 'निशान्त नाट्य मंच', 'दिशा जन सांस्कृतिक मंच', 'अनाम') असगर वजाहत , रमेश उपाध्याय, शिवराम, राजेश कुमार, बृजमोहन, स्वयं प्रकाश, हरीश भादानी आदि कई नाट्यकर्मियों के नाटकों का प्रदर्शन किया था। रमेश उपाध्याय के 'राजा की रसोई', भारत   'भाग्य विधाता', 'गिरगिट', 'हरिजन दहन' और 'ब्रह्म का स्वांग', शिवराम के 'जनता पागल हो गयी है', 'कुकडूँ कूँ' व 'घुसपैठिये', असगर वजाहत के 'मुजरिम कौन है'?, 'सबसे सस्ता गोश्त' और 'फर्क कहाँ है'?, स्वयं प्रकाश के 'नयी बिरादरी' आदि नाटकों का मंचन सफल हुए हैं। लेकिन नाट्यकारों की यह शिकायत रही है कि नुक्कड़ नाट्य मंडलियों ने नाटकों का मंचन करते वक्त नाटककारों को उनका वाजिब श्रेय नहीं दिया है। बहरहाल नाटक को सार्वजनिक बनाने में नुक्कड़ नाटक कमोबेश सक्षम हुए हैं।

ज़ाहिर है साठोत्तर हिन्दी नाटक परिवेश की माँग को निभाने में बेशक

(१) दृश्य अदृश्य - नेमिचन्द्र जैन, पृ - ११०.

सफल हुए हैं। इस दौर के नाटककारों ने समाज के एकदम अनछुए पहलुओं पर कलम चलाई है। साठोत्तर हिन्दी नाटक को एक नई दिशा प्रदान करने में जिन नाटककारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, उनमें असग़र वजाहत की एक अलग शिनाख्त है।

३.२. असग़र वजाहत के नाटक

सामाजिक चेतना से जुड़े असग़र वजाहत के नाटकों की कथ्यगत विशेषताओं को परखने की कोशिश यहाँ हुई है।

३.२.१. 'ओ जन्म्या ई नई': मज़हबी मतवालापन के विरुद्ध गूँजती आवाज़

१५ अगस्त १९४७ को भारत का बंटवारा हो गया और पाकिस्तान का जन्म हुआ। यह विकट हादसा समूचे इतिहास में एक शर्मनाक त्रासदीय घटना के रूप में घटित हुआ। स्वाधीन भारत की सबसे भयंकर एवं बीहड़ समस्या कट्टर पंथी साम्प्रदायिकता को लेकर हुई जिसका धक्का भारतीय मानस पर अब भी ज़िन्दा हुआ लगता है। स्वतन्त्र भारत के संविधान में धर्म निरपेक्ष और साम्प्रदायिक सद्भाव पर अधिष्ठित कौम की संकल्पना है। मगर सच्चाई यह है कि आदर्श की फुलवारी में झूमते हमारे कदम - बार बार साम्प्रदायिक तनाव की गर्मी से झुलसने लगते हैं। गौरतलब है अंग्रेज़ों ने भारत में सांप्रदायिकता के बीज बोने केलिए राजनीतिक सुविधाओं एवं आर्थिक पक्षधरता के हथियार

का भी लगातार इस्तेमाल किया था। अतः राजनीति के कुचक्र में पडे धर्म ने साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लिया। हिन्दू मुस्लिम धर्म के आपसी विभेद के राजनीतिक इस्तेमाल से यह पैदा हुई।

विभाजन के उपरान्त जो दंगे - फिसाद हुए थे उनमें अनेकों की ज़िन्दगी बर्बाद हो गयी। लाखों लोगों के स्थानान्तरण की समस्या उठ खड़ी हुई। घोर साम्प्रदायिक वैर के सबब हिन्दू को मुसलमान म्लेच्छ नज़र आता है और मुसलमान को हिन्दू काफिर नज़र आता है। अन्ध धार्मिकता ने दोनों जातियों को अपने जबड़ों में भींचकर लहूलुहान कर दिया। दर असल 'अन्ध धार्मिकता मनुष्य को अविवेकी बनाती है, उसकी मानवीयता को मारती है, जिसके कारण मनुष्य धर्म के नाम पर ऐसे कार्य करने लगता है जिन्हें किसी भी स्थिति में मनुष्योचित नहीं कहा जा सकता।'[१] इन सबके मूल में वस्तुतः धर्म का राजनीतिकरण ही है। धार्मिक राजनीतिक गठजोड ने साधारण मानव का हाल बेहाल बना दिया है।

आज भी देश के पृथक स्थलों पर साम्प्रदायिक तनाव से उत्पन्न बर्बरता की खुली नाच देखने को मिलती है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में 'आज के भारतीय समाज में उग्र सांप्रदायिकता की आँधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार - प्रसार हो रहा है। जाति भेद खूँखार जाति युद्ध बन रहा है। तरह - तरह के दुराग्रहों कट्टरताओं और संकीर्णताओं का बोलबाला है।' [२] साम्प्रदायिक धार्मिक विवादों का विष गुजरात में कैंसर की भाँति लग चुका है। मज़हबी दीवानगी से उत्पन्न पैशाचिकता का अट्टहास हर कहीं गूँज उठता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि देश का एक और विभाजन

(१) साहित्य और सामाजिक मूल्य - ड़ॉ. हर दयाल, पृ ११

(२) कबीर की खोज - राजकिशोर, पृ - १९३

करवाने का इरादा रखती है ऐसी सांप्रदायिक शक्तियाँ। मशहूर गीतकार जावेद अख्तर ने सूचित किया है 'साम्प्रदायिक शक्तियाँ संविधान द्वारा प्रदत्त हमारे अधिकारों पर ही हमला बोल रही है।'(१)

सर्वथा १९४७ का वह समय हमारा इतिहास भी है और वर्तमान भी। एक ऐसा इतिहास जो बीतकर भी बीतता नहीं। धर्म बनाम राजनीति साम्प्रदायिक जोश और स्वार्थ - मोह से उत्पन्न अमानवीय, मानव विरोधी कारनामों को सर्वदा बढ़ावा देती है। इस यथार्थ को पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार कर असग़र वजाहत ने 'ओ जन्म्या ई नईं' नामक नाटक की सृष्टि की।

उपरोक्त नाटक की कथाभूमि विभाजन के दर्मियान लाहौर के एक मोहल्ले की है। लाहौर में यह मसल मश्हूर था कि 'जिन लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या ई नईं'। नाटक में एक ऐसे परिवार की पेशकश है जो विस्थापन के दौरान शरणार्थी बना दिये गये थे। अपने परिवेश, घर परिवार, धन दौलत, उद्योग धन्धे सब कुछ लखनऊ में छोड़कर सिकन्दर मिर्ज़ा को अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ भागना पड़ा। उस भागदौड़ में अत्याचारियों की ओर लूट-पाट भी हुए। फिर बेसहारा और बेमददगार कैम्प में महीनों पड़े रहे। अपनी जो जायदाद लखनऊ में छोड़ आये उसके एवज़ उन्हें कस्टोडियन वालों द्वारा लाहौर में रतन जौहरी की हवेली एलाट हुई। हवेली में रतन जौहरी की बेहद बूढ़ी माँ बची रह गई है जिसे लाहौर की ज़मीन से बेइन्तहा मुहब्बत है। उसका यह विश्वास था कि रतन जौहरी कभी वापिस आयेगा। वह यह मानने केलिए हरगिज़ तैयार नहीं थी कि उसका बेटा विभाजन के दौरान मारा गया। उक्त भरोसे के तहत वह बंटवारे के बावजूद अपने प्यारे शहर लाहौर और घर

---

(१) जावेद अख्तर - नव भारत टाइंस, ११-०१-०३, पृ - ६

को किसी भी मूल्य पर छोड़ना नहीं चाहती थी।

मिर्जा किसी भी तरह समझा-बुझाकर उससे हवेली छुड़वाने की चेष्टा करता है, मगर विफल रहते हैं। आहिस्ता - आहिस्ता धर्म परायण स्नेहमयी वह स्त्री अपनी निःस्वार्थ सेवा और मुहब्बत के बल पर लखनऊ से उखड़ कर उसकी हवेली में आ बसे मिर्जा और उनके परिवार की ही नहीं बल्कि वहाँ बसे अन्य उदार एवं सहिष्णु मुसलमानों का दिल जीत लेती है। वह सबकी चहेती 'माई' बन जाती है। वह अपने धर्म और विश्वास से दीवाली मनाती है।

परन्तु एक तरफ कतिपय असामाजिक तत्व धर्म के नाम पर मनमानी चलाने की कोशिश करते हैं। वे किसी भी कीमत पर माई को पाकिस्तान से भगाना चाहते है। दर असल उनकी ऐसी करतूतों के पीछे अपनी खुदगर्जी ही काम करती है। वे अपनी कौम में एक गैर बिरादरी की स्त्री की मौजूदगी कभी भी बर्दाश्त नहीं करते। यहीं नहीं उसकी हिफाज़त करनेवाले मिर्ज़ा को वे धमकी भी देते है। वे रतन की माँ को वहाँ से छुड़वा कर बदले में अपनी कब्जा चाहते थे। इसी इच्छा लेकर मौलवी साहब को भी उस स्त्री के खिलाफ़ भटकाने की कोशिश करते हैं। परन्तु सफल नहीं होते।

आरम्भ में किसी भी कीमत पर अपना मकान और कौम छोड़ने में नामंज़ूरी प्रकट करनेवाली माई अपनी वजह से मिर्जा परिवार पर आनेवाली मुसीबत की आशंका से खुद-ब-खुद घर एवं लाहौर छोड़कर भारत जाना चाहती है। मगर सबके सब अपने प्यार का वास्ता देकर उसे किसी कीमत पर जाने नहीं देते। अन्ततोगत्वा स्वयं मृत्यु उसका वरण करती है। उसका इंतिकाल हो जाने पर मुहल्ले के सच्चे धार्मिक मौलवी इकरामुद्दीन तथा अन्य

नेक मुसलमान मिलकर हिन्दू धर्म के मुताबिक उसका दाह - संस्कार कर देते हैं।

अन्त में धर्म की आड़ लेनेवाले पहलवान और उसके गुंड़े साथियाँ एकजुट होकर ईमानदार मौलवी को नमाज़ पढ़ते वक्त मार डालते हैं।

प्रस्तुत नाटक देश - विभाजन (भारत - पाक) की त्रासदी पर आधारित है। यह हिन्दू - मुस्लिम भाईचारे को बल प्रदान करनेवाला एक प्रासंगिक, मार्मिक एवं अर्थपूर्ण नाटक है। नाट्यकार ने इसमें बड़ी कुशलता से साम्प्रदायिक एकता की पृष्ठभूमि में प्रगाढ़ सांस्कृतिक, धार्मिक संबन्धों का रेखांकन किया है।

घोर साम्प्रदायिकता के उक्त दहशत भरे वातावरण में भी हिन्दू औरत की हिफाज़त करनेवाले मुसलमानों तथा मरणोपरान्त उसके दाह संस्कार में शरीक होने को तत्पर सच्चे धार्मिक मौलवी और कतिपय मुसमानों का चित्र खींचते वक्त नाटककार का मकसद यकीनन ही इनसानी रिश्तों के जज़बादी ताने बाने में प्रस्तुत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना है। अतः हिन्दू - मुस्लिम एकता और भाईचारे को बल प्रदान करना है।

३.२.१.१. विस्थापितों की अन्दरूनी तकलीफ़

नाटक में विस्थापितों का दर्द पूर्णतः दर्ज किया गया है। विभाजन का एक महत्वपूर्ण पहलू है - ज़मीन से उखड़े हुए आदमी की अन्तर्वेदना और करुणा। विभाजन के पश्चात् तज्जनित तबादला शुरू हुए। विभाजन का

फैसला एकाएक लेने पर जनता को स्थानान्तरण करने का समय तक नहीं मिला। अत्याचारी एवं कट्टर धर्माचारियों ने अमुक वक्त का सदुपयोग किया। सल्तनत खामोश रही। पाकिस्तानी इलाकों से भारत की ओर और यहाँ से पाकिस्तान की ओर भी शरणार्थियों की भीड़ लगी रही। इनके साथ जनता का व्यवहार भी इनकार का था। एक ओर तो वे उखड़े एवं उजड़े हुए थे तो दूसरी ओर वे तिरस्कृत विदेशी भी थे।

तुरन्त हुए विभाजन से जनता बेघर हो गई तथा इनसानी रिश्तों में दरारें पडी। अपने स्वजनों, मित्रों व बन्धुओं और पड़ोसियों से बिछुड़ना पडा। अपने वतन के साथ हर एक आदमी की एक अलग आत्मीयता होती है। एक दूसरी मिट्टी, जहाँ की हवा, पानी किसी भी हाल पर उनकेलिए परायी है। बेघरबार हो जाने पर उन्हें बेपनाह ज़िन्दगी बितानी पड़ती है। यही नहीं, एक शरणार्थी के रूप में कभी - कभी उसे पशुओं से भी गयी बीती ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ती है। नए परिवेश में जाकर उन्हें तिरस्कार, उपेक्षा एवं अनादर का मुकाबला करना पड़ता है। उसकेलिए काफी मिसाल इतिहास के पन्नों में बिखरी पड़ी है। जब बरसों की कमाई के बाद घर उजड़ जाता है तो उसकी पीड़ा की कोई हद नहीं होती। वे भौतिक एवं मानसिक स्तर पर शून्य दिखते हैं। उनका आहत मन इन शब्दों में अभिव्यक्ति पाते हैं - 'देखिए आप हमारी मज़बूरी को समझिए... हम वहाँ से लुटे पिटे आए है........ मालो दौलत लूट गया...... बेसहारा और बेमददगार यहाँ के कैम्प में महीनों पडे रहे......... खाने का ठीक न सोने का ठिकाना अब खुदा करके हमें ये मकान एलाट हुआ है........ अपनेलिए न सही बच्चों की खातिर ही सही अब लाहौर जमना है। लखनऊ में मेरा चिकन

का कारखाना था यहाँ देखिए अल्लाह किस तरह रोज़ी - रोटी देता है.....'[1] सिकन्दर मिर्ज़ा एवं परिवार अपने वतन से उखड़े हुए ऐसे असंख्य परिवारों केलिए निदर्शन है।

३.२.१.२ सच्ची मानवीयता का पाठ

मिर्जा को आबंटित किये गये मकान का असली हकदार रतन की माँ जो है सीधी - साधी हिन्दू औरत है। उसका धार्मिक विश्वास उसे अलगाव नहीं, बल्कि दूसरे लोगों से मिलजुल कर रहने की शिक्षा देते हैं। मुहल्ले का मौलवी जो है इस्लाम का वास्तविक स्वरूप अर्थात् मानवीय, उदार, सहिष्णु स्वरूप को सामने रखता है। दोनों के धर्म अलग-अलग होने के बावजूद उसका सन्देश एक ही है। चूँकि वे मनुष्यता को बहुत बड़ा स्थान देते हैं। मोहल्ले के गुंड़े, पहलवान याकूब खाँ और अन्य इस्लाम धर्मावलंबी जो है धर्म की आड़ में वह सब कुछ करना चाहते हैं जो अमानवीय है, जुल्म है और जिसकी अनुमति संसार का कोई भी धर्म नहीं दे सकता।

लाहौर में किसी तरह बची रह गई बुढ़िया रतन की माँ को गुंड़े इसलिए मार डालना चाहते है कि उन्हें उसके पास से बड़ा धन - दौलत मिलने की आशा है। किन्तु वे इस काम के ऊपर धर्म की मोहर लगाने मौलवी के निकट जाते हैं। बहरहाल मौलवी ऐसा करने से सख्त इनकार कर देता है। माई अपने धर्म और संस्कार के होने के बावजूद मोहल्ले के सभी लोगों के बीच अपना गहरा संबन्ध रखती है। जब विभाजन के बाद की पहली दीवाली आती है तो उसे मोहल्ले के लोग सहर्ष दीवाली मनाने का तकाज़ा देते हैं। दीवाली मनाने

---

(१)पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ २८७

तथा पूजापाठ किये जाने का बहाना बनाकर गुंड़े पुनः जब मौलवी के पास जाते हैं और उससे यह जानना चाहते है कि हिन्दू औरत को इस्लाम हुकूमत में ये सब करने का अधिकार है या नहीं। मौलवी जो कुछ कहता है उसका आधार 'कुरान' और 'हदीस' हैं। उनका कथन यहाँ स्पष्ट हुआ है 'भई हदीस शरीफ है कि तुम दूसरों के खुदाओं को बूरा न कहो, ताकि वह तुम्हारे खुदा को बुरा न कहें, तुम दूसरों के मज़हब को बुरा न कहो ताकि वह तुम्हारे मज़हब को बुरा न कहें। बेटा इस्लाम ने बहुत हक ऐसे दिये हैं जो तमाम इंसानों केलिए है...... उसमें मज़हब, रंग, नस्ल और जान का कोई फर्क नहीं किया गया।'[१]

उनके कहने का मतलब यह है कि 'कुरान' और 'हदीस' की रोशनी में दिवाली मनाना या पूजापाठ करना कोई गलत बात नहीं है। मौलवी के हिदायत से गुंडे बिलकुल नाराज़ हो जाते हैं। चूँकि यह इस्लाम उनकी रणनीति के रास्ते में बाधा है और इसी वजह गुंडे मौलवी पर आरोप लगाते हैं कि वह काफिर है। माई की लाश को दफनाने में नामंजूरी प्रकट करने तथा उसके दाह संस्कार कर देने पर पहलवान और उनके चमचे और भी आतंकित हो जाते हैं। परिणामतः मौलवी की निर्मम हत्या कर देते हैं। धर्म की रक्षा के नाम पर पहलवान और उसके गुंड़े साथियों के नीच एवं अमानवीय हरकत के चित्रण द्वारा नाटककार का उद्देश्य धर्म की घिनौनी एवं अन्धी राजनीति को बेनकाब करना है।

प्रस्तुत नाटक विभाजन की राजनीतिक त्रासदी का मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक दस्तावेज़ है। नाटककार ने इसमें धर्म और मज़हब के नाजुक सवाल को महज़ भावना और भावुकता के स्तर उठाने के साथ ही साथ विचार और तर्क से भी

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - २५४

उठाया है। नाज़िर और अलीम का संवाद इसकेलिए उचित दृष्टान्त है।

नासिर 'देखो तुम क्या इसलिए मुसलनाम हो कि जब तुम समझदार हुए तो तुम्हारे सामने हर मज़हब की तालीमात रखी गयी और कहा गया कि इसमें जो मज़हब, तुम्हें पसन्द आये, अच्छा लगे, उसे चुन लो?

अलीम नहीं नासिर साहब...... मैं तो दूसरे मज़हबों के बारे में कुछ नहीं जानता।

नासिर इसका मतलब है, तुम्हारा मज़हब है उसमें तुम्हारा कोई दखल नहीं है..... तुम्हारे माँ - बाप का जो मज़हब था वही तुम्हारा है।

अलीम हाँ जी बात तो ठीक है।

नासिर तो यार जिस बात में तुम्हारा कोई दखल नहीं है उसकेलिए खून बहाना कहाँ तक वाजिब है?'(१)

३.२.१.३. मानव धर्म का संदेश

नाटक का मकसद मानव धर्म का संदेश देना है। आज के घुटन, अहिंसा और आतंकवाद के युग में मानवीय मूल्यों को तरजीह देनेवाले भी मौजूद है। इसी बात का अहसास नाटक से होता है। घोर साम्प्रदायिक माहौल में धार्मिक मतभेदों के बावजूद सांस्कृतिक एकता की कड़ी निरंतर मज़बूत होती रहती है। साम्प्रदायिकता की आड़ लेनेवाले असामाजिकों को लगातार निरुत्तर होना पड़ता है। साम्प्रदायिकता की आग में जलते या धर्मान्धता के आतंक से

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ २३८-२३९

आक्रान्त होते वक्त छोटी बच्ची तन्नो की तरह नाटक के अन्त में पाठक और दर्शक के मन में यही सवाल बार-बार उठता है कि - 'अगर हम लोग और माई एक ही घर में रह सकते हैं तो हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान क्यों नहीं रह सकते थे?'(१)

आज के संदर्भ में इस नाटक की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। चूँकि आज जाति, देश, भाषा और धर्म की राजनीति के दलदल में लोग एकाएक फँस जाते हैं। धर्म, बिरादरी, मज़हब आदि के नाम झगड़ते - बिगड़ते रहते हैं। मगर जाति, धर्म और देश की मज़बूत किन्तु बनावटी दीवारों के मुकाबले मानवीय भावनाएँ और रागात्मक संबन्ध कहीं ज़्यादा बुनियादी और महत्वपूर्ण होते हैं।

कोई भी धर्म आदमी को आदमी से पृथक करने का संदेश नहीं देता। इस्लाम धर्म के इसी उसूल को उसकी गहराई में मौलवी साहब ने पहचाना है और इसी उसूल के तहत उन्होंने एक हिन्दू औरत से रहम दिखायी। उनके लफ्ज़ों में अजीब ताकत है, जो मानव को मानव बनाने में प्रेरित करता है 'इरशाद है कि तुम ज़मीन वालों पर रहम करो, आसमान वाला तुम पर रहम करेगा..... और....... जो दूसरों पर रहम नहीं करता, खुदा उस पर रहम नहीं करता।'(२)

परन्तु एक ओर होशियार किस्म के लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु धर्म के तत्वों को तोड़ - मरोड़ते हैं। धर्म को मज़हब, कर्मकांड आदि से ज़बरदस्ती जोड़ने का प्रयास करते हैं। उसे राजनीतिक खोखलेपन का महज़ औजार बनाते हैं। सत्य, अहिंसा, शान्ति, प्रेम सद्भावना जैसे मूल तत्वों से धर्म को वंचित रखते हैं। काश राजनीतिक दलों की हठवादिता खत्म हो पाता और धर्म को

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - २४५
(२) वही - पृ - २३४

उसका सही स्थान मिल पाता। लेकिन यह स्थिति तब बनेंगे जब भारत की राजनीति से सांस्कृतिक विभ्रम समाप्त हो।

३.२.१.४. लेखक का तटस्थ दृष्टिकोण

लेखक खुद एक मुसलमान होने के नाते इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का सही परिचय देता है। 'कुरआन' की रोशनी में धर्मान्धता बनाए खौफनाक अन्धकार को वे दूर फेंकना चाहते हैं। उन्होंने 'कुरआन' के सिद्धान्तों पर सतही ढंग से नहीं बल्कि उसके तह में उतरकर ही पहचाना। जैसे कि 'कुरआन' में बताया गया है कि 'प्रत्येक समुदाय केलिए हमने बन्दगी की एक रीति निर्धारित कर दी है, जिसका पालन उसके लोग करते हैं। अतः इस मामले में वे तुमसे झगड़ने की राह न पाएँ। तुम तो अपने रब की ओर बुलाए जाओ। निःसन्देह तुम सीधे मार्ग पर हो।'

'लिकुल्ली उम्मतिन जहलना मनसाकन हूँ नासिकुहू फला युनासी हुमनाक फिल अमरी वदुउ इला रब्बिक इन्नक लअला हुदन मुस्तकीय।'[१]

इस प्रकार 'कुरआन' में प्रत्येक धर्म को बराबर दर्जा दिया है। मगर वर्तमान युग में भी कट्टर धर्मावलम्बियाँ धर्म की आड लेकर मनमानी चलाने की कोशिश करते हैं। फलतः संप्रति सब कहीं ज़बरन धर्म परिवर्तन, हत्या, लूट - पाट, गला काट व्यवहार, हैवानियत तथा देवस्थानों का विध्वंस आदि होते रहते हैं। लेखक 'कुरआन' की उजियाले में इन सबको मिटाना चाहते हैं। उनका व्यापक चिन्तन जो है इस नाटक में मूर्त हुआ है। वे पूर्वाग्रह से एकदम मुक्त हैं। प्रत्येक मज़हब से उनका जो दृष्टिकोण है वह तटस्थ है। चाहे हिन्दू

(१) कुरआन - सूरत्तुल हज्ज   आयत्त, पृ   ६७

धर्म हो, या इस्लाम उनमें निहित सच्चाईयों की वे दाद देते हैं।

संक्षेप में उपरोक्त नाटक कथ्य में नवीनतम समस्या को उभारने में काफी सफल हुए है। एकदम समसामयिक मुद्दे को इसमें उकेरा है। यह हिन्दू मुस्लिम एकता और भाइचारे को बल प्रदान करनेवाला एक प्रासंगिक एवं अर्थपूर्ण नाटक है। जयदेव तनेजा के लफ़्ज़ों में 'इसका उद्देश्य देश, धर्म और जाति के नाम पर हुई और हो रही हिंसा, राजनीति तथा गुंडागर्दी के सामने प्रेम, भाईचारे और इन्सानियत की बाहर से कमज़ोर किन्तु भीतर से आस्थावान अटूट ताकतों की अनवरत लड़ाई को रेखांकित करना है।[१]

३.२.२. 'समिधा': धर्म का बाज़ारीकरण

आज बाहर से एकदम सभ्य दिखनेवाला मानव अन्दर ही अन्दर अज्ञान, अन्ध विश्वास एवं भ्रम के चंगुल में पड़कर सत्य से कोसों दूर भटक रहा है। इस इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में, विज्ञान की उन्नति की तेज़ रफ्तार में आगे बढ़नेवाला मानव दूसरी और उससे भी अधिक तेज़ रफ्तार में झूठी भक्ति एवं अन्धी आस्था में फँस जाते हैं। आज जबरन ईश्वर की बिक्री हो जाती है। भारतवर्ष जैसे महान देश में अनपढ़ या अशिक्षित लोग ही नहीं पढ़े लिखे बड़ी - बड़ी उपाधि प्राप्त, पद तथा ओहदों पर विराजमान व्यक्ति भी कपटी एवं जालिम साधु सन्यासियों के जाल में फँस जाते हैं। दरअसल वे लोगों की इस अन्धी - आस्था का नाजायज फायदा उठाते हुए उन्हें उल्लू बनाते हैं, दुहते हैं और अपनी तिजोरी भरते हैं।

यह अन्धी आस्था और अन्ध - विश्वास हमारे देश में कपटी एवं जालिम

(१) नयी रंग - चेतना और हिन्दी नाटककार - जयदेव तेनजा, पृ - १९१

धर्माचार्यों को पनपने का बराबर मौका देते हैं। एक बार वे जनता का विश्वास जीत लेते हैं तो ज़िन्दगी भर उनको ईश्वर का अवतार अथवा पैंगम्बर मानते हैं। इन धर्माचार्यों की दुनिया जो है खोखलेपन की दुनिया है। बाह्य से वे उद्घोषित करते हैं कि वे सत्य के समर्थक है, पहरेदार हैं। परन्तु सत्य की पहरेदारी का दावा करनेवाले ये लोग अन्याय एवं असत्य के सहारे ही अपने लक्ष्य में पहूँचते हैं।

धर्मपीठों में विराजमान ये धर्मगुरु अपनी खुदगर्जी और रूढ़िवादिता के बल पर लोगों को विवेक एवं सचेतन बोध से एकदम वंचित रखता है। इस ओर नरेन्द्र मोहन ने यों इशारा किया है - 'आज के औसत धर्माचार्यों ने विवेक के स्थान पर अपने स्थार्थों और अहंकार को ही अधिक महत्व प्रदान किया है।'(१) इनकी कथनी और करनी में कोई एकरूपता नहीं। दरअसल धार्मिक रूढ़ियों से उत्पन्न अज्ञान एवं अन्धी भक्ति ऐसे साधुओं और महन्तों को समाज में ऊँचे पद के अधिकारी बना देता है और ये लोग इस पद का पूरा लाभ भी उठाते हैं।

जनता की अन्ध जन्य मानसिकता का अनुचित फायदा उठानेवाले ऐसे धर्मगुरुओं के पीछे एक गुट कार्यरत है। वे अपनी खुदगर्ज़ी हेतु इन धर्मगुरुओं का समर्थन करते हैं, और उनके नाम असंख्य आश्रमों की स्थापना करते हैं जो शान्तिदायक और मनोरंजक ही नहीं, प्रतिष्ठा सूचक भी है। विश्व भर में उनकी ख्याति केलिए सारे के सारे बन्दोबस्त भी कर देते हैं। आज के औसत धर्मावलम्बियों का झुकाव इन धर्मगुरुओं की और है जिसका संबंध न आस्था से है, न धार्मिक बोध से। बहरहाल 'धर्म की पवित्र स्रोत सूखने के कारण लोग

(१) धर्म और सांप्रदायिकता - नरेन्द्र मोहन, पृ - ११

अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझाने केलिए सिर्फ गन्दे नाले के पास ही जा सकते हैं, जो सेक्यूलर समाज के बीचों बीच बहता है।'[१] इन ज़ालिम या फरेबी धर्माचार्यों की लोकप्रियता बढ़ाने में मीड़िया भी अपनी अहम भूमिका निभाती है।

इन लोगों के स्वार्थपरता, कुटिलता और पाखंड के सबब आज देश में 'धर्म' शब्द की छीछालेदार हो रही है। पुराने ज़माने में धर्म शब्द की जो अहमियत थी वह आज न रही। धर्म न केवल चिरन्तन व ऋत अनुभूति है, उसका नाता कर्म से है। 'धर्म हमारे समाज के समूचे कार्य कलाप में रचा बसा होता है। वह उसके आध्यात्मिक जीवन का कटा हुआ अंश नहीं होता।'[२]

बहरहाल आज मानव धर्म की आड लेकर निरंकुशता और बर्बरता के क्षेत्र में उतरा है। अतएव वर्तमान संदर्भ में धर्म शब्द का सर्वाधिक दुरुपयोग होता है। आज देश में ऐसे अनेक गुट गठित हो चुके हैं, जिनकी सारी की सारी करतूत धर्मान्धता और रूढ़िवादिता के आधार पर चलायी जा रही है। इन ग्रूपों के साथ राजनीतिक दलों का गठजोड भी है। इसकी वजह से समूची दुनिया में इनका प्रभाव है, उनकी ताकत है। वस्तुतः सरकार भी इन धर्म गुरुओं का सहारा लेते है। चूँकि उन्हें अन्दाज़ा है कि 'धर्म प्रवण भारतीय ऐसे निजी मसलों में सरकार की भले ही न सुने, धर्म गुरुओं की बात को ज़रूर कहीं मन में बाँध लेते हैं।'[३]

ज़ाहिर है अन्धी संस्कृति के संकीर्ण एवं संकुचित दायरे में बन्द लोगों की मानसिकता ही इन ढ़ोंगी धर्म गुरुओं एवं उनके पीछे सजग ग्रुपों को समाज में पनपने का मौका देती है। लोगों की इस अन्धी भक्ति के बारे में शंभुनाथ का

(१) ढ़लान से उतरते हुए - निर्मल वमा, पृ - १२
(२) दूसरे शब्दों में - निर्मल वमा, पृ - २३२
(३) परिधी पर स्त्री - मृणाल पाण्डे, पृ - ८८

अभिमत है कि 'आदमी के निजी जीवन की समस्याएँ आज इतनी बढ़ गई है कि यदि वह महँगे आध्यात्मिक गुरुओं की शरण में नहीं जा पाता तो ऐसे ही भगवानों और अन्ध विश्वासों को अपना सिर सौंप देता है।'[(१)]

गौरतलब बात यह है कि धर्म गुरुओं की आड में कार्यरत ऐसे गुट एक ओर जनता को खोखलेपन की दुनिया में धकेल देता है तो दूसरी और वे आम आदमी के साथ खिलवाड भी करता है। वर्तमान युग की इस ज्वलन्त समस्या को पृष्ठभूमि के रूप में अपनाकर असग़र वजाहत ने 'समिधा' नाटक की रचना की।

नाटक में अंबिका प्रसाद किसी भी तरह मेहनत - मज़दूरी करके पैसा कमाकर अपनी बहन रामकली को छुड़वाने का इरादा लेकर शहर आये थे। उसकी एकमात्र बहन को उसके ससुर ने किसी का आठ हज़ार का कर्ज़ चुकाने के वास्ते बेच डाला और ही और रामकली से वह आदमी जबरन पेशा कर रहा है। बेचारा अम्बिका प्रसाद अपनी बहन की ज़िन्दगी बचाने की इच्छा से डी.पी. दोरिया के यहाँ पहुँचा। किन्तु दोरिया तो ऐसे ही एक व्यक्ति की तलाश में था, जिसे वह अपने फायदे केलिए उपयुक्त कर सके। उसने अम्बिका प्रसाद से काम देने का वादा भी किया। वे दोरिया उद्योग समूह के बहुत ही प्रभावशाली घराने के मुखिया है। उन्होंने अम्बिका प्रसाद को स्वामी सुखानन्दाचार्य बना दिया। समूचे विश्व में स्वामी सुखानन्दाचार्य की ख्याति हेतु उन्होंने प्रेस ब्यूरो बनाये, अखबारों में 'न्यूज़ आइटम' और 'राइड अप्स' छपवाये। सेक्स के अपील केलिए खूबसूरत लड़कियों को भी नियुक्त किये गये।

---

(१) धर्म का दुखान्त - शंभुनाथ, पृ - २१५

इन सबके बावजूद जब डी.पी. दोरिया को यह पता चलता है कि जिस आदमी को उसने इंटरनेशनल फेम का महाप्रभु स्वामी सुखानन्दाचार्य बना दिया है उसकी बहन वेश्या है तब वह उसे बिलकुल कैद कर लिया। यहीं नहीं रामकली से जुड़ी बदनामी से बचने केलिए दोरिया द्वारा अम्बिका प्रसाद को यह हलफ लेना पडता है कि रामकली नाम की औरत से उसका कोई तालूक नहीं।

३.२.२.१. धर्म बनाम भ्रष्टाचार

उपरोक्त नाटक के ज़रिए नाटककार ने तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त ऐसे फ्रॉडों को बेपर्दा किया है जो धर्म का बाज़ारीकरण करते हैं। जनता की धर्मान्धता का सही फायदा उठानेवाले इन उद्योग समूह के मालिकों ने धर्म की आड लेकर अपनी स्वार्थ पूर्ति को ही ज़्यादातर बढ़ावा दिया है। डी.पी. दोरिया एवं उनके ग्रूप मिलकर अम्बिका प्रसाद के साथ धोखेबाज़ी करते हैं। उसे धर्मगुरु की हैसियत देकर कहीं भगवान् कहकर, कहीं दिव्यात्मा कहकर, और कहीं सर्वसमर्थ - तथा सुख, शक्ति, भाग्य, ऐश्वर्य और स्वर्ग प्रदाता कहकर विश्व भर में पूजित कराया जाता है। साथ ही धर्म का सेक्चुअल उपभोग भी करते हैं। चूँकि उनका दावा है कि सिवाय सेक्स के धर्म तक नहीं चलता। गीलानी का कथन देखिए - 'सर, सेक्स के बिना धर्म तक नहीं चलता वी फील हेल्पलेस।[१]

नाटक में दरअसल दोरिया, अम्बिका प्रसाद को एक औजार के रूप में इस्तेमाल करता है। उसकी ख्वाहिशों को चकनाचूर कर देता है। उसकी बहन

---

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - १५७

रामकली को छुड़वाने का वादा देकर उसके साथ बेइनसाफी करता है। बहन के साथ उसके रिश्ते को दुनिया के सम्मुख जबरन काट दिया जाता है। आम आदमी के साथ इस प्रकार खिलवाड करनेवाले दोरिया ग्रूप ने सर्वदा अपनी अक्ल से काम लिया है वे स्वामी सुखानन्दाचार्य ट्रस्ट को डोनेट करने का बहाना बनाकर करोड़ों रुपये हड़प लेते है। उनकी आदत ही ऐसी है कि वे एक चीज़ को भी दूसरों केलिए छोड़ नहीं सकते - 'बहुत ज़रूरी है..... या कही एक तरह का इंवेस्टमेंट है....... हमारा इनवेस्टमेंट 'मल्टी डायमेंशनल' होता है........ हम एक चीज़ को भी दूसरे केलिए छोड़ नही सकते आर्ट - कल्चर हो, शिक्षा हो, व्यापार हो, धर्म हो, कला हो या इन्डस्ट्री हो...... अब सौ दो सौ साल पहले वाला ज़माना नहीं रहा कि बनिये की दूकान की तरह इंडस्ट्री चलाये जाओ और दुनिया से बेखबर रात में मीठी नींद सोते रहो।' [१]

नाटक में व्याप्त धार्मिक खोखलेपन का पर्दाफाश करने का काम मल्लिका तथा अनादि जैसे वामपंथियों द्वारा हुए है। मल्लिका दोरिया फरटिलाइज़र्स के मैनेजिंग डाइरेक्टर डी.सी.चुग की लड़की है। वह पढ़ी लिखी है। अपने पिता के लाख कहने पर वह स्वामी सुखानन्दाचार्य महाप्रभु ट्रस्ट की मेम्बर बनने केलिए राज़ी होती है। किन्तु उसके इस फैसले से उसका प्रेमी अनादी समहत नहीं होता। वह उसे समझाने के वास्ते कहता है कि वह जानबूझकर अपने को खतरे में डाल रही है 'तुम अच्छी तरह जानती हो धर्म की ये दूकानें करप्शन के अड्डे हैं। ये करप्ट लोग हैं। दुनिया भर के पाप वहाँ होते हैं। और तुम वहाँ जा रही हो'? [२]

मगर मल्लिका अपने निर्णय पर अडिग रहती है। जब उसे पता चलता

---

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - १५५

(२) वही पृ - १६६

है कि महाप्रभु सुखानन्दाचार्य कोई परभु - विरभु नहीं है। वह फ्राड है, बल्कि उनके साथ फ्राड किया जा रहा है। उसे गिरफ्तार कर लिया गया है। उसके मूवमेंट्स तक चेक किये गये है और ही और उसकी बहन तो वेश्या है, तब दोनों मिलकर डी.पी. दोरिया के असली रूप को दुनिया के सम्मुख लाने की कोशिश करते हैं। परन्तु अखबारवाले इन खबरों को छपने से इनकार कर देते हैं। इससे यह बात ज़ाहिर हो जाती है कि हमारे समाज में इन धर्मगुरुओं एवं उनके प्रचारकों की अहमियत बढ़ रही है। उन लोगों का प्रभाव दुनिया के कोने कोने से है। इसी वजह से कोई भी इनके खिलाफ बयान दर्ज नहीं करता। सत्य से अवगत होकर भी असत्य से आँखें मूँद लेना पड़ता है।

प्रस्तुत नाटक के ज़रिए आज के युग में धर्म गुरुओं की जो हैसियत है, जो प्रभुता है उसकी जानकारी मिलती है। इसमें नाटककार ने तत्कालीन समाज में एक महन्त का स्थान और उनके प्रति जनता की मानसितका का चित्र खींचा है।

आज मानव अन्धी आस्था के चक्कर में पड़कर ढ़ोंगी धर्माध्यक्षों की बातों को सरे आम स्वीकार कर लेते हैं। इसी बात से पूर्ण, अवगत आज के उद्योग समूह के मालिक इन धर्म गुरुओं को एक 'टूल' के रूप में इस्तेमाल करते हैं। धर्म को मज़हब - पंथ और रिलीज़न का पर्यायवाची बनानेवाले ऐसे लोगों से जनता को खतरा है। विश्व भर में इनकी ताकत रहती है। इनके पैरोल पर बड़े - बड़े मन्त्री हैं। आधी सरकार उसकी जेब में रहती है। डी.सी. तथा अंकल के बीच का संवाद यहाँ द्रष्टव्य है।

डी.सी 'मल्लिका, दोरियाज़ को पब्लिक रिलेशन्स केलिए ये सब करने की कोई ज़रूरत नहीं है तुम जानती ही हो बड़े-बड़े मंत्री है उनकी 'पैरेल' पर........।

अंक राइट भाई साहब आधी ....सरकार उनकी जेब में रहती है...'।[१]

ऐन वक्त पर कोई भी इनके खिलाफ आवाज़ नहीं उठा सकता। अगर किसी की तरफ से ऐसी कोशिश संभव हुई तो समझो उसकी ज़िन्दगी बर्बाद हुई।

३.२.२.२. पत्रकारिता के क्षेत्र में नैतिक गिरावट

देश के हर एक क्षेत्र में वित्तीय ताकत का ही बोलबाला है। इसी वजह से प्रत्येक क्षेत्र में चाटूकारिता एवं चापलूसी की प्रवृत्ति कायम है। पत्रकारिता का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हमारी पूर्व धारणा के बमूजिब बुज़दिल, कायर या डरपोक व्यक्ति पत्रकारिता के क्षेत्र में कभी कदम नहीं रख सकता। सत्य के पहेरदार ही इस क्षेत्र में अडिग रह सकते थे। जो कुछ देखता है उसे अनदेखा न करना बल्कि इसे और भी परखना आदि सारी बातें पत्रकारिता के क्षेत्र से गायब हुई। अथवा ऐसे निड़र व्यक्तित्व के हकदार होनेवाले संपादक की परिकल्पना वर्तमान युग में नामुनकिन है। आज के युग में संपादक ख्यातिप्राप्त पूँजीपतियों के लिहाज़ से कार्यरत है। नाटक में यह बात ज़ाहिर हुई है - 'छापने को तो छाप दें...लेकिन जानते हो क्या होगा? कम से कम मेरी नौकरी चली जायेगी।....... हमारे अखबार का मालिक जगत कौड़िया डी.पी. दोरिया की

---

(१) पाँच नाटक -असग़र वजाहत, पृ - १६४

बात न माने ये हो नहीं सकता....। [१]

संपादकों को मात्र अपने सुनहले भविष्य की चिन्ता है। लिहाज़ा वह बेईमानदारी और बेइनसाफी के सामने चुप्पी साधता है। जहाँ कहीं अन्याय देखता है उसके खिलाफ़ आवाज़ उठाना आजकल एक घिनौनी वृत्ति बन गयी है। धर्म के नाम पर दूकानें चलानेवाले राजनीतिज्ञों एवं धर्माचार्यों की ये दाद देते है; तरफदारी करते हैं। चूँकि उन्हें अपनी फिक्र है। नाटक में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है - 'मतलब ये कि इसके पहले हमने एक भगवान के खिलाफ़ छापा था तो दफ्तर पर हमला हो गया था आप क्या चाहते हैं..... फिर हम पर हमला कर दिया जाये।' [२]

चन्द क्षणों के लाभ केलिए इस क्षेत्र में काम करनेवाले अपने देश की, अपने वतन की भलाई की चिन्ता छोड़ता है और भ्रष्टाचारों के उस्तादों की तरफदारी करते हैं। इन लोगों की मौजूदगी आज के युग केलिए अभिशाप है।

३.२.२.३. अभिशप्त नारियों की मज़बूरी

सतही तौर पर कहें तो समाज में नारी की उन्नति ही उन्नति है। किन्तु तहे दिल से परखने पर मालूम पड़ता है कि आज भी समाज में नारी शोषण बरकरार है और इन शोषण ने पहले से भी नीच एवं दशहत भरा रूप धारण किया है। वह पुरुष द्वारा प्रदत्त षड्यन्त्र की शिकार बनती ही जाती है।

एक बार इसमें फँसनेवाली नारी हमेशा केलिए उसमें उलझ जाती है। प्रस्तुत नाटक में रामकली (अम्बिका प्रसाद की बहिन) के ज़रिए नारी शोषण

---

(१) पाँच नाटक -असग़र वजाहत, पृ - ११३
(२) वही, पृ - ११२

की दर्दनाक दास्तान का जिक्र है। उसकी ज़िन्दगी को तबाह करनेवाला और कोई नहीं उसका ससुर है। उन्होंने रामकली को बेच डाला। उस रैडलाइट एरिया में पूरी तरह जकड़कर वह बर्बाद हो गयी थी। उनके चित्रण से नाटककार ने महानगरीय परिवेश में आम औरत की बदहालत को वाणी दी है। यद्यपि रामकली की किस्सा परोक्ष रूप में ही नाटक में चित्रित है तदापि विचारणीय है।

निष्कर्षत   नाटककार ने इसमें धर्म के नाम पर किये जानेवाले ठोंग, दिखावे, झूठ, मक्कारी, नीचता, पाखण्ड आदि को उघाडा है। साथ ही जनसंपर्क के वास्ते अपनी उन्नति हेतु किसी को भी समूचे विश्व में धर्म गुरु की झूठी हैसियत देनेवाले दोरिया जैसे फ्रॉड का पर्दाफाश किया है।

३.२.३. 'सबसे सस्ता गोश्त': साम्प्रदायिकता की डरावनी सूरत

असग़र वजाहत के साम्प्रदायिकता विरोधी नुक्कड़ नाट्य संकलन है - 'सबसे सस्ता गोश्त'।

३.२.३.१. सबसे सस्ता गोश्त

'सबसे सस्ता गोश्त' में वे साम्प्रदायिक राजनीति के घिनौने चरित्र को बाहर लाये है। इसमें साम्प्रदायिक दंगों को जबरन भड़कानेवाले अपसंस्कृति के ठेकेदार धर्मावलंबियों का जिक्र है। इसके तहत धर्म बनाम अत्याचार ही कायम है। मसलन, धर्म के नाम पर बच्चों की टागें चीर देना, औरतों की बेइज्ज़ती

करना, लोगों को ज़िन्दा जलाना, लाशों की मंडी सजाना। नाटक इन ज्यादतियों के खिलाफ हमला बोल देते हैं।

फिलहाल वोट वैंक की राजनीति के तहत मन्दिर या मस्जिद में अपवित्र चीज़ों को डालकर लोगों में सांप्रदायिक हँगामा मचाने की रीति जारी है। इस बात का जिक्र प्रस्तुत नाटक में हुआ है। ऐसे में मुस्लिम नेता द्वारा मस्जिद में सुअर का गोश्त तथा हिन्दू नेता द्वारा मन्दिर में गाय का गोश्त डाल देते हैं। फिर अफ़वाहों की वारदाताएँ होती हैं।

ठीक ऐसे ही एक संदर्भ की पेशकश भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास में मिलती है। वहाँ नन्थू नामक चमार से सुअर को खतम करवाकर मस्जिद के सामने फिंकवा दिया जाता है। मुरादअली नामक कमेटी के करिन्दे की आज्ञा पर नन्थू ने यह काम किया था। मस्जिद में सुअर का शव देखकर मुसलमान उत्तेजित हो जाते हैं और फिर मंदिर में गाय की हत्या हो जाती है। ठीक साम्प्रदायिक दंगों की अफ़वाहें हवा में फैलने लगती है। फिलहाल हिन्दू-मुसलमान धर्मावलम्बी विधर्म की तालीमात ही देते हैं -

'मुस्लिन नेता — बिरादराने इस्लाम हिन्दुओं ने तुम्हें बर्बाद कर दिया है। तुम्हारे घर उजाड़ दिये।

हिन्दू नेता — आर्यावर्त के सुपुत्रों इन म्लेच्छ मुसलमानों ने भारत - माता के टुकड़े कर डाले' [१]

नाटककार ने इसमें घोर साम्प्रदायिकता की अवसन्न स्थिति में मानुषिक मूल्यों के क्षरण को दर्ज किया है। नाटक के अन्त में जब दोनों मज़हब के लोगों

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ९

को यह पता चलता है कि मन्दिर या मस्जिद में पड़ने वाला गोश्त गाय या सुअर का नहीं, बल्कि आदमी का है, वे चैन की सांस लेने लगते हैं।

'कुछ आवाज़ों (ठंडेपन से) अच्छा, आदमी का गोश्त है।

एक आवाज़ तब कोई बात नहीं।

दूसरी आवाज़ मंदिर अपवित्र नहीं हुआ।

तीसरी आवाज़ मस्जिद नापाक नहीं हुई।' [१]

देखिए बहुत ही बेरहम माहौल का चित्र नाटककार ने खींचा है, जहाँ आदमी की जान की कोई कीमत ही नहीं है। घोर साम्प्रदायिकता के तमस ने यह साबित किया है कि आदमी का गोश्त ही 'सबसे सस्ता गोश्त' है।

३.२.३.२. फर्क कहाँ है

'फर्क कहाँ है' नाटक आदमी आदमी के बीच के साम्प्रदायिक बेदखली को खून के बहाने नगण्य घोषित करता है। साम्प्रदायिक जुनून के आदी होनेवालों को यह नाटक अँगूठा दिखाता है।

सूत्रधार मंच स्थल में एक स्टूल पर खड़ा होकर लाल तरल पदार्थ से भरे चार टेस्ट टियूब दर्शकों को दिखाते हैं। और यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि आदमी के खून में कोई फर्क नहीं है। फर्क तो साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा थोपी गई साजिश है। नाटककार की खुलासा 'हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई के खून में कोई फर्क नहीं है। मेरे भाई कोई फर्क नहीं....।' [२]

प्रस्तुत नाटक सांप्रदायिक सद्भाव का संदेश देता है।

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असगर वजाहत, पृ - १२
(२) वही, पृ - ७

३.२.३.३. मुजरिम कौन है

'मुजरिम कौन है' में नाटककार ने धर्म की ऐसी विड़म्बनापूर्ण स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है जो व्यक्ति - व्यक्ति को अलगाने का सशक्त औज़ार बन गया है। जनता धर्मान्धता में मग्न होकर नैतिकता के सारे पैमाने तोड़ देती हैं। फिलहाल भाषा में भी साम्प्रदायिकता का मोहर लगा है। इसमें धर्म के नाम पर मन्दिर मस्जिद तोड़ने की कुकर्म पर विचार किया गया है। ऐसे असामाजिक तत्वों का लक्ष्य मन तोड़ने के साथ सारे इन्सानी रिश्तों को भी तोड़ना है। आज की संस्कृति बाँटने की कीमत पर अधिष्ठित है। चूँकि अपसंस्कृति के चेले ही इन पर सवार है। यह संस्कृति दीन धर्म के बन्धन को काटनेवाली है। मानवीयता का उन्मूलन ही उनका लक्ष्य है। नाटक में उनके नारे का जिक्र है -

'तोड़ो तोड़ो तोड़ो
तोड़ो सबको तोड़ो
मन्दिर तोड़ो मस्जिद तोड़ो
घर तोड़ो दीवारें तोड़ो
मन तोड़ो, इंसान को तोड़ो
रिश्ते तोड़ो, नाते तोड़ो
आँखें फोड़ो, सपने तोड़ो
तोड़ो प्यार के बंधन तोड़ो' [१]

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असगर वजाहत, पृ - १६

साम्प्रदायिक राजनीति के तहत गुण्डागिरी और दादागिरी को ज़्यादा स्पेस मिल रहे हैं। धर्म और राजनीति के गठबन्धन ने मानव-मानव के बीच के एतबार को खतम कर दिया है। सर्वत्र तनावपूर्ण स्थिति को कायम रखने में साम्प्रदायिक राजनीति की पहल द्रष्टव्य है। इन लोगों ने तोड़ने की संस्कृति को ही बढ़ावा दिया है। नाटक के अनुसार सच्चा मुजरिम वही है जो धर्म की हिफाज़त के वास्ते अत्याचार करते हैं, और मज़हब की रक्षा और उसूलों को बचाने के नाम पर हत्या करते हैं। नाटककार का संकेत है कि ऐसे मुजरिमों से हमें सतर्क रहना है।

३.२.३.४. दोनों मारे जायेंगे

'दोनों मारे जायेंगे' में धर्म और राजनीति के गहरे संबन्ध को दर्शाया है।

मज़दूर रहीमुद्दीन और रामदीन के एक साथ नमाज़ - पूजा करना लोगों द्वारा भयंकर गलती घोषित होता है। चूँकि हमारा सामाजिक वातावरण इतना कलुषित हो गए है कि धर्म के कारिन्दों की वर्दी पहने अपसंस्कृति के चेले ही वहाँ बैठे हैं। उनकेलिए हिन्दू - मुसलमान के पास - पास बैठकर पूजा व नमाज़ करना हरगिज़ मंजूर नहीं - 'हिन्दू और मुसलमान साथ - साथ पूजा और नमाज कर रहे हैं अरे मूर्खों हमारे महान देश में तो मन्दिर और मस्जिद तक साथ साथ नहीं बन सकते....।' [१]

धर्म का राजनीतिकरण ही इन सबके मूल में है। धर्म को जबरन संप्रदाय से जोड़ना उसे राजनीतिक हथकण्डे का सशक्त माध्यम बनाना ही राजनीतिज्ञों का मकसद है। क्योंकि देश के हिन्दू मुसलमान यदि इसी तरह पास-पास

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असगर वजाहत, पृ - २०

बैठकर नमाज़ -पूजा करने लगें तो इन लोगों की तूती नहीं चलेगी। इनका वजूद ही खतम होगा। लिहाज़ा वे हिन्दू - मुसलमान के बीच आपसी बैर जमाने की कोशिश करता ही रहेगा। धर्म इनकेलिए पैसा जमा करने, चुनाव लड़ने और सत्ता हथियाने के रास्ते हैं।

नाटक में धर्म और राजनीति के गहरे रिश्ते को दर्शाया है। अतः धर्म और राजनीति को मिलाने से बहुत बड़ा माल तैयार होता है। चूँकि सूखी राजनीति और सूखा धर्म नहीं चलता। धर्म अगर लकड़ी है तो राजनीति मिट्टी का तेल है। धर्म यदि सोना है तो राजनीति सुहाग है। अतएव दोनों को मिलाने से सब कुछ मिल जाता है। साम्प्रदायिक राजनीति के पोल खोलने का भी प्रयास नाटककार ने किया है - हिन्दू तथा मुसलमान गुण्डेता : 'चन्दा.... लाखों, करोड़ों ....रुपये चंदा करने के बाद आन्दोलन चलाते हैं। क्योंकि आन्दोलन चलाने केलिए रुपये की ग्रीस बहुत ही ज़रूरी है.... फिर चुनाव में वोट मिलते हैं..... हमें नहीं मिलते.... हिन्दू धरम और मुस्लिम धरम को वोट मिलते हैं..... लेकिन गद्दी पर तो हम ही बैठते हैं।' [(१)]

वे अपने रास्ते पर आनेवाले प्रत्येक रोड़े को हटाने का प्रयत्न करते रहेंगे। चूँकि उनकी नीति मानव विरोधी है। उनका मकसद मानवीयता का ह्रास है। उनका मोटो 'फूट डालो और राज करो' पर टिकी हुई है।

नाटककार ने साम्प्रदायिक राजनीति के खिलाफ़ अभियान खड़ा किया है कि इस प्रकार धर्म को राजनीति से जबरन मिलानेवाले हिन्दू या मुसलमान नहीं, बल्कि जानवर है - 'ये खूँखार भेड़िये समाज और देश के दुश्मन है। ये धर्म

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असगर वजाहत, पृ - २२

और राजनीति को मिला रहे हैं। धर्म को गंदा कर रहे हैं राजनीति की

नैतिकता को खत्म कर रहे है.....।' (१)

वर्तमान महौल की जो दूषित राजनीति है, नैतिकता से कोसों दूर चल रही है। इस दूषित राजनीति के खिलाफ़ लड़ने की कूवत पैदा करना, नई सोच उत्पन्न करके व्यवस्था के तह में छिपे हत्यारों के असलियत से वाकिफ कराना ही नाटककार का लक्ष्य है।

३.२.४. 'इन्ना की आवाज़':

इनसानियत का गला घोंटनेवाली बर्बर सत्ता

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होने के नाते तत्कालीन राजनीति से असंपृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता। लिहाज़ा साहित्य की प्रत्येक रचना में किसी न किसी रूप में राजनीति के अणु अवश्य विद्यमान होते हैं। आज़ादी के पहले हमारे यहाँ राजनीति महज़ दर्शन था, पर आज वह सत्ता हथियाने का एक कारगर माध्यम मात्र बन गया।

गौरतलब है कि ज्यों ही हम अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त हुए त्यों ही हम राजनीतिज्ञों की गिरफ्त में पड़ गये। बहरहाल आज राजनीति से 'नीति' शब्द गायब हो चुकी है सिर्फ 'राज' शब्द की कायम है। परिणामतः राजनीति के क्षेत्र में एक प्रकार का विषैला वातावरण छा गया है। इस ओर प्रभाकर श्रोत्रिय ने यों संकेत किया है - 'राजनीति आज विषमीकरणों का कूड़ाघर बन चुकी है। वह मानव मूल्य, तर्क, बुद्धि, विवेक, संवेदना आदि की कब्रगाह है।' (२)

---

(१) चार नुक्कड़ नाटक - असगर वजाहत, पृ - २२

(२) समकालीन कविता संप्रेषण - विचार आत्मकथा- वीरेन्द्र सिंह, पृ - ६०

आज राजनीति एक पेशा बन चुकी है। यहाँ का राजनेता जो है, नेता कम और व्यापारी अधिक है जिसका मकसद केवल अपनी भलाई है। उनके सामने देश का भविष्य नगण्य है। सफलता की मंज़िल तक पहूँचने केलिए वे कई तरकीबें ढूंढ़ लेते है। फिलहाल जनता की सुविधा भोगी वृत्ति राजनीतिज्ञों केलिए वरदान बन चुकी है। अतएव जनता की कमज़ोरियों से पूर्णतः अवगत होकर सत्ता उसे येन-केन प्रकार से भटकाती है और उसके अधीन बनाती है। मगर बिचारी जनता इससे बिलकुल नावाकिफ़ रहती है। अर्थात् 'जनता इतनी बुरी चीज़ है! खुद तो प्रलोभन में फँसती ही है, दिग्भ्रमित होकर अवसरवादी राजनीति की कठपुतली बनती ही है।[१]

इस प्रकार आदमी की ईमानदारी को तोड़कर अपना उल्लू सीधा करने के वास्ते सम्प्रति नेता लोग कमर कस लेते है। या तो पदोन्नति के द्वारा, या गुण्डाशाही द्वारा। और ही और भोली - भाली जनता को अत्याचार के माध्यम से निरंकुश शासक कल्पना में डुबोए रखते हैं। निःसन्देह आज की राजनीति विरोधियों को परास्त करनेवाले दावपेंच की राजनीति है। राजनीति के इस विकराल चरित्र को उजागर करते हुए डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं - 'राजनीति की बुनियाद किसी न किसी रूप में हिंसा पर आधारित होती है। राजनीति का लक्ष्य ही सत्ता प्राप्त करना है। जहाँ सत्ता की भूख है, वहाँ हिंसा अनिवार्य है। इसलिए दावेपंच पाजनीति का एक अस्त्र है। क्योंकि वह विरोधी को परास्त करने केलिए आवश्यक है।' [२] शासन में बैठनेवालों में इतनी ताकत रहती है कि वे विद्रोह भी स्वीकार में बदल देते हैं। तथा निरीह जनता को पालतू बनाते हैं।

---

(१) नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी, पृ - ५२

(२) आधी रात से सुबह तक - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ - ५

राजनीति की यही विकट आदत रही है कि व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही किसी भी व्यक्ति का मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है। अधिकार की हवस में वह इन्सानियत का लिबास दूर फेंक देता है और हैवानियत को सर्वदा स्वीकारता है। सत्ता मोह जब उसके सिर चढ़ जाता है तब उसे अपनी खूनी रिश्तों, सगे - संबंधियों, जिगरी दोस्तों, किसी की भी परवाह नहीं रहती। बल्कि उसे अपनी मंज़िल तक पहूँचने की अदम्य इच्छा ही रहती है।

आजकल पार्टी लोग इने - गिने लोगों को भी सल्तनत पर बिठाते हैं, या शासन सौंपते हैं; पर कुछ शर्तों के आधार पर। जिस व्यक्ति को वे शासक बनाते है, उन्हें वे अपनी हुकूमत के मुताबिक चलने केलिए मज़बूर करते हैं। यही नहीं वे उनसे वह सब करवाते हैं जो नैतिक दृष्टि से निम्न कार्य होते है। मगर अफसोस इस बात से है कि मानव मूल्यों की जड़ें काट देनेवाली सत्ता की अराजकता का अन्त शायद मुमकिन नहीं।

'साम्राज्य लिप्सा, राजनीतिक कुचक्रों, झूठे वादों; कोरे आश्वासनों और सत्ता अथवा सिंहासन के प्रति मोह ने जनता को सदैव उत्पीड़ित किया है। मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के क्षणों में जब पहली बार सत्ता, सिंहासन तथा राजा की स्थापना हुई होगी, शायद तभी से बहुत स्वाभाविक रूप में राजा और प्रजा के संबन्धों के बीच यह ज़हर व्याप्त हो गया होगा। राजा इस विश्वास के साथ बनाया जाता है कि सत्ता और सिंहासन की ताकत से प्रजा का पोषण तथा रक्षण करेगा। परन्तु राजा, राजा बनते ही निरंकुश हो जाता है और पोषण तथा रक्षण की बात भूलकर शोषण और भक्षण करने लगता है।'[१]

---

(१) सिंहासन खाली है - सुशील कुमार सिंह (भूमिका)

ज़ाहिर है राजनीति आकंठ भ्रष्टाचार में डूब चुकी है तथा राजनीतिक क्षेत्र में अब मूल्यों केलिए न ही कोई जगह रह गयी है और न ही नैतिकता केलिए। किन्तु सवाल यह उठता है कि 'जब राजनीति सत्ता केन्दित हो जाए, अन्ध - राष्ट्रीयता ज़ोर मारे और गलत दाँव - पेंच को स्वीकृति मिलने लगे, तो सही रचना क्या करें?' [१] निःसन्देह यथार्थ रचना इन सबके ख़िलाफ अपना बयान देगी। अतः वजाहत के नाटक 'इन्ना की आवाज़' मानवीय मूल्यों की जडें काट देने और सबको भ्रष्ट करनेवाली सत्ता की ताकत और कूटनीतिक चालों को उद्‌घाटित करता है। यह नाटक मध्य एशिया की एक लोककथा से प्रभावित है।

सुलतान ने बीस साल पहले जिस महल के बनाने का हुक्म दिया था, वह बनकर तैयार हो गया है। महल के बाहरी दरवाज़े पर सुलतान का नाम लिख जाना बाकी है। राजा ने महल बनने पर अपना नाम खुदवाने का आदेश दिया। कारीगरों ने वह काम भी अदा किया। परन्तु बात गज़ब की है कि महल के दरवाज़े से सुलतान का नाम अपने आप मिट जाता है और गुलाम इन्ना (जो कि मज़दूर है) का नाम खुद - ब - खुद लिखा जाता है। ऐसा बार - बार हुआ। सबके सब इस करिश्मे को देखकर ताजुब्ब हुए। लेकिन सुलतान यह बर्दाश्त नहीं कर सका।

इन्ना (एक मामूली गुलाम चारवाहा) सुलतान के महल केलिए सामान ढ़ोनेवाले प्यासे घोड़ों को दयावश पानी पिला दिया करता था। इसी वजह ही महल के दरवाज़े पर इन्ना का नाम स्वयमेव लिखा चला गया। राजा ने इस राज़ को जाना। राजा ने यह भी समझा कि मुल्क की सभी - जनता इन्ना की सिर्फ एक झलक पाने केलिए बेताब रहती हैं। चूँकि उसकी आवाज़ यानी कि

---

(१) रचना और राजनीति - प्रेमशंकर, पृ - ३७

चारवाहों का नग्मा उन्हें बेहद अज़ीज़ है। अतएव बादशाह द्वारा इन्ना की गिरफ़्तारी से पूरे ठौर में बगावत भटक उठने की संभावना है। इस हक़ीक़त से पुरी तरह वाकिफ होकर सत्ता उसके खिलाफ ऐसा षड्यन्त्र रचाती है, जिससे न इन्ना वाकिफ है और न रिआया।

सुल्तान ने महसूस किया कि इन्ना में जब तक इन्सानियत रहेगी तब तक महल के दरवाज़े से उसका नाम नहीं हटेगा। लिहाज़ा उसने बड़े कौशल से काम किया। उसे प्रलोभन से भटकाने केलिए मलका इन्ना के यहाँ जाती है और उसकी तारिफ करती है। साथ ही दरख्वास्त करती है कि वह वज़ीर का ओहदा कुबूल कर ले। इस प्रकार मज़बूरन ही सही, इन्ना वसीरे आज़म का ओहदा स्वीकारता है।

पहले पहल वह अवाम की खिदमत में पेश आता है, किन्तु उसके अहेकामात पूरी तरह अमल नहीं हो पाता। यही नहीं उसके हुक्म के बमूजिब मुल्क में मक्कारी, भ्रष्टाचार, दरांज़दस्ती सब होना शुरू होती है। हुकूमत के नशे में डूबकर वह इन बातों से नावाकिफ रहता है। अतः सत्ता के मद में साकी, शराब, स्वर्ण इत्यादि के नशे में उसने इतने जुल्म ढाए, खून खराबी की तथा लोगों का पर्याप्त शोषण किया कि वह मानव नहीं, पिशाच बन गया। क्रमशः इन्ना का नाम महल से स्वयं मिट गया। अन्त में सुलतान उसकी वज़ारत ज़बरदस्ती छीन लेता है और उसे ठोकर मारकर दरबार के बाहर निकाल देता है। इस प्रकार इन्ना की हालत उस कुत्ते जैसा रह जाती है जो न घर का है और न घाट का।

वास्तव में सुलतान का मतलब पूरा हो चुका था। यानी कि इन्ना न अब वह पुराना इन्ना रह गया था और न बन सकता था, इन्ना वह इन्ना भी नहीं रह गया था जो अब तक वह बना हुआ था। कभी उसकी आवाज़ सुरीली होती थी

चूँकि तब उसकी आवाज़ में निर्दोष, निश्छल, पवित्र आत्मा का ओज मिला होता था। लेकिन अब उसकी आवाज़ भोग - विलास और पैशाचिक कृत्यों के सबब कर्कश, कठोर और फटे बाँस जैसी हो गई थी। अर्थात् इन्ना की आवाज़ बदल गयी थी।

३.२.४.१. सत्ता के निरंकुश शासन का दस्तावेज़

नाटक में एक महत्वाकांक्षी सुल्तान को दर्शाया है जो किसी भी कीमत पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उनके मुताबिक राजा की गैर - हाज़िरी में अवाम की हिफाज़त मुमकिन नहीं। अपने वर्चस्व को बनाये रखने केलिए वे रिआया को भटकाते हैं। राजा के इस कथन में उनका अहम, दर्प और आज्ञा झलकते हैं।

सुल्तान ‘हम इस मुल्क के बादशाह है और तुम लोग हमारी रिआया हो। हम हुकूमत करते हैं तुम्हारे लिए। हम जंगें करते हैं तुम्हारे लिए। हम सुलहें करते हैं तुम्हारे लिए। और इसलिए तुम हमारा हर हुक्म मानते हो। अगर हम न रहेंगे तो तुम भी न रहोगे क्योंकि फिर तुम्हारी हिफ़ाज़त कौन करेगा? इस बात को हम भी अच्छी तरह समझते हैं और तुम भी। इसलिए हमारा हाकिम होना ज़रूरी है तो तुम्हारा महकूम होना।’[१]

इस तथ्य के तहत वे रिआया को फुसलाते हैं। इन्ना की आवाज़ से ही सुलतान को भय है चूँकि आवाज़ से ही वह उसे बेहद ताकतवर मानता है। क्या सुलूक वह इन्ना के साथ करें? राजा को यही फिक्र है। अवाम को मालूम हो

---

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - ६७

चुका है कि महल के दरवाज़े पर इन्ना का नाम खुद - ब - खुद लिख जाता है और उसकी आवाज़ में दम है। वज़ीर आजम सुलतान से कहता है: 'सुलतान आलम दूरदराज़ से लाखों लोग इन्ना को देखने आते है। उसके झोंपड़े के चारों तरफ उनकी भीड़ लगी रहती है। वे लोग इन्ना की सिर्फ एक झलक पाने केलिए बेताब रहते हैं। अगर उस वक्त उनसे इन्ना उनका सिर भी माँगे तो वे दे सकते हैं। गनीमत यही है हुज़ूर कि इन्ना ने अभी तक उनसे कुछ माँगा नहीं है। इन्ना अब सिर्फ एक आदमी नहीं रह गया है खुदाबंद।' (१)

राजा अपने बाहुबल तथा बुद्धिबल से सत्ता छीन लेता है। यदि राजा के पास बुद्धिबल है तो बाहुबल की अपेक्षा भी वह अपने लक्ष्य पर पहूँचता है। इन्ना की आवाज़ जबरन बदलने केलिए सत्ता उसके खिलाफ़ साजिश रचाती है। उसे बज़ीरे आज़म बनाकर विलास में इतना डुबो दिया जाए कि वह 'इन्ना' न रहे। वज़ीरे आज़म के शब्दों में इसकी गुंजाइश मिलती है 'सुल्ताने आलम, कुछ लडाइयाँ मैदाने - जंग में लड़ी जाती है और कुछ लड़ाइयों के फैसले दिलों दिमागों में होते हैं। इन्ना के जिस्म पर नहीं उसके दिल पर बार होना चाहिए सरकार।' (२)

इन्ना को वज़ीरे आज़म बना दिया जाता है। उसके पास सुविधापरस्त ज़िन्दगी है किन्तु वह आवाज़ नहीं रही। व्यवस्था इन्ना की आवाज़ को मार देती है। इस प्रकार अपनी खुदगर्ज़ी हेतु प्रजा को आत्म विश्वासहीन बनाने एवं गुमराह करने की भयंकर साजिश रचानेवाले निरंकुश शासक का चित्र यहाँ उभरता है। सुलतान का कथन देखिए - 'कोशिश नहीं, ये काम होना ही चाहिए, किसी भी कीमत पर, (ठहरकर) लोग तूफान आने से पहले अपने घरों के

---

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - ६९-७०

(२) वही, पृ - ७०

दरवाज़े बन्द कर लेते हैं। लेकिन मैं अपने महल के दरवाज़े खोल रहा हूँ। तूफान मेरे महल के दरो दीवार से सिर टकरा टकरा कर खत्म हो जाएगा।'[१] जानवरों से करुणा दिखानेवाले से खुदा रहम दिखाता है। परन्तु सत्ता में बैठनेवालों में इनसानियत की कोई गुंजाइश तक नहीं है। कहना न होगा कि नाट्यकार ने इसमें वर्तमान राजनीतिक जीवन की अंकुशहीन करतूतों व मानव मूल्यों का सर्वाधिक हनन करनेवाले सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों की जीती - जागती तस्वीर खींची है।

आज पूँजीवादी व्यवस्था के तहत जनता को पंगु एवं निर्जीव करने की कोशिशें बराबर ज़ारी रहती है। जब जनता में से कोई जन प्रतिनिधि नेता बनता है और इनसानियत को मूल्य देता है। तब जनता उन्हें पसन्द करने लगती हैं। उस वक्त सत्ता में बैठनेवालों में डर उत्पन्न होता है कि इस आदमी के नेतृत्व में बाकी जनता इनसानियत का सबक सीखेगी। लिहाज़ा जनोन्मुखी नेता के कल्याणकारी प्रयास को वे असफल बनाते हैं। यानी कि अन्धकार में रहनेवाले रोशनी लानेवाले वाहक से बेशक डरेगा। ज़ाहिर है सत्ता लिप्सा पर निर्भर इस गन्दी राजनीति अपने राक्षसी पंजों से हमारे सारे सामाजिक क्रियाकलापों को दबोच लिया है। अपना उल्लू सीधा करने हेतु वह विरोधियों को पालतू बनाती रहती है। सुलतान के शब्दों में यह राजनीतिक आक्रोश उभरकर आता है - 'सज़ा सिर्फ उन्हीं लोगों को नहीं दी जाती है जो कुसरवार होते हैं। अगर तुम बेगुनाह हो तब भी तुम्हें सज़ा देकर ये साबित किया जा सकता है कि सज़ा और इनाम का सिलसिला ज़ारी है।' [२]

---

(१) पाँच नाटक असगर वजाहत, पृ - ७४
(२) वही, पृ ६७

भारत के वर्तमान राजनीतिक क्षेत्र में भी यही देखा जाता है कि जुल्म कोई और करता है और सज़ा किसी और को भोगनी पड़ती है। प्रस्तुत नाटक वाकई स्वातन्त्रोत्तर भारत के राजनीतिक घटनाक्रम का दस्तावेज़ है। इसके ज़रिए नाटककार ने वर्तमान राजनीति के मानव विरोधी रवैये की ओर संकेत किया है।

३.२.४.२. मानव मूल्यों की हत्या

नाटक में इन्ना के द्वारा आम आदमी की तकलीफ़ एवं सोच मूर्त हुई है। दर असल आम आदमी की हालत बद से बदतर हो गयी है। राजनीति की इस विसंगति, विद्रूपता और अमानवीयता ने न जाने कितने स्तरों पर तोड़ा, कितनी कुण्ठाएँ पैदा की और कितना त्रास पैदा किया और यह भी स्पष्ट है कि आज जो व्यक्ति बेईमान नहीं है, भ्रष्टाचार का दामन थाम कर नहीं चलता, वह सत्ता में टिक नहीं सकता। अथवा सत्ताधारियों को ऐसे आदमी की कोई ज़रूरत महसूसता ही नहीं। ईमानदार इन्ना, सत्ता और शराब के नशे में चूर होकर अपने फर्ज़ से मुँह मोड़ लेता है। यानी सत्ता संपत्ति और सुख की राजनीति, इन्ना को अपने मोहजाल में बांधती है और उसे नैतिक दृष्टि से नीचे गिराकर स्तरहीन काम करने केलिए बाध्य करती है। इन्ना के सिर पर हुकूमत की खुमारी चढ़ जाती है - 'तुम ठीक कहती हो रक्कासा आओ, ज़रा मेरे करीब आओ। आज तुमने एक तरह की बे के मुत्तारिफ कराया है। मेरी मर्ज़ी के खिलाफ मेरे अहेकामात पर अमल नहीं हो सकता... मेरी मर्ज़ी मेरी मर्ज़ी'[१]

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ८९

३.२.४.३. आम आदमी के ख़िलाफ साजिश

राजनीतिक जालसाज़ी एवं दावपेंच की ज़ंजीरों में बुरी तरह फँसकर इन्ना अपनी ज़िन्दगी के सारे सुन्दर सपनों से वंचित दिखाई पड़ते हैं। गुलाम इन्ना, जिसको व्यवस्था द्वारा वज़ीरे आज़म बनकर रहना पड़ा। जैसा व्यवस्था ने चाहा बनना पडा। अपनी शख्सीयत भुलाकर अपनी आवाज़ को मारना पड़ा। एक प्यारी मासूम - सी चिड़िया की तरह वह अपनी मीठी आवाज़ से समूचे मुल्क को एक नयी ज़िन्दगी देना चाहता था। परन्तु उसकी सारी ख्वाहिश सत्ता द्वारा मिट्टी में मिला दी गयी। भ्रष्टाचार करनेवाले शासक मात्र न स्वयं भ्रष्टाचारी है, अपितु वे राजनीति के ज़रिए ईमानदार लोगों को भी येन - केन प्रकार से भटकाते हैं और इसके अंग बनने पर मज़बूर करते हैं। कभी धन के माध्यम से, कभी प्रमोशन के लोभ द्वारा तो कभी कानूनी जाल बनाकर और जब वे अपनी फतह हासिल करते हैं तब उन्हें कुत्ते की मौत देते हैं। इन्ना के साथ ऐसा ही जाल बिछाते हैं।

हर व्यक्ति को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होती है। अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं तलाशना होता है। परन्तु बदनसीब इन्ना इसमें कामयाब नहीं हुआ। फलतः वह अपनी बेसुरी आवाज़ हमेशा केलिए खो बैठता है। ज़ाहिर है मूक, निरीह एवं निर्दोष प्रजा निरंकुश राजा के शोषण का शिकार बनती है और मानवीय मूल्यों की हत्या करता है।

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ६२

३.२.४.४. सत्ता और कलाकार की टकराहट

प्रस्तुत नाटक का जायजा लेने से यह बात स्पष्ट होती है कि सत्ता और कलाकार का संघर्ष लगातार ज़ारी है। इन्ना की यही गलती थी कि खुदा ने उसके आवाज़ में बेपनाह ताकत और कशिश दी है जिसे सुननेवालों को एक अजीब सा रूहानी सुकून मिलता है। दरोगा के शब्दों में 'खुदा ने इन्ना की आवाज़ में वेपनाह ताकत और कशिश दी है। वाह क्या गाता है। अजीब सा रूहानी सुकून मिलता है' (१)

परन्तु उसकी इस खूबी हेतु उसे अपनी ज़िन्दगी में खतरा मोल लेना पड़ता है। अन्ततोगत्वा उसकी अस्मिता ही छीन ली जाती है। उसे एकदम पालतू बना देती है।

३.२.४.५. आत्मीय संबन्धों में आयी हुई दरारें

आधुनिक जीवन में आत्मीय संबन्धों में आये हुए विघटन की ओर भी यह नाटक संकेत करता है। सत्ता लिप्सा के चंगुल में पड़कर इन्ना अपनी ज़िगरी दोस्त फसी की फरियाद नज़र अन्दाज़ कर देता है। बीस साल तक वे दोनों एक साथ, एक झोंपडे में रहे थे। और मुसीबतों में एक दूसरे का साथ दिया था। इन सबके बावजूद इन्ना फसी की बातों को अनसुना करते हैं। दर असल फसी इन्ना को उसके साथ होनेवाले षड्यन्त्र की सूचना देना चाहता था। किन्तु इन्ना उसकी किसी भी नहीं सुनता। बल्कि वह उसे यह कहकर ठुकराता है कि 'हम जानते हैं, हमारा क्या काम है। और हम ये भी जानते हैं कि हम किसी के कहने

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ६२

से अपने काम करने के तरीके में कोई तब्दीली नहीं ला सकते। फसी, तुम मेरे आराम में खलल डार रहे हो, इन सवालों पर कभी इत्मीनान से....।' [१]

ज़ाहिर है आलोच्य नाटक सत्ताधारियों के मुखौटेधर्मी व्यक्तित्व को सही मायने में उजागर करता है और साथ ही साथ मौजूदा राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर जमकर कुठाराघात करते है। डॉ. नरनारायण राय के शब्दों में 'सत्ता किस तरह लोगों को भ्रष्ट करती है यह दिखाता है इन्ना की आवाज़।'[२]

३.२.५. 'वीरगति': दौलत को सलाम करती दुनिया

आज हम वित्तीय सभ्यता को अधिकाधिक वरीयता दी जानेवाले एक भूमण्डलीकृत समाज से गुज़र रहे हैं। वैसे तो जीवन की बुनियादी ज़रूरतों जैसे भोजन, वस्त्र, और आवास तथा अन्य सुख - सुविधाओं पर अर्थ का नियंत्रण, हो गया है। लिहाज़ा 'जीवन में पूर्णत्व की उपलब्धि अर्थ के अभाव में हो ही नहीं सकती।' [३] फलतः आज की संपूर्ण व्यवस्था अर्थ केन्द्रित है। अर्थ ही मानव जीवन का विधायक तथा समस्त सामाजिक राजनीतिक संबन्धों का निर्धारक होता है।

स्वतन्त्र भारत में पूँजी के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति ने सामाजिक शोषण के नये-नये चक्रों का आविष्कार किया। आज जीवन में परिव्याप्त तमाम जटिलताएँ अर्थ पर निर्भर है। पूँजीवाद ने समाज में अनेक दोषों को जन्म दिया है, उनमें सबसे पेचीदा है - वर्ग वैषम्य। इसके फलस्वरूप पूँजीपति अधिकाधिक धनी और सर्वहारा निरन्तर निर्धन होते जा रहे हैं। यहीं नहीं 'पूँजी के कुछ मुट्ठी भर

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ९९

(२) नया नाटक : उद्भव और विकास - डॉ. नर नारायण राय. पृ - १८५

(३) भारतीय संस्कृति - नरेन्द्र मोहन, पृ - १४२

लोगों के हाथों में केंद्रीभूत हो जाने के कारण जन सामान्य की अवस्था में उन्नति न हो सकी है।' [१]

वर्तमान परिस्थिति की आर्थिक विषमता एवं शोषण के सबब आम आदमी ग्रस्त है। चूँकि पूँजीवाद का यह स्वभाव है कि वह जिस डाल पर बैठा है, उसी को काटता है। मानव की नियति इन पूँजीपतियों के हाथ में है। आदमी केलिए कुछ भी नहीं हो सकता, अगर विधाता (पूँजीपति) अनुकूल न हो। समाज की वर्ग वर्ण व्यवस्था और शोषण के बीच शोषणपूर्ण संबन्धों के खिलाफ अगर कोई आवाज़ उठाने की कोशिश करें तो भी वह निरर्थक साबित होता है। मतलब यह कि सत्ता भी पूँजीपतियों का लिहाज़ करती है। दरअसल 'व्यक्तियों वर्गों और समाजों में पड़े हुए भावों को द्वन्द्व और संघर्ष की सीमा तक विकसित करके सामाजिक शासन करनेवाली शक्ति अपना हित साधन करती है।' [२]

धन पर निर्भर तत्कालीन समाज में मानव मूल्यों की कोई अहमियत नहीं रह गयी है। साम्प्रतिक पूँजीवादी समाज में सेठ साहूकारों की तरक्की ही तरक्की है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उनका ही प्रभाव है। परम शक्ति सत्ता भी उनके अधीन है। 'पूँजी की जादुई शक्ति के संबन्ध में सुधीश पचौरी का मत है कि "पूँजी के स्वामित्व की पागल इच्छाएं समाज का संचालन करने लगती है।'[३]

ज़ाहिर है वर्तमान परिवेश में पूँजीपतियों की ही प्रधानता है। वे धन की आड में धर्म, बुद्धि, ऐश्वर्य, प्रेम सबको बेनकाब घोषित करते हैं। तत्कालीन अर्थ केन्द्रित व्यवस्था की विद्रूपताओं और विसंगतियों से प्रेरणा पाकर

---

(१) आधुनिक हिन्दी कविता - सुवास कुमार, पृ - ५

(२) काव्य और अर्थ बोध - त्रिलोचन, पृ - ५८

(३) आलोचना से आगे (उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर संरचनावादी विमर्श) - सूधीश पचौरी, पृ - ५९

असग़र वजाहत ने 'वीरगति' नामक नाटक का सृजन किया।

यह नाटक विजयदान देथा की लोक आस्वादनवाली राजस्थानी कथा 'खोजी' पर आश्रित है। यह नाटक प्रतीकात्मक ढंग से सत्ता के स्वरूप को स्पष्ट करता है। प्रस्तुत नाटक की मूल कथा वर्ग - समाज की विसंगतियों तथा उसके दमनचक्र को उद्‍घाटित करता है।

जनवादी नज़रिये से लिखे गये नाटक का केन्द्र पात्र सुकुमार जो कि राज्य के सबसे धनवान साहूकार का इकलौता पुत्र है। आदत से वह अत्यन्त भावुक तथा ईमानदार है। वह खास किस्म का नौजवान है। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में ही उसका मन रमता है। जैसे उसके ही शब्दों में 'हैं कुछ लोग दुनिया में जिन्हें पाकर मज़ा आता है तो कुछ लोग खोकर खुश होते हैं। किसी केलिए ज़हर मौत है तो किसी केलिए ज़िन्दगी। किसी को दौलत बेहद अज़ीज़ है तो किसी केलिए कूड़े का ढ़ेर । किसी को खाकर पेट भरता है तो किसी को भूखों रहकर।'[१] साहूकार ने उसकी बिगड़ी हुई मानसिकता का इलाज करने केलिए हकीम, वैद्य, ओझा, पीर सबको बुलवाया। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। अन्त में वालिद ने उसका स्वयंवर रचाया ताकि उसका मन बदले और उसके सारे गम दूर हो जाये। किन्तु उसकी बेकरारी बढ़ती गयी। आखिर उसकी इस बेचैनी का कारण धन ही है। अर्थ पर अधिष्ठित माहौल में उसका दम घुटता जा रहा था।

कुछ नया कर गुज़रने को आतुर सुकुमार चोरी करता है। चूँकि वह चोरी का मज़ा लूटना चाहता है। परन्तु उसे रंगे हाथों पकड़नेवाले तथा गाँव की सारी जनता उसे चोर मानने केलिए हरगिज़ राज़ी नहीं होते। उनके मतानुसार चोरी केवल गरीब करते हैं। दौलतवान भला चोरी क्यों करेगा?

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजादत, पृ - १०९

पुत्र द्वारा चोरी करने का प्रत्यक्ष सबूत देने पर साहूकार चोरी गए माल की दुगुनी, कीमत दे देता है। यानी सबको मालामाल कर देते हैं। अतः चोरी करके सुकुमार ने लाखों का हित साधन ही किया। अतएव वह दानी एवं कृपालु बन जाता है।

चोरी बेमतलब साबित होने पर सुकुमार डाका डालने का फैसला करता है और पूरे ठौर में दहशत फैलाना चाहता है। मगर उसकी यह करतूत भी अन्ततः परोपकार सिद्ध होता है। सुकुमार जब धन के सामने कानून, कायदे, परंपरा, मर्यादा इत्यादि सभी को घुटने टेकते देखता है तब अत्यन्त क्रुधित हो जाता है। इतना ही नही सर्वोत्तम शक्ति राज सत्ता से टकराने का फैसला करता है।

नाटक के अन्तिम दृश्य में हम देखते है कि साहूकार का बेटा सुकुमार भरे दरबार में राजा को गालियाँ देता है, जूता मारता है और उसकी पगडी उतारतर फेंक देता है। किन्तु उसकी ऐसी हरकतों को राजा के हित केलिए किये गये महान कर्म मानकर तथा प्रसन्न होकर राजा अपनी बेटी और राज्य उसे सम्मानित करता है।

३.२.५.१. आर्थिक प्रभाव में झुलसता मानव

आज का युग सामाजिक आर्थिक प्रभावों से ग्रस्त भौतिकवादी वैज्ञानिक युग है। यहाँ भावुकता का एक अंश तक देखने को नहीं मिलता। मशीनों के बीच में रहते हुए मनुष्य जो है आत्मकेन्द्रित एवं गुदगर्ज़ बन गये हैं। अर्थ पर अधिष्ठित समाज में उसकी सांस घुटी जा रही है, उसका दिमाग फटने लगता है।

सुकुमार की वाणी में आधुनिक मानव की बेचैनी ज़ाहिर हूई है 'बन्द करो, परमात्मा का वास्ता है, बन्द करो। बचपन से लेकर आज तक हज़ारों लाखों बार मेरे कानों में यही आवाज़ पड़ती है कि अगर आज करूँ का खज़ाना किसी के पास है तो मेरे पास।..... दौलत, बेपनाह दौलत, बेहिसाब दौलत, बेइंतिहा दौलत लेकिन इस खुशनसीबी के बोझ से मेरी सांस घुटी जा रही है, मेरा दिमाग फटने लगता है, रग - रग चटकने लगती है।'(१)

आलोच्य नाटक में सुकुमार के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। उसकी बेताबी को सही मायने में शब्दबद्ध किया गया है। वस्तुतः यह आम आदमी और उसकी आदमियत की 'वीरगति' है।

३.२.५.२. पूँजीवादी व्यवस्था पर करारा व्यंग्य

नाटक के दूसरे दृश्य में नाटककार ने सुकुमार को निरोगी कराने केलिए देश विदेश से आये हकीम, वैद्य, पंड़ित, ओझा तथा ज्ञानी - मुनी सबका व्यंग्य भरी शैली में खुलकर भर्त्सना की है। सुकुमार के इलाज करने के बजाय वे आपस में झगड़ते रहते हैं। अपने को पहूँचे हुए पीर साबित करने के वास्ते वे दूसरों की बदनामी करते हैं। एक उदाहरण देखिए:

हकीमों से बचो ये जान ले लेते हैं लोगों की
दवा देते हैं पर इनकी नही पहिचान रोगों के
न रोगी से, न रोगों से, इन्हें पैसे से मतलब है
हकीमों से बचो ये जान ले लेते हैं लोगों की।(२)

---

(१) पाँच नाटक -असगर वजाहत, पृ - १०९
(२) वही, पृ - ११०

तीसरे दृश्य में सेठ - साहूकारों की स्वयंवर प्रथा पर भी मज़ाक उठाया है। साथ - ही नारी को बिक्री केलिए उपयुक्त चीज़ की तरह मानने वाले समाज का चित्रण मिलता है। एकाएक बिक्री होने केलिए जिस प्रकार दूकानदार माल का बखान करता है ठीक उसी तरह बाप अपनी बेटी की खूबियों का वर्णन करते हैं। तीसरी लड़की के पिता

'लड़की लड़की है हमारी बहुत अच्छी लड़की

नाचती गाती है और खाना पकाती है

xx xx xx xx

लड़की लड़की है हमारी बहुत अच्छी लड़की।'(१)

३.२.५.३.वर्तमान समाज में धनपतियों की प्रतिष्ठा

फिलहाल हमारे समाज में धन की परम प्रतिष्ठा पूँजीपतियों को अमुक स्थान देता है। इन पूँजीपतियों ने धन की आड में धर्म, ज्ञान, बुद्धि, ऐश्वर्य, प्रेम इत्यादि को बेनकाब साबित किया है। साहूकार का कथन इस बात को उजागर करता है। 'धर्म, ज्ञान बुद्धि, रूप क्या है जो दौलत से नहीं खरीदा जा सकता? मान, सम्मान, प्रतिष्ठा - क्या है जो दौलत से नहीं खरीदा जा सकता? धन, दौलत, ऐश्वर्य, - क्या है जो दौलत से नहीं खरीदा जा सकता? प्रेम, घृणा, पाप, पुण्य, क्या है जो दौलत से नहीं खरीद सकती।' (२) ज़ाहिर है पूँजीपतियों की निरंकुशता का बेबाक वर्णन।

हमारा समाज जो है पूँजीवादी समाज में तब्दील हो गये हैं। सेठ

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - ११५

(२) वही, पृ - १३४

साहूकारों ने अपने प्रभाव के सबब समस्त राजनीति पर हावी होने का प्रयास किया। फलतः गुनाह बेगुनाह साबित होता है। साहूकार का बेटा यदि दराज़दस्ती करे, पूरे ठौर में तहलका मचाये तो भी वह नाचीज़ सिद्ध होता है। यही है सत्ताधारियों की जालसाज़ी। वे यदि आम आदमी की जान भी लों तो भी कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। वस्तुतः नेता लोग अपना वर्चस्व बनाये रखने केलिए जनता को मूर्ख बनाते हैं। धन की पोटली उनके ऊपर उछाल देते हैं। सच को झूठ घोषित करता है और नामुमकिन को मुमकिन। साहूकार का कथन देखिए - 'धन - दौलत से असंभव को संभव बनाया जा सकता है।' (१)

आज के ज़माने में अक्सर ऐसा होता है कि अगर किसी पूँजीपति का बेटा किसी मुफसिल की जान ले तो भी उस जुल्म को पैसे की आड़ में दफनाया जाता है। इतना ही नहीं मृत व्यक्ति के परिवारवालों को रिश्वत दे देते हैं ताकि दुनिया की निगाहों से बच सके।

३.२.५.४. अर्थ केन्द्रित समाज पर करारा व्यंग्य

नाटक में पुश्तैनी साहूकार राज्य के महामन्त्री को पैसे के जाल में फँसाता है ताकि अपने बेटे की खिदमत हो सके। तत् अनुसार महामन्त्री राजा के समक्ष सुकुमार का बखान करता है। जिसकी पूँजी उसका गान वाली ध्वनि इस संदर्भ में खरी उतरती है। भरी महफिल में सुकुमार द्वारा राजा की बेइज़्ज़ती अन्ततोगत्वा कीर्तिगान सिद्ध होता है। इस प्रकार नाटक में अन्याय, अत्याचार और पूँजीवादी आधारों पर टिकी हुई शक्तियों के घृणित कृत्यों का पर्दाफाश किया है। अन्तिम दृश्य में बेवकूफ राजा का चित्रण निश्चय ही इस बात का

---

(१) पाँच नाटक - असग़र वजाहत, पृ - १३५

निदर्शन है कि आखिर सत्ता भी उस बन्दर जैसा है जिसकी डोर पूँजीवादी भ्रष्ट व्यवस्था के हाथ में है। सुकुमार द्वारा राजा की पगडी उतारकर फेंक देने को महामन्त्री, बहाना बनाकर राजा के जान बचाने तथा पगडी में छिपे साँप को मारने हेतु किये गये साहसपूर्ण बर्ताव साबित करता है। इस प्रकार साँप का जान बूझकर आरोप करना दरअसल इस हक़ीक़त को उजागर करता है कि जिसके पास पूँजी (सत्ता) है आर्थिक मूल्य उसी की तरफदारी करता है। अर्थात् जिसके पास लाठी है वही भैंस का हकदार भी रहा है।

हमारे समाज में यह धारणा रूढ़मूल हो चुकी है कि चोरी करना, डाका डालना जैसी नीच प्रवृत्तियाँ निचले तबके के लोग ही करेंगे। इसीलिए ही सुकुमार का चोरी करना बेमतलब साबित होता है। उसे चोर मानने केलिए कोई भी तैयार नहीं होते। चोर का कथन यहाँ स्पष्ट हुआ है: 'जो राजाओं का राजा है, जो धनवानों का धनवान है, जो दानियों का दानी है, जो परोपकारियों का परोपकारी है, जिसकी हवेली से हज़ारों को रोज़गार मिलता है, जो लाखों का पेट भरता है जो करोड़ों का दान - धर्म करता है, वह चोरी क्यों कर सकता है, अन्नदाता?' [१]

३.२.५.५. मौजूदा भ्रष्ट अर्थ व्यवस्था के ख़िलाफ असफल विद्रोह

नाटक में सुकुमार लगातार दुनिया को बदलने केलिए, समाज में व्याप्त वर्ग - वैषम्य को मिटाने केलिए, सभ्यता को बचाने केलिए और साथ ही साथ मानव आत्मा में पूँजीवादी अराजकता को खतम करने केलिए लड़ता है। परन्तु अन्त में प्रतिक्रियाविहीन दिखता है। मतलब वह भी खुद को उस पूँजीवादी

---

(१) पाँच नाटक -असग़र वजाहत, पृ - १२९

भ्रष्ट दुनिया से आज़ाद न कर सकता है। फिर भी सुकुमार क्रान्ति का हिमायती है। वह समाज की अर्थ निर्भर व्यवस्था के बरखिलाफ़ लडने का प्रयास करता है। मगर उस प्रयत्न का बेमतलब साबित होना इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि अकेले आदमी का जागरण व्यर्थ है।

साथ ही इस मुकाम पर दो बातें व्यंग्य रूप में उभरती है, पहले तो यह कि समाज में परिवर्तन केलिए क्रान्तिकारी व्यक्ति आभिजात्य वर्ग से नहीं, बल्कि आम जनता के बीच से आयोग। दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि आभिजात्य वर्ग से आने वाला क्रान्तिकारी अपने अव्यावहारिक विचारों के कारण, अपनी जन्मजात रूमानी संस्कृति के सबब हमेशा सुकुमार की तरह असफल होगा और उसकी तमाम कोशिशों का लाभ अन्ततः व्यवस्था को ही मिलेगा। नाटककार ने इसमें धन द्वारा राज सत्ता तक की खरीद को तार्किक एवं सहज माना है। मतलब, सत्ता पूँजीवादी भ्रष्ट व्यवस्था के जूते भी प्रेम से खाती रहती है और उसे ही पुरस्कृत करती रहती है। साथ ही इस बात का भी इज़हार किया है कि भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था में भ्रष्टाचार का खात्मा नामुमकिन है।

उपरोक्त नाटक की बारीकी से विश्लेषण करने पर यह बात ज़ाहिर होती है कि नाटक का कथ्य यह स्पष्ट करने में सक्षम हुआ है कि आदमी की ईमानदारी को सत्ता किस प्रकार बेईमानी में ढ़ाल देती है। प्रस्तुत नाटक इस तथ्य की और हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं कि आज के युग में सबकुछ धन पर ही निर्भर रहते हैं। बहरहाल यह नाटक पूँजी को ही एकमात्र शक्ति उद्‌घोषित करता है। जयदेव तनेजा के शब्दों में यह नाटक 'सत्ताधारी वर्ग के घाघ चरित्र

और उसके षड्यन्त्र के साथ - साथ आज के युग और समाज में पूँजी को ही एकमात्र एवं वास्तविक शक्ति (सत्ता) के रूप में रेखांकित करता है।' [१]

३.२.६. 'फिरंगी लौट आये': आज़ादी की फ़ज़ीहत

सन् १८५७ ई की क्रान्ति, निश्चय ही सामन्तवादी नेतृत्व में, हिन्दू मुसलमान जनता की तरफ से अंग्रेज़ों को देश से बाहर निकालने का एक असफल विद्रोह था। हालाँकि ब्रिटिश - भारत के इतिहास में इस क्रान्ति ने एकदम देश की काया परलट ही कर दी। इसमें शासकों एवं शासितों के संबन्धों में अमूल चूल परिवर्तन हो गया। इस प्रथम स्वतन्त्रता, संग्राम में हिन्दू और मुसलमान एकजुट होकर अंग्रेज़ों के खिलाफ खडे थे। यानी एकता में बल है कि धारणा उनमें ज़ोर पकड़ने लगी थी। साथ ही इस विप्लव ने यह सबक सिखाया कि अंग्रेज़ों के विरुद्ध हिन्दू तथा मुसलमान संयुक्त हो सकते है। अतः ए. आर. देसाई के मतानुसार 'एकता ने भारतीय जनता के संयुक्त राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका तैयार की।' [२] विप्लव के नेतृत्व में सामन्ती तथा कतिपय जननेता भी थे। मगर कुशल अंग्रेज़ी शासक इसके रग-रग से वाकिफ थे। तब से मौकापरस्ती विभिन्न बहाना बनाकर सुनियोजित ढंग से जनता के बीच दरारें पैदा करने लगे थे। यद्यपि महारानी विक्टोरिया की उदारवादी राज्य - घोषणा हुई, पर उसे व्यावहारिक नीति का रूप कभी नहीं मिला। महात्मागाँधी का कहना है '१८५७ की घोषणा बलवे के अन्त में लोगों में शान्ति कायम रखने केलिए की गई थी। जब शान्ति हो गई और लोग भोले दिल के बन गये तब उसका अर्थ बदल गया।' [३] बहरहाल कंपनी राज्य के अमानवीय दमन

---

(१) जयदेव तनेजा - 'हिन्दी के पाँच नए मौलिक नाटक', नटरंग
- अंक ४९ १९९५, पृ ५१

(२) *'It created tradition for a United Nationalist of the Indian people'*
- The social background of Indian Nationalism - A.R. Desai, पृ २७५

(३) *हिन्द स्वराज्य - महात्मा गाँधी, पृ - ५४*

एवं शोषण ही कायम रहा।

यह विचारणीय है कि विदेशी लोगों ने भारतवर्ष पर समय - समय पर आक्रमण किया। इसलिए नही कि हम कमज़ोर थे, बल्कि यह आक्रमण इसलिए हुआ कि यहाँ के राजाओं के बीच में एकता का नितांत अभाव था। झूठे वंशाभिमान, जाति, बिरादरी की भावना, आपसी होड, एक दूसरे को दबाने की वृत्ति, शान - शौकत और धन - दौलत के प्रति कभी न दबनेवाली इच्छा इत्यादि कारणों से यहाँ के राजा लोग लगातार लड़ते रहते थे। आपसी युद्ध तथा राजा की विलासिता की पूर्ति करना ही राज्य की आर्थिक नीति का एकमात्र उद्देश्य था। ऐसी स्थिति में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का विकास न हो सका तथा आपसी फूट और चारित्रिक पतन के सबब राज्यों की नींव खोखली होती गयी और अन्ततः व्यापारी के रूप में आये यूरोपीय देशों का भारतीय राजनीति पर प्रभुत्व बढ़ता गया।

आखिरकार उस लड़ाई में भारतीय नाकामयाब हुआ ही। मगर प्रश्न यह उठता है कि उस हार की मूल वजह क्या हो सकती है? यकीनन ही तत्कालीन राजाओं के पारस्परिक भेदभाव तथा वैमनस्य ही इसका कारण कह सकते हैं।

अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भारत के असली मालिक यहाँ के शासक बने। लेकिन लंबे अर्से के शासन ने सिद्ध किया कि जनता के साथ अत्याचार करने में ये काले मालिक गोरे मालिकों से भी एक कदम आगे हैं। आपात्कालीन परिस्थितियों में जो कटु अनुभव जनता को भोगना पड़ा वह यहाँ के विदेशी शासन से भी बदतर था। जब भारत विदेशी शासन के चंगुल में पड़कर छटपटा

रहे थे तब यहाँ के राजा लोग आपस में झगड़ते रहते थे। निःसंदेह उस समय के राजाओं के आपसी गला काट व्यवहार सौ सुनी बढ़कर मौजूदा राजनीतिक क्षेत्र में दिखाई पड़ते हैं। कहना न होगा कि वर्तमान परिवेश में समूचा देश सर्वनाश के कगार पर खड़ा हुआ है।

धर्म परिवर्तन को लेकर जनता में दबाव डालने का जो फसाद उस समय शुरू हुआ था, उसका सिलसिला आज भी हमारे चारों ओर के परिवेश में ज़ारी है। इसकेलिए कई घिनौनी मिसाल फिलहाल हाज़िर है - 'विशेष रूप से भाजपा (तथा भाजपा और शिवसेना) शासित राज्यों में ये कृत्य ईसाई मिशनरियों द्वारा 'जबरन धर्म परिवर्तन' का बदला लेने केलिए किए गए हैं।'[(१)] मसलन, आस्ट्रेलियन मिशनरी ग्राहम स्टेंस को उड़ीसा में ज़िन्दा जला दिया था।

साम्प्रतिक राजनीतिक परिवेश में नज़र फेरने से मालूम पड़ता है कि किसी भी क्षण हमारे देश में एक और विदेशी शासन के आगमन की संभावना है। यानी कि इतिहास दुहराता है। इस हक़ीक़त से पूर्णतः वाकिफ होकर वजाहत ने 'फिरंगी लौट आये' नाटक रचा। सन् १८५७ के विद्रोह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखे गये प्रस्तुत नाटक में म्यूटिनी (गदर) व पहला स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के मूल कारण ढूँढ लेने की कोशिश मिलती है। आपातकाल में लिखे गये इस नाटक में नाटककार ने सत्ता धारी वर्ग के दोहरे चरित्र को सामने रखा है।

नाटक के आरंभिक दृश्य से ही कंपनी के खिलाफ जनता की अरुचि का पता मिलता है। कंपनी की हुकूमत जनता को बर्दाश्त करने के परे हैं। कंपनी

---

(१) साम्प्रदायिक राजनीति तथ्य एवं मिथक - राम पुनियानी, पृ - १५२

के फरमान के मुताबिक जनता को दस गुना लगान देनी पड़ती है। गाँव में भुखमरी, अकाल मच गये हैं। धर्म ईमान सब कुछ मिटाने की भरसक चेष्टा हो रही है। फिरंगी पूरे हिन्दुस्तान को क्रिस्तान बना देने पर तुले हुए हैं। अर्थात् उन्होंने कैदियों को ईसाई मज़हब की तालीमात देना भी शुरू कर दी हैं। इन सबके विरुद्ध मुल्क में भगावत भड़क उठता है। नाना साहब पेश्वा और मुल्ला - अमानत मिलकर बागियों को संचालन देते हैं। हिन्दू और मुसलमान एकजुट होकर कंपनी के खिलाफ लड़ने केलिए तत्पर दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इस लड़ाई में मुहम्मत खाँ अड़चन पैदा करता है। पहले पहल उन्होंने पेश्वा साहब का साथ देने का वादा किया था। किन्तु जब उन्हें खबर मिलती हैं कि औसत फौजियों को फिरंगियों ने घेर लिया है, तब वे अपना तेवर बदल देते हैं।

अपनी खुदगर्ज़ी केलिए, अपने बचाव हेतु वह अपने ही मुल्क से फरेब करता है। अर्थात् मुल्ला अमानत का कत्ल करके उनका सिर कंपनी बहादूर के खिदमत में पेश करते हैं ताकि वे अपनी वफादारी अर्ज कर सकें। साथ ही अपनी दौलत, इज़्जत और अपने खानदान का नाम हमेशा केलिए कायम रख सके। नाटक के अंत में अवाम् की खुशहाली में हर तरह के काम-धन्धों को तरक्की देते हुए महारानी विक्टोरिया का फरमान सुनायी पड़ता है।

३.२.६.१. सत्ताधारियों की अवसरवादिता और स्वार्थ नीति

आज जो सत्ता की राजनीति है वह गिरगिट की तरह रंग बदलनेवाली अवसरवादी अपनी खुदगर्ज़ी की पूर्ति हेतु कुर्सी से चिपके रहने की प्रवृत्ति को महत्व देनेवाली है। छद्म वेश धारण कर मुँह में राम बगल में छुरी रखकर

हुकूमत करनेवाले आज के धोखेबाज़ नेता लोग पूर्ववर्ती शासकों से कुछ कम नहीं है। अतः वे आपस में झगड़ते - बिगड़ते रहते हैं। देश के आदर्श नेता हेने का ढिंढोरा पीटकर वे अपनी तरक्की को ही ज़्यादा वरीयता देते हैं। नाटक में मुहम्मद खाँ फिरंगियों के खिलाफ लड़ने केलिए शुरू - शुरू में तत्पर दिखाई पड़ते हैं। लेकिन जब अली ने आकर खबर दी कि फौज सबके सब हार गयी तब मुहम्मद खाँ अपनी बचाव को ही प्रमुखता देते हैं। अपने मुल्क वासियों को मौत के मुँह छोड़कर वे अपनी हिफ़ाज़त में व्यस्त रहते हैं। उन्हें सिर्फ अपने खानदान, अपनी दौलत और इज़्जत की फिक्र है। उनका कथन इस बात केलिए निदर्शन है 'लेकिन अगर फर्ज़ करें कि ज्वाला प्रसाद हार जाता है - तो क्या होगा? इतना भयानक सवाल है कि उसके ऊपर गौर ही नहीं किया जा सकता। फिरंगी फौज लूटमार, कत्ल का बाज़ार गर्म नहीं करेगी सबसे पहले हमें तोप से बाँध कर उड़ा दिया जायेगा - हमारी दौलत, इज़्जत सब खाक में मिल जायेगी - हमारे खानदान का नाम हमेशा केलिए मिट जायेगा।' (१) ज़ाहिर है अपनी खानदान के सम्मुख मुहम्मद खाँ केलिए देश की चिन्ता नगण्य है।

उनके इस तरह के बर्ताव और आजकल के राजनीतिज्ञों के व्यवहार में कोई खास अन्तर नहीं है। मतलब यह है कि वर्तमान राजनीतिक परिवेश का विषैले होने का मुख्य दायित्व मुहम्मद खाँ जैसे देश द्रोही व्यक्तियों की बढ़ती संख्या है। अपनी खुदगर्ज़ी हेतु दूसरों की ज़िन्दगी दुश्वार बनाने वाले ऐसे राजनीतिज्ञ किसी भी देश केलिए खतरनाक साबित होगा।

---

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - ५२

३.२.६.२. धर्म परिवर्तन को लेकर दंगे - फिसाद

ब्रिटीश शासन ने हमारे मुल्क में कई मुसीबतों को खड़ा किया। एक तो उन्होंने लगान बढ़ाकर लोगों को तंग किया तो दूसरे उन पर ईसाई मज़हब थोपने की ज़बरदस्त कोशिश की। मुल्ला अमानत के शब्दों में तत्कालीन भारत की हालत मूर्त हूई है -'सूरज चाचा, एक गाँव की नहीं ये हालत सभी गाँवों की है....... मैं दिल्ली से मुर्शिदाबाद तक यही सब देख चुका हूँ.... फिरंगी हमें गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। उन्होंने लगान बढ़ा - बढ़ाकर हमारी कमर पहले ही तोड़ दी थी, अब हमारा धरम ईमान चौपट करने पर कमर बाँध चुके हैं..... सिपाहियों को अब ऐसे कारतूस दिए जा रहे हैं, जो सुअर और गाय की जर्बी से बनाये जाते है, वे पूरे हिन्दुस्तान को क्रिस्तान बना देना चाहते हैं। तौबा - तौबा मुआज़ अल्लाह, इस मुल्क में अब न कोई हिन्दू रहेगा न मुसलमान।'[१]

३.२.६.३. वर्तमान न्याय व्यवस्था पर हस्तक्षेप

मौजूदा न्याय व्यवस्था में हम देखते हैं कि मुजरिम को इन्साफ मिलता है और बेगुनेगार को बेइन्साफी। चूँकि अदालत गवाह माँगती है। चाहे वह नकली ही सही, गवाह हाज़िर होना चाहिए। आज के न्याय पालक रुपयों के लालच में धर्म - ईमान सब कुछ बेच देते हैं। नाटक के नवें दृश्य में नाटककार ने न्याय व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है। सूरजपाल का कथन यहाँ द्रष्टव्य है -'वकील साहब थोड़ी तो सरम किया चाही। रुपया - पईसा के लिए धरम - ईमान न बेचो।' [२]

आलोच्य नाटक का जायजा लेने से यह बात स्पष्ट होती है कि

(१) पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - १८
(२) वही, पृ - ४६

नाटककार जन विद्रोह को बेनकाब करनेवाले अंग्रेज़ी शासकों की निपुणता तथा लड़ाई को विफल करनेवाले जालसाज़ों का पर्दाफाश किया है। साथ ही कंपनी राज के अमानवीय दमन एवं शोषण की तस्वीर खींची है। प्रस्तुत नाटक के कथ्य के संबन्ध में जयदेव तनेजा लिखते हैं 'यह नाटक १८५७ के जन विद्रोह की असफलता के संदर्भ में आम आदमी और आज़ादी केलिए उसकी सतत् लड़ाई को विफल करने वाले षड्यन्त्रकारियों को बेपर्दा करता है।' [१] कहना न होगा कि दरअसल स्वेच्छाचारी शासन के प्रति लेखक के मन में जो आक्रोश है या विद्रोह है वही प्रस्तुत नाटक के ज़रिए मूर्त हुए हैं।

३.२.७. 'हड्डी': राजनीति की छीना झपटी

यह नाटक आज के राजनीतिज्ञों के दोहरे चरित्र की ओर संकेत करते हैं। सत्ता मिलते ही वे गिरगिट की तरह अपना रंग बदल देते हैं और अवाम पर झपटते हैं।

नाटक में जंगल का दृष्य है। उद्घोषक के रूप में परी आकर धरती की सच्ची कहानी का संकेत करती हैं। जंगल में बिल्ले ने चूहों का जीना बेहाल कर रखा है। वह जंगल का राजा बनकर अपनी धूम में मस्त है कि किसी भी चूहे की सांस तक नहीं चलती। चूहों ने बिल्ले से लड़ने केलिए उपाय ढूँढ़ा। अतः चूहा - ३ को अचानक सामने पडी किसी जानवर की बड़ी सी हड्डी दिखाई देती हैं। वह हड्डी उठा लेता है और उसके नुकीले सिर को देखता है। उसे हथियार घोषित करता है और बिल्ला से भिड़ने का निश्चय भी करता है। हथियार मिलने की वजह बिल्ले के हमले से वे बच जाते हैं। यानी कि सारे चूहे

---

(१) समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - जयदेव तनेजा, पृ - १२१

खुश और शान्ति का जीवन बिताते है मगर अगले परिदृश्य में हम देखते हैं कि चूहा - ३ जिसे हथियार हासिल हुआ था; जंगल का राजा बनकर अपनी ताकत (हथियार) से बाकी चूहों को नकारता है और बेनकाब करता है। उन्हें कमज़ोर घोषित कर अपनी नीति अमल करने की कोशिश करते है। ठीक आज के राजनीतिज्ञों की तरह अधिकार या कुर्सी हासिल होते ही सबके ऊपर कुशासन करते हैं - चूहे - ३ का कथन -

'मैं राजा हूँ मैं स्वामी हूँ मैं मालिक हूँ

जो भी तुमको हुक्म सुनाऊँ

उसको फौरन पूरा करो तुम' [१]

अर्थात् राजा का दायित्व अवाम की खुशहाली के बदले स्वामित्व जमाना है और हुक्म सुनाकर रियाओं के ऊपर अपने हिसाब की नीति अमल में लाना है। राज्य की चिन्ता उनकेलिए नगण्य है।

ऐन वक्त पर बाकी चूहे उनपर पड़ने वाली दूसरी आपत्ति से दुखी दिखाई पड़ते है। उनकी पीड़ा को देखकर परी उनसे नया उपाय सूझने केलिए कहती है और चली जाती है। अन्त में चूहे सब एकजुड होकर चूहे - ३ के सम्मुख जाते हैं और हथियार को चमकाने के वास्ते उनसे हथियार माँगते हैं। हथियार हासिल होते ही उसके टुकडे - टुकडे कर देते हैं। जिस हथियार के बल पर चूहा - ३ उनसे ज़ीनाखोरी करता था उसी हथियार को वे नष्ट कर देते हैं। जब चूहे - ३ को यह खबर मिलती है तो वह अपना हार मानता है।

नाटक का अन्त चूहों के कोरस से होता है -

---

(१) साक्षात्कार - अप्रैल - मई १९८६, पृ - ७९

'नौकर मालिक कोई नहीं
सेवक स्वामी कोई नहीं
तेरा, मेरा कोई नहीं
सब सबका है, सब सबका है' (१)

मतलब यह नाटक सच्चे गणतन्त्र की कामना करता है जहाँ नौकर मालिक कोई नहीं है। सब समान है। साम्यवाद की धुन ही सर्वत्र है। नाटक यह भी साबित करता है कि अपना उल्लू सीधा करने में काले साहब उस गोरे साहब से तनिक भी कम नहीं है। आज की राजनीति में गुण्ड़ागिरी और दादागिरी ही चलते हैं।

३.३. असग़र वजाहत के नाटकों की शिल्पगत विशेषताएँ

पचास के बाद के नाटकों में शिल्प के क्षेत्र में हुए बदलाव तथा विशेषताओं को सरेआम स्वीकार करके डॉ. असग़र वजाहत ने अपने नाटकों का रूपायन किया। शिल्प विधान के ज़रिए नाटककार नाटक के कथ्य को प्रेक्षक तक स्पष्ट, सुन्दर एवं प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं।

पात्र कथावस्तु के सजीव संचालक होते हैं जिसका घनिष्ठ संबंध कथा, घटना और परिस्थिति के साथ होता है। पात्रों के क्रियात्मक घात - प्रतिघात व

---

(१) साक्षात्कार अप्रैल - मई १९८६, पृ - ८१

टकराहट से ही नाटक के कथ्य गतिशील होकर उद्दिष्ट प्रभाव को प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक नाटकों के पात्र जीते - जागते पात्र है और उनके हर कार्य के पीछे उनके मनोभावों की प्रेरणा रहती है। पात्रों के चित्रण को भी विशिष्ट स्थान है। बगैर चरित्र चित्रण के कथानक एक गोरख धन्धा बनकर रह जाता है।

सामाजिक सरोकार से जुडे हुए असगर के नाटकों में विभिन्न सामाजिक विसंगतियों जैसे साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, भ्रष्ट पूँजीवादी व्यवस्था, निरंकुश शासन, सत्ता की अवसरवादिता एवं स्वार्थ पूर्ण नीति मूल्य विघटन आदि को शब्दबद्ध किया गया है। अतः उपरोक्त विद्रूपताओं को उजागर करने के उद्देश्य से कई पात्रों की योजना की गई है।

जीवन मूल्यों को तरजीह देनेवाले पात्र उनके नाटकों की एक उपलब्धि है। 'ओ जन्म्या ई नई' के रतन की माँ, इकरामुद्दीन और नाज़िर काज़मी ऐसे ही पात्र है। उनके नाटकों के अधिकतर पात्रों में दलित, पीड़ित, शोषित तबके के लोगों की व्यथा मूर्त हूई है जैसे 'समिधा' का अम्बिका प्रसाद और 'इन्ना की आवाज़' का इन्ना। आम आदमी के साथ खिलवाड करनेवाले पात्रों की सृष्टि हुई है। अपनी लड़ाई खुद लड़नेवाले संघर्ष चेता पात्रों में 'वीरगति' का सुकुमार विशेष चर्चित पात्र है। समाज के शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने केलिए उन्होंने टी.पी. दोरिया (समिधा), साहूकार (वीरगति), सुलतान (इन्ना की आवाज़) और मुहम्मद खाँ (फिरंगी लौट आये) जैसे पात्रों को भी उकेरने का प्रयास किया है।

उनके नाटकों में इन प्रमुख पात्रों के अलावा गौण पात्र भी हैं जो नाटक की कथावस्तु को गति देने तथा प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने में सक्षम हैं।

'ओ जन्म्या ही नहीं' में सिकन्दर मिर्ज, हमीदा बेगम, तनवीर बेगम, जावेद, पहलवान आदि गौण पात्रों द्वारा साम्प्रदायिकता के उस तनावपूर्ण स्थितिगतियों को उजागर किया गया है। इसके सभी पात्र अपनी निजी विशिष्टता लिये हुए है।

'समिधा' में मल्लिका, अनादि, गीलानी तथा डी. सी. चुग गौण पात्र है जो मुख्य पात्रों को अधिक स्पष्ट एवं शक्तिशाली बनाने में सहयोग देते हैं।

'इन्ना की आवाज़' में मलका, वज़ीरे आज़म, फसी, दरोगा आदि गौण पात्र है। 'वीरगति' में सुन्दरी, सुकुमार की माँ, महामंत्री, राजा आदि गौण पात्र हैं। 'फिरंगी लौट आये' में सूरजपाल, मुल्ला अमानत, मुन्नी बाई मिर्ज़ा तरहदार, नाम दार हुसैन आदि गौण पात्र हैं।

अप्रस्तुत चरित्रों की योजना भी असगर वजाहत ने की है। 'समिधा' नाटक की रामकली अप्रस्तुत पात्र है। मगर पूरे नाटक में अदृश्य रहकर भी वह नाटक पर अपनी अमिट रेखा छोडती है। नाटक में आदि से अन्त तक उसका प्रभाव रहता है। 'फिरंगी लौट आये' में नाना साहब पेशवा अप्रस्तुत पात्र है। इस प्रकार अप्रस्तुत पात्रों की परिकल्पना करके चरित्र सृष्टि के धरातल पर नए प्रयोग लाने में वे बिलकुल सफल हुए है।

नाटककार ने व्यक्ति के बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष पर

अधिक ज़ोर दिया है। उनका प्रत्येक पात्र एक अद्वितीय चरित्र है और वे अपने संवादों और गतिविधियों में स्पष्ट हैं। उनके पात्रों की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी साधारणता है। उनके ऐतिहासिक पात्र भी समकालीन संगति देने वाला हैं। पात्रों के चरित्र - चित्रण में उन्होंने बुद्धिगम्यता, परिपूर्णता, सारवत्ता एवं दर्शनीयता लाने की कोशिश की है। प्रत्येक पात्र को उसकी अपनी अस्मिता दी गयी है। अतः उनके नाटक पात्रों के विकास, संघर्ष और द्वन्द्व से प्राण ग्रहण करता है। इसी वजह प्रत्येक पात्र अपने आप में स्वतंत्र एवं विश्वसनीय हैं। सभी पात्र समाज के जाने पहचाने चेहरे प्रतीत होते हैं। इस प्रकार वजाहत के पात्रों का चरित्र चित्रण उनके कार्यकलापों, हाव अनुभावों, परस्पर के संभाषणों, स्वगत कथनों, परिस्थितियों एवं घटनाओं तथा अन्य पात्रों द्वारा व्यक्त की गयी सम्मतियों से सुसंपन्न हुआ है।

संवाद जो है नाटक का प्रमुख एवं परमाश्वयक तत्व है जिसे नाट्यकला का मूल और आदि प्रेरणा स्रोस कहा जा सकता है। नाटक के पात्रों द्वारा होनेवाले कथोपकथन या संवाद ही नाट्य वस्तु एवं चरित्रों के विकास के लिए प्रमुख साधन होता है। इसे ही 'वाचिक अभिनय' की संज्ञा दी गई है। नाटक में संवाद संक्षिप्त एवं भावव्यंजक होना चाहिए जिससे वस्तु ऐवं चरित्र के विकास के साथ ही साथ उसकी चारित्रिक विशेषताएँ भी निरावृत्त हो। संवाद के दो भाग होते हैं - भाव और भाषा। भाव कथावस्तु को गति देने के साथ - साथ चरित्रों को उदघाटित करता है और उद्देश्य को व्यंजित करता है।

भाषा भावाभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। वह नाटकगत भावों के संप्रेषण का एकमात्र माध्यम है जिसको सरलता या क्लिष्टता पात्रों के भावों एवं विचारों

के अनुसार ही होनी चाहिए। नाट्य भाषा में मौन हरकत, संवाद, गतिशीलता एवं स्थिरता का समन्वय होना वाजिब है। नाट्य भाषा के संबंध में गोविन्द चातक ने लिखा है कि 'नाटक की भाषा जीवन की भाषा है जिसके साथ मानव मन की भावमयी अनुभूतियाँ, मुद्राएँ, क्रियाएँ और स्थितियाँ सदा जुडी होती हैं। इसलिए उसमें किताब की भाषा से अलग संवेदना के स्वरों की अनुगूँज निहित होती हैं जो अभिनेता की उद्‌भावनाओं से जीवंत हो उठती है।' [१] नाट्य भाषा का प्रयोग विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल होना आवश्यक है।

उनके नाटकों की भाषा पात्रानुकूल और सहज, सरल तथा बोलचाल की भाषा है। वस्तुतः रंगमंच को दृष्टि में रखकर ही उन्होंने भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में पांडित्य प्रदर्शन, क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। भाषा की व्यंग्यात्मकता हेतु कथ्य और अधिक रोचक एवं आकर्षक बन गए है। संवाद योजना के द्वारा वजाहत पाठकों तथा दर्शकों से तादात्म्य स्थापित करने में सफल हुए हैं।

इनके अधिकतर नाटकों की भाषा बोलचाल की उर्दू है। उर्दू शब्दों की भरमार ने नाटकों को रोचक बनाया है। जैसे, एलाट, एवज, मुश्तरिक, जज़बात, तहरीर, दरख्वास्त, इख्तियाद, इज्ज़त आदि (ओ जन्म्या ई नईं)। 'वीरगति' में प्रयुक्त भाषा सरल, सहज व बोलचाल की है। भाषा में उर्दू शब्दों की बहुलता है जैसे, तक़रार, इंतिज़ाम, गज़ब आदि। शहर के शिक्षित पात्रों के अनुकूल अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का इस्तेमाल हुआ है। उदाहरण के लिए, समिधा में सूपर, नेचुरल, कोऑपरेट, एक्सरसाइज़ेज़, पब्लिक एपीरियेंस, एक्सपेर्टस्, अंडेरस्टैंट, गेटअप आदि। 'फिरंगी लौट आये' में नाटककार ने सरल,

---

१. नाट्य भाषा - गोविन्द चातक, पृ - ११

बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। युद्ध जन्य परिस्थितियों को सँवारने में भाषा काबिल हुई है। भाषा में उर्दू शब्दों की भरमार है जो मुगल सल्तनत के लिए दरकार भी था। जैसे, फज़ल, हासिल, कसर, ताकीद, पैगाम, तश्रीफ, फौरन आदि।

'ओ जन्म्याई नई' में रतन की माँ से पंजाबी बुलवाई गई है। जैसे 'वाह जी वाह ये सुख कही, मैं कौण हूँ   तुसी दस्सो कौण हो जो बिना पूरछे मेरे घर घुस आए....'। [१] मस्जिद के मौलवी द्वारा अरबी के वाक्यों का प्रयोग भी हुए है। उदाहरण के लिए 'वान्ने अहज़ मुरारीकन अस्त जादक फार्जिदा '। [२] सरल सहज एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है।

संवाद जो है संक्षिप्त, रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। इसमें कृत्रिमता का नितांत अभाव है। 'ओ जन्म्या ई नई' के शायर नासिर के संवादों में काव्यात्मकता और मार्मिकता निहित है। जैसे, 'जब मैं यहाँ शुरू शुरू में आया तो उन सब चीज़ों की तलाश थी जिन्हें दिलो जान से चाहता था..... सरसों के खेतों से भी पूछा था कि मुझे इश्क है..... तो भाई मैं ने लाहौर आते ही कई लोगों से पूछा था कि क्या सरसों यहाँ भी वैसा ही फूलती है जैसी हिन्दुस्तान में फूलती थी।' [३]

नासिर और पहलवान की बातचीत में व्यंग्यात्मकता और पैनापन है। उदाहरण देखिए:

नासिर : 'क्या बात है पहलवान साहब बहुत गुस्से में नज़र आ रहे हैं।

पहलवान नज़र नहीं आ रहा हूँ गुस्से में.....

---

१. पाँच नाटक - असगर वजाहत, पृ - २०९
२. वही, पृ - २३३
३. वही, पृ - २५७

नासिर अमां तो सदरे पाकिस्तान को एक खत लिख मारिए।

पहलवान क्यों मज़ाक करते हैं नासिर साहब।

नासिर मज़ाक कहाँ भाई.... हम शायर तो जब बहुत गुस्से में आते हैं तो सदरे पाकिस्तान को खत लिख मारते हैं।' [१]

संवादों में जिज्ञासा का पुट अवश्य मिलता है, जो पाठकों एवं दर्शकों को सोचने के लिए बाध्य करते हैं। मसलन, सिकन्दर मिर्जा की बेटी तन्नो का यह कथन प्रभावोत्पन्न एवं मार्मिक है। 'अम्मां अगर हम लोग और माई एक ही घर में रह सकते हैं तो हिन्दुस्तान में हिन्दु और मुसलमान क्यों नहीं रह सकते थे।'[२]

मुहावरों और कहावतों का प्रयोग प्रायः नहीं हुआ है। पर एकाध स्थान पर रतन की माँ एक कहावत का प्रयोग करती है, जैसे, 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या ई नई।' [३]

फिर भी भाषा सरल और सरस है। भाषा का प्रयोग पात्रानुकूल एवं स्वभावानुकूल हुआ है। जैसे, सुखानन्दाचार्य देहात का होने के कारण देहाती भाषा का प्रयोग मिलता है - 'पूरा गाँव थू - थू कर रहा था। पर पटवारी से मिलकर बेच डाला.... बताते है दो हज़ार तो पटवारी ने रख लिये हैं....।'[४] इसी प्रकार अनोखेराम द्वारा भी देहाती भाषा का प्रयोग हुआ है 'काहे का डर ? भाषा कोई सूली में चढ़ा देगा.... खा - पी... आराम से रह... जो कहत हैं करता रहा।'[५] कई संवाद हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। साथ साथ नाटक में निहित गूढ़ रहस्य को उजागर करता है - 'धर्म केये दूकानें करप्शन के अड्डे हैं। ये करप्ट लोग हैं। दुनिया भर के पाप वहाँ होते हैं और तुम वहाँ जा रही हो?[६] मुहावरों और लाकोक्तियों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है।

---

(१) पाँच नाटक असगर वजाहत, पृ - २५०
(२) वही, पृ २४५ (३) वही, पृ - २२६ (४) वही, पृ - १५०
(५) वही, पृ १५३ (६) वही, पृ - १६६

संवाद संक्षिप्त एवं सरस है। पात्रों के चरित्र को उभारने में सहायक हुए हैं। जैसे 'इन्ना की आवाज़' में सुल्तान का यह कथन उनके दर्प, अहम और आज्ञा को व्यक्त करता है। 'हम इस मुल्क के बादशाह है और तुम लोग हमारी रिआया हो। हम हुकूमत करते हैं तुम्हारे लिए। हम जंगे करते हैं तुम्हारे लिए। हम सुलाहें करते हैं तुम्हारे लिए। और इसलिए तुम हमारा हर हुक्म मानते हैं।'[१]

संवादों में तुकबन्दी, शेरो शायरी, पुनरावृत्ति, संगीत, नृत्य और अतिरंजनापूर्ण भावाभिव्यक्ति जैसी विशेषताएँ विद्यमान है जो नाटक को पारसी नौटंगी रंग - शैली के नज़दीक ले जाती है। उदाहरण के लिए 'वीरगति' में सुकुमार के इस कथन में संगीतात्मकता होने के साथ शब्दों की पुनरावृत्ति भी परिलक्षित है।

'चोरी चोरी है उसे और कहोगे तुम क्या

xx xx xx xx xx xx

चोरी गर शाह करे उसको सज़ा क्यों न मिले।' [२]

भाषिक संरचना में लोक शैली की सी सरलता एवं ललक है। संवादों में सर्वत्र शायरी और तुकबन्दी का पुट मिलते हैं। लोक नाट्य की परंपरा के अनुसार संवाद योजना में पद्यमय लय का निर्माण भी हुआ है। नाटककार ने कतिपय पात्रों द्वारा सुन्दर और पद्यात्मक संवाद पेश किया है जो कथावस्तु को और अधिक रोचक एवं प्रभावशाली बनाता है।

उनके नाटक में पारम्परिक शिल्प से मुक्ति तथा नये शिल्प की तलाश की

---

(१) पाँच नाटक -असगर वजाहत, पृ - ६७
(२) वही, पृ - १३१

गई है। पारम्परिक नौटंकी शैली में आधुनिक रंगमंच की तकनीक और युक्तियों का प्रयोग करके नाटककार ने अपनी प्रयोगशीलता को दर्शाया है।

नाटक में सूत्रधार, नट-नटी और लोक - गीतों का प्रयोग भी हुआ है। संवादों में पद्यात्मकता भी दिखाई पडती है। जैसे,

'क्या करूँ लेकिन कि किस्मत अपनी खोटी है।

कंपनी राज में हर आदमी की तिक्का बोटी है।

शराफत में हमें दो वक्त की रोटी नहीं मिलती

इधर चुंगी, उधर चुंगी, जहाँ जाओ वहाँ चुंगी।'[१] (फिरंगी लौट आये)

उक्त संवाद द्वारा विदेशी शासन काल में जनता से जबरन लगान वसूल करने वाले कंपनी राज्य का मज़ाक उठाया है।

रंगमंच के लिहाज़ से असग़र वजाहत के नाटक महत्वपूर्ण है। दृश्यों की ही परिकल्पना है।

दृश्य परिवर्तन के लिए 'कोरस' पद्धति को अपनाया गया है। नाटक में रचनाकार ने बीच-बीच में तथा समय - समय पर रंग - निर्देश दिये है। चूँकि वे स्वयं एक अभूतपूर्व रंगकर्मी है। पात्रों द्वारा बदलती भाव-भंगिमाओं, प्रकाश योजना, संगीत योजना आदि बातों पर भी संकेत दिये जाने से नाट्य निर्देशन में सहायता मिलती है।

'ओ जन्म्या ई नईं' नाटक को अन्तर्राष्ट्रीय साम्प्रदायिक एकता के लिए स्थापित टच संस्था के सहयोग से प्रख्यात नाट्य संस्था भारतीय ने लोग्ले हाई

---

(१) पाँच नाटक -असगर वजाहत, पृ - २५

स्कूल, सभागार, मैलकीन (वाशिंगटन) में प्रस्तुत किया गया। वाशिंगटन महानगर में प्रस्तुत नाटक की यह चतुर्थ प्रस्तुति हिन्दी नाटक की लेकप्रियता का परिचायक है। जब हबीब तनवीर के निर्देशन में इस नाटक का प्रस्तुतीकरण मध्यप्रदेश के भोपाल में हुआ तो राज्य सरकार ने उस पर रोक लगाई।

'इन्ना की आवाज़' सबसे पहले अनिल चौधरी ने मंचित किया इस ग्रूप में पंकज कपूर, नीना गुप्ता, दीपक केजरीवाल जैसे अभिनेता थे। इसका मंचन अनिल चौधरी के बाद एम.के.रैना तथा दूसरे कई निर्देशकों ने किया।

'वीरगति' नाटक में नौटंकी शैली में आधुनिकता का प्रवेश शैलीगत प्रयोग है। इसका मंचन अलग - अलग ग्रूपों द्वारा पूरे हिन्दी प्रदेश में किया गया है। 'फिरंगी लौट आये' नाटक दूरदर्शन पर 'फरमान' नाम से पेश किया गया था।

डॉ. असग़र वजाहत के सभी नाटक रंगमंच पर काफी सराहे गये हैं। साथ ही साथ प्रदर्शन चर्चित हुए है। स्वयं एक रंगकर्मी होने के कारण उन्होंने सभी नाटकों की रचना रंगमंच से संपृक्त होकर की है। उनके नाटक अभिनेय या मंचीय नाटकों के लिए उत्कृष्ट निदर्शन है। उनके नाटक देश के भिन्न - भिन्न भागों, महानगरों में ही नहीं, बल्कि विदेश में भी खूब खेले हैं। यही नहीं, टी. वी. तथा रेडियो के द्वारा भी उनके नाटकों का प्रदर्शन मुमकिन हुआ है। यह उनके नाटकों की रंगमंचीय सफलता का सबसे बडा प्रमाण है। साथ ही उनकी प्रयोगधर्मिता को बरकरार रखने के लिए भी नाटक श्रेष्ठ साबित हुए हैं।

डॉ. असगर वजाहत के नाटकों के शिल्प संबंधी विभिन्न पहलुओं पर बारीकी से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हुआ है कि उन्होंने शिल्प के सभी तत्वों जैसे पात्र, चरित्र चित्रण, भाषा, संवाद योजना, अंक या दृश्य विभाजन, रंगमंचीयता इत्यादि पर समान रूप से ध्यान केन्द्रित करके ही अपने नाटकों का सृजन किया है। इसी वजह से उनके सभी नाटक शिल्प के धरातल पर सफल व सराहनीय ही नहीं बल्कि प्रयोगशील भी है।

४

चौथा अध्याय:

असग़र वजाहत की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विसंगतियाँ

चौथा अध्याय:

असग़र वजाहत की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक विसंगतियाँ

४.१. हिन्दी कहानी: विकास के भिन्न दौर

कहानी साहित्य की चर्चा प्रेमचन्द (१८८९ १९३७) के बगैर अधूरा रहेगा। जनवादी चेतना से जुड़ी हुई इनकी तमाम कहानियाँ सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है। अपनी पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' (१९०७) से लेकर आखिरी कहानी 'कफ़न' (१९३६) तक में इनकी प्रतिबद्धता का परिचय मिलता है। इनकी प्रारम्भिक कहानियाँ गाँधीवादी रही। उसमें आदर्शवादिता की अधिकतर गुंजाइश विद्यमान थी। बहरहाल अन्त तक पहूँचते - पहूँचते इनकी कलम घोर याथार्थवाद की ओर बढ़ी। दरअसल इनकी अन्तिम दौर की कहानियाँ विशेषकर 'पूस की रात' (१९३०) 'बड़े भाई साहब' (१९३४) व 'कफ़न' (१९३६) समाज के नग्न यथार्थ से जूझते जूझते नकारात्मक मूल्यों को अपनायी हुई दिखाई पड़ी।

गौरतलब है कि प्रेमचन्द ने तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक भण्ड़ाफ़ोड़ का उल्लंखन किया। लेकिन ब्रिटीश सरकार का सीधा विरोध - इनकी कहानियों में परिलक्षित नहीं है। उनकी रचनाधर्मिता से

भिन्न होकर जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र कुमार और अज्ञेय का कहानी संसार भावनात्मक रहा। या कहिए इन्होंने भावनात्मक धरातल पर स्वच्छन्द विचरित होकर वस्तु जगत की विसंगतियों के बीच से ऐसे पात्रों की खोज की जो अपने वर्गीय एवं सामाजिक, संस्कारों तथा सीमाओं का अतिक्रमण कर सके। प्रसाद के कवि और नाटककार ने उनकी कहानियों के शिल्प को काव्यात्मक और नाटकीय बनाया। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' (१९११), 'छाया' (१९१२) में संग्रहीत है। आगे 'प्रतिध्वनि' (१९२६), 'आकाशदीप' (१९२८), 'आँधी' (१९३१) एवं 'इन्द्रजाल' (१९३६) के द्वारा इन्होंने पाठकों के समक्ष रोमानियत का इन्द्रजाल बिछा दिया जिसमें मानव जीवन के चिरस्थाई सत्यों का अंकन मिलता है।

प्रेमचन्द से टकराते हुए जैनेन्द्र अज्ञेय और अश्क ने व्यक्तिवादिता को प्रमुखता दी। परन्तु प्रेमचन्द की प्रगतिशील विरासत को आगे बढ़ाने का श्रेय राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रागेंय राघव, भीष्म साहनी, अमृतराय आदि ने किया।

स्वातन्त्रोत्तर हालात भारतवर्ष के इतिहास का सबसे शर्मनाक व अवांछनीय परिवेश था। एक ओर विभाजन की त्रासदी है तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता का खौफनाक माहौल। इन सबके बीच आर्थिक विषमता भी कुछ कम न थी। जहाँ पराधीन भारत विदेशों की गुलामी से छटपटा रहे थे वहाँ स्वाधीनता में वे अपने ही देश के राजनीतिज्ञों के खलनायकत्व का शिकार बने। राजनीति राजनीतिज्ञों केलिए धन्धा बन गयी थी। अतः नेता सामंत में तब्दील हो रहे थे। इन सबका नतीजा यह हुआ कि सब स्वहित का ढिंढ़ोरा पीटने लगे। 'चारों ओर

अव्यवस्था अनुशासन हीनता, दायित्व हीनता, अकार्यकुशलता, खोखली नारेबाजी ने गाँधीजी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया।' [१] परिणामतः समूचे भारत में क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता व भाषावाद की समस्या उत्पन्न हुई। जिससे स्वातन्त्रोत्तर कहानीकार भी अप्रभावित कदापि नहीं रह सके। लिहाज़ा 'वह जिसका वर्णन करता है वह उसका देखा हुआ जीवन या बाहर से लादा हुआ जीवन न होकर उसका भोगा हुआ जीवन है। वह आसपास के जीवन को प्रामाणिकता और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करता है। भले ही वह शिव हो या अशिव, उचित हो या अनुचित ग्राह्य हो या अग्राह्य। उसे वह निरपेक्षता और तटस्थता के साथ प्रस्तुत करता है।'[२]

स्वातन्त्रोत्तर युग में कहानी के क्षेत्र में एक से बढ़कर एक आन्दोलनों का समावेश हुआ। जिसे 'नई कहानी', 'अकहानी', 'सचेतन कहानी', 'समान्तर कहानी' आदि नामों से अभिहित किया गया। प्रत्येक आन्दोलन अपने युग की उपज था। सभी वादों के मूल में एक दृष्टि थी। एक नया आधार विद्यमान था। इस दौर के पाठक वर्गों में बदलते हुए सामाजिक जीवन की माँग थी। 'विभाजन, मोहभंग, यांत्रिकता, विसंगतियाँ, परिवारों का विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यापक असन्तोष के बीच जो मनुष्य साँस ले रहा था, जिसका समकालीन साहित्य जवाबदेही से कतरा रहा था'।[३] अतएव 'नयी कहानी' ने अपने दायित्वबोध रूपी ड़ोर को संभाला। सभी अपवादों को छोड़कर इसने मत-मतान्तरों, फैशनों या वादों से आक्रान्त हुए बिना प्रतिबद्ध रचना का समर्थन किया जो कि नये युग केलिए एक स्फूर्तिवान ज्योति थी।

निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ

---

(१) स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिभा - हेतु भारद्वाज, पृ - ४३

(२) कहानी के नये प्रतिमान - कुमार कृष्ण, पृ - २७

(३) नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर, पृ - २८

रेणु, कमलेश्वर, अमरकान्त, शानी, आदि की कहानियों ने अपनी मूल संवेदना, परिवेश, भाषा व शिल्प वैशिष्ट्य से पाठक गणों को नयी जान प्रदान की। इस दौर में परिवेश गत यथार्थ को वैचारिक धरातल पर उकेरने का सफल कार्य यशपाल ने किया। उनकी मध्यवर्गीय सामाजिक विसंगतियों से जुड़ी कहानियाँ है 'पराया सुख', 'फूलों का कुर्ता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' 'परदा', 'काला आदमी', 'ज्ञानदान' आदि। उन्होंने कतिपय कहानियों में निम्नवर्गीय शोषितों के दुःख संघर्ष का चित्रण भी किया है। मसलन 'आदमी का बच्चा', 'परलोक', 'कर्मफल' आदि।

इस खेमे के कहानीकारों ने अपने परिवेश को कहानी कला में रूपायित करने केलिए विभिन्न तरीके अपनाये। कहीं फणीश्वर नाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र अवस्थी आदि ने ग्रामीण जीवन का कैनवास अपनाया तो कहीं निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव आदि ने शहरी ज़िन्दगी के आधुनिक बोध को। मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, शशिप्रभा शास्त्री, सोमा वीरा, श्रीमती विजय चौहान, मेहरुन्नीसा परवेज़, नासिरा शर्मा आदि महिला कहानीकारों ने नारी जीवन के भीतर छटपटाती टीस को नयी परिभाषा दी। जबकि धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, अमरकान्त, कमलेश्वर, नरेन्द्र कोहली आदि ने कहानी को परिवेशगत यथार्थ से जोड़ा तो उसे एक क्षण या एक मूड़ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, कुंवर नारायण, कृष्ण बलेदव वैद आदि ने। यहाँ उल्लेखनीय कहानियाँ है 'गुलकी बन्नो' (धर्मवीर भारती) 'ज़िन्दगी और जोंक' (अमरकान्त) 'धरती अब भी घूमती है' (विष्णु प्रभाकर), 'पराये शहर

में' (निर्मल वर्मा), एक और ज़िन्दगी (मोहन राकेश) 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर), 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'शटल' (नरेन्द्र कोहली), 'वापसी' (उषा प्रियंवदा), 'टूटना' (राजेन्द्र यादव), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी) 'खोई हुई दिशाएँ' (कमलेश्वर) और 'रसप्रिया' (रेणु)।

मौजूदा सामाजिक जीवन की बहुमुखी विसंगतियाँ जैसे विभाजन की त्रासदी, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता, भ्रष्ट पूँजीवादी व्यवस्था, निरंकुश शासन, सत्ता की अवसरवादिता एवं स्वार्थ - पूर्ण नीति, मूल्य विघटन आदि को इस दौर की कहानियों में शब्दबद्ध किया गया। जैसे, 'मलबे का मालिक' (मोहन राकेश) 'शरणदाता', 'लेटर बक्स', 'मुस्लिम मुस्लिम भाई भाई' (अज्ञेय), 'मुक्ति' (देवेन्द्र इस्सर) 'सिक्का बदल गया' (कृष्णा सोबती) 'पानी और पुल' (महीप सिंह), 'मेरा वतन', 'अगम अथाह' (विष्णु प्रभाकर) 'परदेसी' (बद्दी उज्जमाँ) 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) संचित भूख' (नरेन्द्र कोहली)।

नीतिविहीन राजनीति गुण्डागर्दी का मंच बन गया है। राजनीति के मूल्यों में आये हुए विघटन के प्रति क्षोभ प्रकट करनेवाली कहानियाँ हैं - 'मौकापरस्त' (भीष्म साहनी) 'पेपरवेट' (गिरिराज किशोर) 'बयान' (कमलेश्वर), 'हंसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय) 'सज़ा' (मन्नू भण्डारी) 'गिरगिट' (प्रभाकर माचवे) 'खंडहर की आवाज़' (राम दरश मिश्र) 'जनतन्त्र' (गोविन्द मिश्र) 'जुलूस' (रमेश उपाध्याय) 'ज़ख्म' (इब्राहीम शरीफ) आदि।

आर्थिक थकाव से उपजे पारिवारिक विघटन तथा स्त्री पुरुष संबन्धों की गिरावट की ओर भी कहानी ने प्रतिशोध उठ खड़ा किया है। मसलन 'वापसी'

(उषा प्रियंवदा) 'शटल' (नरेन्द्र कोहली), 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'आसक्ति', 'रुकी हुई ज़िन्दगी', 'तलाश', (कमलेश्वर), 'टूटना', 'प्रतीक्षा' (राजेन्द्र यादव), 'एक और ज़िन्दगी', 'नये बादल' (मोहन राकेश), 'चिट्ठियों के बीच', 'फर्ज़' (रामदरश मिश्र), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'यही सच है' (मन्नू भण्डारी), 'ब्लाटिंग पेपर' (महीप सिंह), 'दमन चक्र' (सुधा अरोड़ा), 'महारानी' (स्वदेश दीपक), 'प्रयास' (दीप्ती खण्डेलवाल), 'अकेला गुलमोहर' (मेहरुन्नीसा परवेज़) 'लोग हाशिए पर' (धीरेन्द्र अस्थाना) और 'रात' (मिथिलेश्वर)।

महानगरीय सभ्यता की भयाक्रान्त स्थितियों से पीड़ित मन का चित्रण करने में 'खोई हुई दिशाएँ' (कमलेश्वर), 'पारदर्शक' (महीप सिंह), 'दिल्ली में मौत', 'भय' (शैलेश मटियानी) आदि कहानियाँ सफल हुई है। महानगरीय जीवन की एक और त्रासदी यह है कि व्यक्ति अपनी नामवाचक संज्ञा को खोकर जाति या पद से पहचान बना पाता है क्योंकि व्यक्ति को फुर्सत ही नहीं है। 'आज आदमी के सामने सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि न तो वह किसी का बन सका है और न किसी को अपना बना सका है। व्यक्ति संबन्धों का विघटन एक बहुत बड़े पैमाने पर हुआ है। साथ ही उसके मन में एक विचित्र प्रकार का भय समाया हुआ है।' (१)

४.२. कहानीः भिन्न आन्दोलनों के दौर में

साठोत्तरी कहानी या सातवें दशक की कहानी विभिन्न वादों से आक्रान्त दिखाई दे रही थी। एक ओर निषेधात्मक स्वर (अकहानी) है तो दूसरी ओर

---

(१) नई कहानीः संदर्भ और प्रकृति - देवीशंकर अवस्थी, पृ - ११३

सचेतनता (सचेतन) का। इन दोनों के साथ सहजता (सहज) भी कहानी का वाद बन गया। गंगा प्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, महीप सिंह, दूधनाथ, ज्ञानरंजन, से. रा. यात्री, इब्राहीम शरीफ आदि कहानीकारों ने इन आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। आठवें दशक में 'समान्तर' कहानी आन्दोलन (१९७१ में कमलेश्वर के नेतृत्व में) और 'सक्रिय' कहानी आन्दोलन (१९७८ में राकेश वत्स के द्वारा) चलाए गये। जिसकी वजह कथा रचना में अनेक संभावनाओं का जन्म हुआ। जितेन्द्र भाटिया, कमलेश्वर, अरुण मिश्र, आलमशाह खान, सुदीप केशव दूबे, जवाहर सिंह, कामतानाथ, सूर्यबाला, आशीष सिंहा, दिनेश पालीवाल, राकेश वत्स, वसन्त कुमार, अरुण मिश्र, मृदुला गर्ग, शीला रोहेकर, इब्राहीम शरीफ आदि की कहानियाँ समाजवाद की और उन्मुख हुई।

सत्तर तक आते-आते जनता के समक्ष आज़ादी, व्यवस्था व सत्ता की तस्वीर स्पष्ट हो चुकी थी। यानी कि आज़ादी का मुनाफा केवल धनी वर्गों तक ही सीमित है। अतः दूसरे उसकी खुशहाली में भागीदार नहीं हो सकेंगे। उत्पादन में मुख्य रूप से शिरकत होनेवाले किसानों एवं मज़दूरों को उन्ही वस्तुओं के फसल से अछूत रखा गया। सरकार सत्ता लिप्सा के मोहजाल में फँसकर पूँजी के अधीन रही। समूचे तन्त्र में भ्रष्टाचार का आँकड़ा दिखाई पड़ा। जिसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दखल अंदाज़ कर मानवीय भावनाओं को तिलांजलि दी। अतः आज़ादी की फज़ीहत ही चौतरफा दिखाई पड़ी। गंगा प्रसाद विमल के शब्दों में यह बात ज़ाहिर है 'अज़ादी का स्वप्न साकार होने के बाद हम दासता की जिन नई बेड़ियों में बन्धे उनका स्वरूप और अधिक भयानक प्रामाणिक हुआ'। [१]

---

(१) आधुनिक हिन्दी कहानी - गंगा प्रसाद विमल, पृ - ७०

सातवें दशक के आखिरी बेला में यहाँ नक्सलबाड़ी आन्दोलन ज़रूर दिखाई पड़ा दरअसल नक्सलवाद कोई समाजशास्त्रीय रहस्य नहीं है, न ही कोई राजनैतिक दुर्घटना या अस्वाभाविक अपवाद। यह वस्तुतः सच्चे जनतन्त्र और आज़ादी केलिए भारत की तलाश के रास्ते का मील का पत्थर है। हालाँकि यह कोई चीन से आयातित आन्दोलन नहीं था। इसकी जड़ें हमारे किसान आन्दोलनों में तथा भारतीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में मौजूद थी। 'पश्चिम बंगाल के उत्तरी छोर पर स्थित एक गुमनाम जगह नक्सलबाड़ी में १९६७ में किसानों के एक असफल विद्रोह ने वर्तमान नक्सल आन्दोलन को जन्म दिया, जिसे अब भारत का माओवादी आन्दोलन भी कहा जाता है।'(१) नक्सलबाड़ी की विशिष्टता इस बात में निहित थी कि उसने भूमि सुधार के सवाल को कृषि क्रान्ति की ऊँचाई तक पहूँचा दिया तथा कृषि क्रान्ति को भारतीय समाज और राज्य व्यवस्था के जनवादीकरण के आधार के बतौर पेश किया। अतः यह क्रान्तिकारी राजनैतिक आकांक्षा तथा उत्पीड़ित ग्रामीण - गरीबों की जुझारू दावेदारी ही नक्सलबाड़ी की आत्मा है। इस बुनियादी अन्तर्वस्तु का समर्थन करते हुए चारू मजूमदार के नेतृत्व में नक्सलबाड़ी किसानों ने अपने हक केलिए विद्रोह पहल किया था। अतएव इसी के प्रभावस्वरूप साहित्य में जनवादी आन्दोलन का आविर्भाव हुआ।

दिल्ली विश्वविद्यालय में सन् १९७७ में जनवादी विचार मंच की स्थापना हुई। अक्टूबर १९७८ में हुए आयोजन में 'जनवादी कहानी' पर दो लेख पढ़े गये - (i) असगर वजाहत के द्वारा - 'जनवादी कथा रचना की समस्याएँ' तथा (ii) चारू मिश्र और प्रदीप मांडव के ज़रिए 'जनवादी कहानियाँः स्वरूप

---

(१) सुमंत बनर्जी - 'नक्सलबाड़ी : अनथक विद्रोह', समयान्तर
- फरवरी २००८, पृ - २७

और समस्याएँ'। इन दो निबन्धों से ही जनवादी कहानी की रूपरेखा स्पष्ट हुई और इसका विकास १९८० के उपरान्त की कहानियों में पुर्णतः प्रकट हुआ। १९८२ में स्थापित 'जनवादी लेखक संघ' ने इस आन्दोलन की पुष्टि की। बाद में आये 'सक्रिय' तथा 'समकालीन' कहानी आन्दोलनों में जनवाद की प्रगतिशील जीवनदृष्टि का उत्तरोत्तर विकास हुआ। दरअसल जनवादी चेतना का संस्पर्श प्रेमचन्द की कहानियों में (विशेषकर 'कफन' व 'पूस की रात') में मिलता है। जनवादी कहानियों के मूल में इनसानियत को बरकरार रखने की प्रवृत्ति रही है। इसकी चेतना क्रान्तिधर्मी है। इसलिए वह समाज के किसी तबके के लोगों के दुःख दर्द तक सीमित न होकर तमाम शोषितों की दर्दनाक दास्तान है।

इस दशक की कहानियों के संबन्ध में डॉ. असग़र वजाहत का मत है -'ये कहानियाँ समाज और उसकी समस्याओं की जटिलता को, समकालीन जीवन की गत्यात्मकता को, आर्थिक, राजनीतिक शक्तियों के द्वन्द्व से जूझते आदमी की करुणा और उसकी आकांक्षा को ऐसिहासिक विकास क्रम के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण से परखती और सामने लाती है। उसमें न गाँव के प्रति कोई रुमानी झुकाव है न स्त्री - पुरुष सम्बन्धों के प्रति कोई विशेष आग्रह।'[१] चूँकि जनवादी कथाकार जानता है कि पूँजीवादी साम्राज्यवाद और सामन्तवाद की खात्मा केलिए जनसमुदाय को जागृत करना है। इस दौर की कहानियों के भाषा और शिल्प निहायत सीधा - सादा और सामान्य भाषा के मुहावरों से युक्त है। चारों ओर जो जीवन बिखरा हुआ है इसी का मसाला है। रमेश उपाध्याय ने सूचित किया है - 'जनवादी कहानी का मतलब है जनतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा तथा प्रतिष्ठा करनेवाली कहानी और यह काम केवल क्रान्ति या

---

(१) अंधेरे से - असगर वजाहत (भूमिका), पृ - ५

वर्ग संघर्ष वाली कहानी ही नहीं।'[१]

जनवादी कहानीकार अपने को किसी वाद के अन्तर्गत समेटना नहीं चाहते थे। हालाँकि उन्होंने प्रेमचन्द की विरासत से अपने को जोड़कर कहानी की नई व्याख्या करना चाहा। इसका समर्थन हेतु भारद्वाज के शब्दों में मिलते हैं - 'जनवादी कहानी ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है कि उसने हिन्दी कहानी की विकास - परम्परा को प्रेमचन्द से जोड़ते हुए रेखांकित कर हिन्दी कहानी की सच्ची परम्परा को समृद्ध किया है। अतः यह एक संकीर्ण आन्दोलन मात्र न होकर हिन्दी कहानी का एक व्यापक आन्दोलन है जिसकी जड़ें जीवन और इतिहास में हैं।'[२] इसप्रकार देखें तो जनवादी कहानी की परम्परा 'पूस की रात', 'कफन' (प्रेमचन्द) 'परदा' (यशपाल) 'बीच के लोग' (मार्कण्डेय) 'चीफ की दावत', 'चाचा मंगलसेन' (भीष्म साहनी), 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी' (अमरकान्त) 'कोसी का घटवार' (शेखर जोशी) 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर) आदि से होकर 'छंटा और बहिर्गमन' (ज्ञानरंजन) 'सुधीर घोषाल', 'लाल किले के बाज' (काशीनाथ सिंह), 'अम्मा कैसे कैसे', 'सूरज कब निकलेगा' (स्वयं प्रकाश) 'कल्पवृक्ष' 'देवीसिंह कौन' (रमेश उपाध्याय) 'सुबह सुबह' (हेतु भारद्वाज)। 'कत्ल की रात' (रमेश बतरा) 'राजा का चौक' (नमिता सिंह) 'सूरज लापता है' (धीरेन्द्र अस्थाना) 'तीस साल का सफरनामा' (संजीव) 'आलू की आँख' (राजेश जोशी), 'टेपचू', 'तिरिछ' व 'दरियाई घोड़ा' (उदय प्रकाश) 'खोखल' (पंकज बिष्ट) से आगे बढ़ती है।

---

(१) जनवादी कहानी: पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक - रमेश उपाध्याय, पृ - ३४२
(२) हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास - हेतु भारद्वाज, पृ - २२२

४.३. असग़र वजाहत की कहानियाँः सृजनगत परिवेश

आगे असग़र वजाहत की कहानियों में चित्रित सामाजिक विसंगतियों पर दृष्टि डालें। असग़र वजाहत ने अपनी कहानियों का सृजन समाज से संपृक्त होकर किया है। इनके अब तक कुल मिलाकर पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वे है - 'अन्धेरे से' (पंकज बिष्ट के सहयोग में) 'दिल्ली पहूँचना है', स्विमिंग पूल', 'सब कहाँ कुछ' और 'मैं हिन्दू हूँ'। इनमें कुल मिलाकर ६३ कहानियाँ संकलित हैं। १९७७ से वजाहतजी ने कथा लेखन शुरू किया था। परिवेशगत यथार्थ का ब्यौरा उनकी कहानियों में मिलते हैं। कहानी के क्षेत्र में मौजूद आन्दोलनों के प्रति उनका कहना है - 'प्रेमचन्द की कहानी परम्परा, जो मनोवैज्ञानिक कहानी के प्रति जैनेन्द्र और अज्ञेय के विशेष आकर्षण के कारण अवरुद्ध हुई थी, वह 'नई कहानी' में सामूहिकतावाद के विरोध के नाम पर टूट गई, और फिर साठोत्तरी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी आदि कहानी आन्दोलनों ने कहानी को इतना विकृत कर दिया कि उसका चेहरा पहचानना ही कठिन हो गया'।[(१)]

उपर्युक्त वक्तव्य से यह बात साफ ज़ाहिर होती है कि वजाहतजी किसी भी आन्दोलन के तहत कहानी लिखना नहीं चाहते थे। बल्कि उन्होंने अपने चारों ओर जो देखा, जो भोगा, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अपनी कलम चलाई। इसलिए उनकी कहानियों में जनवादी चेतना की गुंजाइश वाकई मिलती है। इसका यह अर्थ - कदापि नहीं कि उन्होंने जनवादी कहानियाँ लिखने की शर्त रखी। हालाँकि इनकी कहानियाँ लगातार जनवादी चेतना की ओर अग्रसर हुई। बेशक 'रचनाकार युगीन परिस्थितियों से असंपृक्त होकर सृजनरत नहीं रह

---

(१) अंधेरे से - असग़र वजाहत (भूमिका), पृ - ४

सकता। अतः राजेन्द्र यादव के शब्दों में 'रचनाकार अपनी सर्जनात्मक दृष्टि के कारण युग के मर्म तक पहूँच जाता है।' [१]

जब असगर वजाहत ने कथा लेखन प्रारम्भ किया तब भारत वर्ष में आपात् काल का आतंक फैला था। उन्नीस सौ चौहत्तर से पचहत्तर तक विभिन्न राज्यों में शासन के विरुद्ध अनेक आन्दोलन हुए। समूचे मुल्क में हड़तालों और आन्दोलनों ने उग्ररूप धारण कर लिया। तत्फल सत्ता ने देश पर आपात् स्थिति लाद दी। भारतीय राजनीति के इस कालखण्ड ने देश को सर्वाधिक क्षति पहूँचायी। अतएव जिस देश में जनता भूख, गरीबी आदि से पीड़ित थी, उसी देश में मात्र अपनी कुर्सी को बचाये रखने केलिए आपात् स्थिति की घोषणा की थी। वजाहत जैसे लेखकों की हमदर्दी हमेशा देश की भूखी और गरीब जनता के प्रति रही। राजनीति ओर राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को जब एक सत्ता लोलुप व्यक्ति ने अपना दास बना दिया और आम आदमी को मानवीय क्रूरता में जकड़ दिया तब वजाहत जैसे लेखक कभी चुपी नहीं साध सकते थे। अतः उन्होंने आपात्काल की यंत्रणाओं के खिलाफ़ भी अपनी कलम चलाई है।

४.४. असग़र वजाहत की कहानियाँः वर्गीकरण

असग़र वजाहत के अपनी कहानियों का वस्तु चयन केलिए समाज के भिन्न भिन्न पहलुओं को आधार बनाया है। इस दृष्टि से उनकी समूची कहानियों को भिन्न - भिन्न खेमों में रखा जा सकता है।

---

(१) कहानी : स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव, पृ - ७५

(१) फिरकापरस्ती के खिलाफ़ आवाज़ उठाती कहानियाँ।

(२) गंदी और गलीज़ राजनीति से जूझती कहानियाँ।

(३) भूमण्डलीकरण की साजिश का पर्दाफाश करनेवाली कहानियाँ।

(४) नारी की बेबसी की अभिव्यक्ति करने वाली कहानियाँ।

(५) अन्य सामाजिक समस्याओं से जुड़ी कहानियाँ।

(६) लघु कहानियाँ।

४.४.१. फिरकापरस्ती के विपक्ष में

असग़र वजाहत ने वाकई ईमानदारी के साथ सामाजिक अन्तर्विरोधों एवं विद्रूपताओं को अपनी कहानियों में उकेरा है। समकालीन समस्याओं में उनके मन को बेहद दुख पहुँचाने वाली समस्या साम्प्रदायिकता की है। लिहाज़ा उनकी कृतियों में चाहे नाटक हो, उपन्यास हो या कहानी, साम्प्रदायिक वैषम्य मुख्य कैनवास बना। दरअसल साम्प्रदायिकता समाज में वर्ग जाति के आधार पर निर्मित शक्ति संरचना और वर्ग विषमता के मुद्दों से ध्यान भटकनेवाली डिवाइस है। भारतवर्ष मूलतः एक धर्मप्राण और आध्यात्मिक संस्कृतिवाला देश है। धार्मिकता इसकी बुनियाद है। लेकिन हुआ यह है कि धर्म - जाति सम्प्रदाय के लेबल लगाकर मानव जाति का बंटवारा किया गया। इतिहास गवाह है, देश की राजनीतिक पार्टियाँ कभी धर्म के नाम पर, कभी जाति के नाम पर वोट बटोरती आयी हैं। सत्ता के भूखे राजनैतिक दल गिटगिट की तरह रंग बदलते हुए तमाम जातियों के हाथ में सांप्रदायिक (बिरादरी) कट्टरता रूपी लोलीपोप थमा देते हैं ताकि उनका वोट

बैंक पक्का हो सके। इससे देश को ज़रूर बचाना है क्योंकि 'धर्म जब भी सत्ता के कंधों पर सवार होकर आगे बढ़ा है तो इसने लोगों को बांटा है, काटा है, मारा है, औरतों, बच्चों और बूढ़ों पर जुल्म ढ़ाए है।' [१] इसकी खौफनाक मिसालें हमें गुजरात में देखने को मिलती हैं। 'गुजरात में २७ फरवरी को साबरमती एक्सप्रेस में यात्रा कर रहे यात्रियों को गोधरा के निकट ज़िन्दा जला देने की घटना की तथा उसके बाद हुई संघठित नरसंहार की कड़ी'[२] टूटी नहीं; आज भी ज़ारी है। अतः अहिंसा और शान्ति के पुजारी महात्मा गांधी की जन्मभूमि गुजरात को फिरकापरस्त ताकतें एक प्रयोगशाला के तौर पर इस्तेमाल कर रही है। आतंकवाद सांप्रदायिकता का एक भयावह संस्करण है। इसको जन्म देनेवाले क्षुद्र चन्द स्वार्थी राजनेता ही है, जिनकी बदौलत पंजाब ही नहीं, आज पूरा देश खामियाजा भुगत रहा हैं।

वजाहत ने मौजूदा समाज की सबसे दहशत भरे घोर सांप्रदायिकता के मसले को अपनी कहानियों में उभारा है। हालाँकि उन्होंने कहीं भी गुजरात प्रसंग को प्रत्यक्ष रूप से नहीं उठाया है। लेकिन परोक्षतः गुजरात, रामजन्मभूमि, बाबरी मस्जिद व गोदरा वाले प्रसंगों को समीकृत किया है। मात्र उन समस्याओं को पेश करना उनका उद्देश्य न रहा। बल्कि उन मसलों के तह में जाकर उसके मूल कारणों को ढूंढ निकालना भी उनका मकसद रहा है। दिल्ली के एक - एक प्रसंग को वे अपनी कहानियों में ज़बरदस्त इसलिए जोड़ते हैं कि वही उनकी प्रयोगशाला रही। उनके 'सब कहाँ, कुछ........ 'मैं हिन्दू हूँ' संग्रहों की कमोबेश कहानियाँ इस लिहाज़ से चर्चित रही हैं। मसलन, 'ज़ख्म', 'गुरु - चेला संवाद', 'मैं हिन्दू हूँ' 'तेरह सौ साल का बेबी कैमिल,' 'शीशों का मसीहा कोई नहीं', 'शाह आलम कैंप की रूहें' 'मेरे मौला' 'सारी तालीमात', आदि।

(१) साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे - रमणिका गुप्ता, पृ - ७६

(२) रमेश उपाध्याय - 'संपादकीय' कथन, अप्रैल - जून २००२, पृ - ७

४.४.१.१. ज़ख्म

उन्होंने 'ज़ख्म' कहानी में वाकई ऐसे मुद्दे को उठाया है जो काबिलेगौर हैं। इसमें हिन्दू मुसलमान के सांप्रदायिक दंगों में भारत के राजनेता व प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका का नग्न चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में बखूबी ढ़ंग से किया है। बड़े नेता, अफ्सर व अख़बार सांप्रदायिक दंगों की रोकथाम का प्रयत्न करते हुए अवश्य दिखाई देते हैं, मगर यथास्थिति इसके विपरीत हैं। दरअसल वे सांप्रदायिकता की आग में ही अपने को सुरक्षित समझते हैं, चूँकि जब तक व्यक्ति इनमें उलझा रहेगा तब तक उनकी कमज़ोरियों व गलतियों पर लोगों का ध्यान नहीं जाएगा और ऐसी परिस्थितियों में वे अपना उल्लू सीधा करते रहेंगे।

कहानी की शुरुआत में ही भारत के सामाजिक - राजनीतिक जीवन में दंगों की संभावना व अनुपेक्षणीयता का व्यंग्यात्मक चित्रण मिलता है। ऐसा महसूस होता है कि बदलते हुए मौसमों की फेहरिस्त में सांप्रदायिक दंगों को भी शामिल किया गया हो। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे मौसमों के आने - जाने के बारे में जैसे स्पष्ट अनुमान लगाए जा सकते है वैसे अनुमान सांप्रदायिक दंगों के मामले में नहीं लगते। फिर भी पूरा दिल्ली शहर यह मानने लगा है कि सांप्रदायिक दंगे मौसमों की तरह निश्चित रूप से आता है। गाहे - बगाहे ये कभी भी भड़क उठते हैं और इसके बाद के परिणाम समूचे समाज को सहने पड़ते हैं। हालाँकि सांप्रदायिक दंगों की खबरें सहज - साधारण बना दी गई है। बेशक सांप्रदायिक शक्तियों की गिरफ्त में भारत की राजनीति के आने का ही दुष्परिणाम था।

आलोच्य कहानी में सांप्रदायिक दंगों के मूल सबबों की छानबीन की सार्थक कोशिश हुई है। सांप्रदायिकता के बीज बड़े बड़े लोगों द्वारा राजनैतिक हथियार के रूप में रोपे जाते हैं, जिसके शिकार गरीब व असहाय जन होते हैं। अतः सांप्रदायिक दंगों को भड़काकर राजनीतिक शक्ति और धर्म के ठेकेदार पृथक हट जाते हैं। वस्तुतः राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति केलिए धर्म को हथियार बना लिया गया है। हर कहीं वोट की राजनीति का ही बोलबाला है। पहले मुसलमानों का वोट बैंक की तरह इस्तेमाल हुआ, फिर हिन्दुओं को वोट बैंक बनाने की कोशिशें शुरू हो गई। बहरहाल वोट बैंक की इस राजनीति से देश कमज़ोर होता जा रहा है। इसकी फिक्र कोई नहीं करना चाहता। मात्र अपने राजनीतिक औकात मज़बूत करना ही सबका अभीष्ट है। भारत की यही त्रासदी है कि वोट की राजनीति ने उसे मानसिक स्तर से अत्यधिक भीरू बना दिया है। यह बात तो जगजाहिर है कि नेतागण अपना वजूद बनाये रखने हेतु मज़हब के नाम पर वोट माँगते है तथा नेतागिरी करते हैं। कहानीकार के लफ्ज़ों में - 'देखो ज़रा सिर्फ तसव्वुर करो कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओं, मुसलमानों के बीच कोई झगड़ा नहीं है। कोई बाबरी मस्जिद नहीं है। कोई राम जन्मभूमि नही है। सब प्यार से रहते हैं, तो भाई ऐसी हालत में मुस्लिम लीग या आर. एस. एस. के नेताओं के पास कौन जाएगा? उनका तो वजूद ही खत्म हो जाएगा'। (१)

गौरतलब है कि फिरकापरस्ती से उन लोगों को भी फायदा है जो इस देश की सरकार चला रहे हैं। सर्वदा वे जनता में सांप्रदायिक हलचल पैदा कर उनकी ज़बान बन्द कर देती हैं ताकि जनता अपने हक केलिए उनसे मत लड़े।

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असगर वजाहत, पृ - ११

फिर ऐसे दंगों से फायदा उन लोगों को भी है जिनका कारोबार उसकी वजह से तरक्की करता है। कहानीकार का बयान इसकी मिसाल है - 'अगर तुम्हारे दो पड़ोसी आपस में लड़ रहे हैं, एक दूसरे के पक्के दुश्मन हैं, तो तुम्हें उन दोनें से कोई खतरा नहीं हो सकता...। उसी तरह हिन्दू और मुसलमान आपस में ही लड़ते रहे तो सरकार से क्या लड़ेंगे?'[१] मिसाल के तौर पर कहानीकार ने अलीगढ़ और भिवण्ड़ी के फसाद का संकेत किया है। अतः बात साफ है कि इन दंगों और सांप्रदायिक संकीर्णता से आम जनता का कभी लाभ नहीं हो सकता। वह तो एक जुनून है, जिसे चन्द लोग अपनी खुदगर्ज़ी केलिए कौम को पिलाते हैं। साथ ही वजाहत की साफ़ समझ है कि देश की समुचित प्रगति में इन दंगे - फिसादों से बेहद क्षति पहूँची है।

सांप्रदायिकता ने तमाम मानवीय मूल्यों को ताक पर धर दिया है। ऐसे गरल वातावरण में भी कहानीकार मानवीय मूल्यों की उपयोगिता, गुणवत्ता और प्रभावात्मकता के प्रति पूर्णतः आस्थावान है। साथ ही वे धर्म और संप्रदाय के ठेकेदारों पर तो बिलकुल व्यंग्य प्रहार करता ही है। सतही तौर पर वे सब फिरकापरस्ती के खिलाफ है, लेकिन मौका मिलते की फिरकाबंदी ही करते हैं 'तुम्हें मालूम है दंगों के बाद सबसे पहले हमारे मोहल्ले में कौन आए थे? तबलीगी जमात और जमाते - इस्लामी के लोग उन्होंने लागों को आटा दाल, चावल बाँटा था, उन्होंने दवाएँ भी दी थीं। उन्होंने कर्फ्यू पास ही बनवाये थे।'[२] और एक मज़े की बात यह है कि इन लोगों के पास इतनी ताकत नहीं है कि दंगों के वक्त बस्तियों में जाएँ। कितनी शर्म और हैरत की बात है कि राजनीतिक लाभ व स्वार्थपूर्ति हेतु नेता अपनी आत्मा की आवाज़

(१) सब कहाँ, कुछ - असगर वजाहत, पृ - १२
(२) वही, पृ - १९

को अनसुना करके बड़ी बेहयायी से धर्म की छीछलेदारी करने से किंचित भी नहीं हिचहिचाते। उसे जबरन साम्प्रदायिकता की संकुचित दायरे में डाल देते हैं।

वर्तमान संदर्भ में सांप्रदायिक उन्माद को बढ़ाने में पत्र - पत्रिकाओं की भी अहम भूमिका रही है। अपनी ऐंचातानी की वजह से पत्रकार सांप्रदायिक शक्तियों के लिहाज़ से तनिक भी निजात नहीं हुए हैं। खास तौर पर वे भी सांप्रदायिकता बनाम छद्म निरपेक्षता का सहारा लेते हैं। उसके अनुकूल की खबरें छापकर जनमानस में अपनेलिए गिरोह बनाते हैं। मसलन उर्दु के रिसालों में मुसलमानों के साथ होनेवाले ज़्यादतियों को बहुत ही भयावहता और करुण ढंग से पेश किया गया है। जिसने लोगों को उत्तेजित कर मरने - मारने या सिर फोड़ लेने पर मज़बूर किया गया। यह मात्र सांप्रदायिक पार्टियों के अख़बार की बात नहीं रही। मगर उदार तथा धर्म - निरपेक्ष - अख़बार भी सांप्रदायिकता फैलाने में कम व्यस्त नहीं है। नौबत यहाँ तक आ गई है कि अखबारों की छटपट बिक्री केलिए उनमें दंगों की भयानक दर्दनाक और बढ़ा चढ़ाकर पेश की गई तस्वीरों का ज़ोरदार इस्तेमाल होता है। कहानीकार की खुलासा - 'जहाँ तक मैं समझता हूँ ये अख़बार बिकते ही इसलिए है कि इनमें दंगों की भयानक दर्दनाक और बढ़ा - चढ़ाकर पेश की गई तस्वीरें होती हैं। अगर दंगे न होंगे तो ये अख़बार कितने बिकेंगे।'[१] ज़ाहिर है समाचार पत्र आदि गैर प्रजातान्त्रिक तरीके से काम करते हैं।

प्रत्येक सांप्रदायिक दंगे के काफी अन्तराल के बाद सांप्रदायिक सद्भावना स्थापित करने के बहाने सम्मेलन व जाँच समितियाँ खड़ा करने की निरर्थक सरकारी योजनाओं पर भी कहानीकार ने करारी चोट की है। उनके मुताबिक

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ - १३ १४

कागज़ी योजनाएँ विचारधारा में परिवर्तन लाने में सक्षम नहीं है। मन बदलना है तो दिलों - दिमाग से सोचने - विचारने की ज़रूरत है कि सांप्रदायिकता भारतीय संस्कृति केलिए एक विजातीय शब्द है। वस्तुतः दंगों की रोकथाम केलिए कोई स्पष्ट नीति लागू करने में सरकार कामयाब नहीं हुई है। अतः सरकार के सांप्रदायिक राजनैतिक उद्देश्य यहाँ बेपर्द हुए हैं। कहानीकार की साफ़गोई इसका निदर्शन है - 'दंगे पुलिस पी.ए.सी. प्रशासन नहीं रोक सकता। दंगे सांप्रदायिक पार्टियाँ भी नहीं रोक सकती, क्योंकि वे तो दंगों पर ही जीवित है।'[१] कहानीकार ने यह भी जोड़ा है कि सुविधाभोगी कायर अवसरवादी लेखक, पत्रकार, अध्यापक बुद्धिजीवी वर्ग ने इस देश और उसकी जनता के साथ बड़ा खिलवाड़ किया है।

'ज़ख्म' कहानी में दिल्ली के पहाड गंज व कस्साबपुरा में हुए सांप्रदायिक दंगों का संकेत है। वाचक के मित्र मुख्तार को इन दंगों से गहरी चोट पहूँची थी जिस के ज़ख्म से अब भी ताज़ा खून रिस रहा था। बेशक, ये दंगे समाज के सिर पर होने वाले ज़ख्म है 'आठ दिन कर्फ्यू चला था और जब वह डॉक्टर के पास गया था तो डॉक्टर ने उसे बताया था कि अगर वह फौरन सिर धो लेता तो इतने गहरे ज़ख्म न होते'[२]। मानो सिर धो लेने से साम्प्रदायिक भेदभाव के ज़ख्म धुल जाऐंगे। ज़ाहिर है प्रस्तुत कहानी समाज में बढ़ती फिरकापरस्ती की भावना की बड़ी सशक्त मिसाल है।

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ - १४
(२) वही, पृ - १६

४.४.१.२. मैं हिन्दू हूँ

उनकी 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी सांप्रदायिक दंगों की कहीं दुरवस्था का उद्घाटन करती है तो उसके आदी होनेवाले आम जनों की मानसिकता का भी चित्रण करती है। आजकल सांप्रदायिक दंगों के पीछे छिपे दर्शन, रणनीति, कार्य पद्धति और गति में निहायत बदलाव आया है। अर्थात् आज से करीब पचास साठ साल पहले न तो लोगों को ज़िन्दा जलाया जाता था और न पूरी की पूरी बस्तियाँ वीरान की जाती थी। उस ज़माने में प्रधानमंत्रियों, गृहमंत्रियों और मुख्यमंत्रियों का आशीर्वाद भी दंगाइयों को नहीं मिलता था। यह काम छोटे - मोटे स्थानीय नेता अपना स्थानीय और क्षुद्र किस्म का स्वार्थ पूरा करने केलिए करते थे। व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता, ज़मीन पर कब्जा करना, चुंगी के चुनाव में हिन्दू या मुस्लिम वोट समेट लेना वगैरा, उद्देश्य हुआ करते थे। अब तो सांप्रदायिक दंगे उत्तर भारत पर (विशेष कर दिल्ली दरबार पर) कब्जा जमाने का साधन बन गए हैं। चूँकि संसार के विशालतम लोकतन्त्र की नाक में वही नकेल डाल सकता है जो सांप्रदायिक हिंसा और घृणा पर खून की नदियाँ बहा सकता हो।

शर्मनाक है कि देश को दहशतज़दा करनेवाले यह संप्रदायवाद हमारे जीवन का अभिन्न पहलू बन गया है और यह कभी भी भड़क उठता है। ज़्यादातर लोग सामाजिक राजनीतिक बचाव हेतु धर्मांतरण करना चाहते हैं। कहीं दंगों के वक्त जबरन् धर्मांतरण की मुहिम भी छेड़ी गई थी। एक प्रकार से दहशत भरा माहौल चौतरफा छाया हुआ था। ऐसे ही एक खौफ़नाक माहौल का चित्रण कहानीकार ने यहाँ किया है। उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में बताया है

कि दिल्ली में दंगों की बारात खामखाह निकलती है। बेकसूर जनता ही आखिरकार इन दंगों में शहीद होती थी। ऐसे में लोगों के मन में भय, और आशंका हमेशा रहती थी। अतः 'ऐसे धर्म में कौन रहना पसंद करेगा जिसमें अपने धर्म भाई - बहनों के साथ जानवरों से भी बदत्तर सलूक किया जाता हो ?'[१]

'मैं हिन्दू हूँ' कहानी में सांप्रदायिक खौफनाक माहौल से भयाक्रान्त धर्मांतरण की लालसा प्रकट करनेवाले सैफू नामक नासमझ बालक का पेशकश है जो कि एकतरफा अनाथ भी है। वाचक ने सैफू के चरित्र में बेवकूफी तथा दीवानेपन की विशेषता बताकर स्थिति को सहज - साधारण बताया है। लेकिन कहानी में सैफू तो मात्र एक मिसाल है, उसके जैसे अनपढ़, सीधे लोग ऐसे दंगों की भयावहता से पागलपन की हद तक भयभीत एवं आतंकित हो जाते हैं। इसलिए स्थिति गंभीर है। कहानी की शुरुआत ही उसकी भयानक चीख़ से होती है। सैफू वाचक के अब्बाजान के सौतेले भाई की सबसे छोटी औलाद है। कहानी का परिवेश संप्रदायवादियों के पुश्तैनी अड्डा दिल्ली दरबार है। दंगों के दौरान कर्फ्यू लगा दिया था। इसके संबन्ध में वाचक का व्यंग्य है 'प्रशासन इतना संवेदनशील था कि कर्फ्यू लगा दिया था'।[२] कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि इन दंगों के मूल में कोई स्पष्ट नीति नहीं होती या कोई खास वजह। शहर में दंगा वैसे ही शुरू हुआ था जैसे हुआ करता था। यानी मस्जिद में किसी को एक पोटली मिली थी जिसमें किसी किस्म का गोश्त था और गोश्त को देखे बगैर ये तय कर लिया गया था कि चूँकि वह मस्जिद में फेंका गया गोश्त है इसलिए सुअर के गोश्त के सिवाय और किसी जानवर का हो ही नहीं सकता। अतएव इसकी प्रतिक्रिया में मुगल टोले में गाय काट

(१) आनन्द स्वरूप 'धर्म परिवर्तन क्यों?' हंस, मार्च २००३, पृ - ५६
(२) मैं हिन्दू हूँ - असगर वजाहत, पृ - ३७

दी गई थी और दंगा भड़क उठा था। कुछ दूकानें जली थी और ज़्यादातर लूटी गई थी। चाकू - छुरी की वारदातों में क़रीब सात-आठ लोग मरे थे। आजकल वाली बात न थी। हज़ारों लोगों के मारे जाने के बाद भी मुख्यमंत्री मूँछों पर ताव देकर घूमता और कहता कि जो कुछ हुआ सही हुआ। ज़ाहिर है सरकार आज चुनाव की घोषणा करके आतंक को भजाने पर उतारू है। यही नहीं बचपन को भी चाकू-छुरी की भाषा की ट्रेनिंग दी जा रही थी। दंगा मोहल्ले के लड़कों केलिए एक अजीब तरह के उत्साह दिखाने का मौसम हुआ करता था। चूँकि उन्हें रात का पहरा छतों पर करना था। छतों की दुनिया पर मोहल्ले के लड़कों का राज हुआ करता था। लाठी, डंडे, बल्लम और ईटों के ढ़ेर इधर उधर लगाए गए थे। दो - चार लड़कों के पास देसी कट्टे और ज़्यादातर के पाक चाकू थे। वे छतों पर बैठकर दंगों की ताज़ी ख़बरों पर तब्सिरा किया करते थे। या हिन्दुओं को गालियाँ दिया करते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चों की दुनिया भी एक प्रकार से सांप्रदायिक कट्टरपन की मानसिकता से गुज़रती थी। बचपना को भी अफ़वाहों की दुनिया ने घेर लिया था।

बच्चे, सैफू से छेड़छाड़ करने में माहिर थे। रात में वे उसे डरावने व हिंसक किस्से सुनाते थे। उसके मन में यह विश्वास उँडेल देना चाहते थे कि हिन्दू बहुत अत्याचारी होते हैं। ऐसे में उसके मन में यह धारणा रूढ़मूल बनती है कि मुसलमान बनना अपराध है। हिन्दू देश में उसकी जान सर्वदा खतरे में है। या वे गैर - हिन्दुओं को नेस्तनाबूद करने पर तुले हैं। लिहाज़ा वह अपनी जान बचाने हेतु धर्म परिवर्तन की बात वाचक से करता है 'बड़े भाई, मैं हिन्दू हो जाऊँ?'(१)

(१) मैं हिन्दू हूँ - असगर वजाहत, पृ - ३९

कहानीकार ने सैफू की भयभीत मानसिकता को बहुत ही बेबाक ढ़ंग से पेश किया है। कहानीकार ने एक तरफा इस बात को भी उजागर करने का प्रयत्न किया है कि सारे के सारे हंगामे वोट की राजनीति का ही नतीजा है। अतः सत्ता में कब्जे की नीयत से जनता को वोट बैंक के रूप में आंकनेवाली शक्तियों नें खुलकर नंगा नाच शुरू कर दिया है। ऐसे में संप्रदायवाद पर धार्मिकता का मुखौटा, भारतीय संस्कृति के गौरव का रंग चढ़ाकर, उसे मान - प्रतिष्ठा और शूरवीरता का प्रतीक बनाने की चेष्टा ज़ारी है। कहानीकार की साफगोई 'ये सब गुण्ड़े - बदमाशों का काम है........ न हिन्दू लड़ते हैं और न मुसलमान, गुंड़े लड़ते हैं।' [१] यहाँ विचारणीय बात यह है कि इन दंगेवाले बदमाशों को मिला भी लिया जाय तो बहुत कम संख्या ही होंगे। यह तो वही हुआ कि दस हज़ार अंग्रेज़ करोड़ हिन्दुस्तानियों पर हुकूमत किया करते थे और सारा निज़ाम उनके तहत चलता रहता था। यानी कि ये काले नेता गोरे नेता से कुछ कम नहीं है। इन दंगे - फिसादों से फायदा चुंगी के इलेक्शन लड़नेवालों को हैं - 'जहाँ पोलीटीशियन (राजनेता) अपनी गद्धियों केलिए दंगा करते हैं वहाँ और क्या हो सकता है?' [२]

ज़ाहिर है कहानीकार ने बहुत ही सजीव ढंग से सांप्रदायिक राजनीति की ज़्यादतियों का पर्दाफाश किया है।

४.४.१.३. तेरह सौ साल का बेबी कैमिल

अगली कहानी 'तेरह सौ साल का बेबी कैमिल' भी इस संदर्भ में विशेष चर्चित है। कहानी उत्तर भारत के एक शहर की है जो मिनी पाकिस्तान, नाम

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असगर वजाहत, पृ - ४०
(२) वही, पृ - ४०

से जाना जाता है। चूँकि शहर की सौ-फीसदी मुस्लिम आबादी है। पाँच मस्जिदों के लाउडस्पीकर पूरे इलाके को हिला कर रख दिया है। कट्टर संप्रदायवादियों का आकड़ा है। मसलन पंद्रह बीस साल पहले यहाँ पाकिस्तान के जीतने और भारत के हारने की खुशी में मिठाईयाँ बाँटी गयी थी। हालही में ओसामा बिन लादन के पोस्टर बिके थे।

ओम प्रकाश शर्मा उच्च गोत्र का पंडित है। उसने इतिहास में एम.ए. किया है। वे मुसलमान कॉलिज में बीस साल से पढ़ा रहे हैं। सबकी धारणा थी कि इतने साल मुसलमानो माहौल में जीने से शर्माजी स्वयं मुसलमान बन जाएँगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। छुट्टियों में वे पत्नी सुषमा और बच्चे लिली, कबीर के साथ गाँव जाया करते थे। शर्मा शुद्ध हिन्दू है। उनकेलिए नौकरी बड़ी चीज़ है। फिर भी जनेऊ कम बड़ी चीज़ भी नहीं। वे कट्टर हिन्दू भी नहीं है। वैसे तो आर. एस. एस में उनकी कोई रुचि भी नहीं है। हालाँकि मज़हबी जुनून के शिकार होकर अपने को मांस खिलवाने की साजिश को भी शर्माजी ने तोड़ डाला। माँस न खाने के पीछे धार्मिक नहीं अपनी व्यक्तिगत ही कारण है क्योंकि वे उनका आदी नहीं था।

शर्माजी कभी भी वहाँ के पागल मुसलमानों की ज़्यादतियों से हैरान नहीं होता था। वहाँ के मुसलमान एक हिन्दू की हाज़िरी बर्दाश्त नहीं करते थे। इसलिए वे शर्माजी को गुरु गोवलकर का प्रतिनिधि, या बाबरी मस्जिद के संहारी मानते थे। लेकिन कालिज के नेक मुसलमान अतिया अज़ीज, डॉ. शुजाअत और ताहिर हुसैन उनका सर्वदा साथ देते थे। लेकिन कहानी का उद्देश्य शर्माजी का परिचय देना न होकर, धर्म की गलत व्याख्या करने या धर्म

के नाम पर अपनी ऐंचातानी की पूर्ति करनेवाले ख्वाजा अब्दुल मजीद हक्कानी को बेपर्द करना है। इसकेलिए शर्माजी का संकेत एक सहारा है।

हक्कानी कामर्स के अध्यापक थे। वे अपने आप में बहुत बड़ी संस्था थे। उम्र लगभग पैंतीस - पचास के बीच था। मुसलमान विधवा औरतों का पुनः निकाह करनेवाले संगठन के वे अध्यक्ष थे। 'हक' नामक पत्रिका के संपादक भी थे। इसके अतिरिक्त 'उस दुनिया' नामक एक संगठन भी चलाते थे, जिसका उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था। वे बड़े ज़ोर शोर से धार्मिक आयोजन करते थे हालाँकि कोई धार्मिक उन्हें नहीं पसन्द करते थे। ईद बकरीद या विशेष धार्मिक अवसरों पर वे अरबी लिबास पहन लेते थे। कन्धे पर हमेशा चौखाने का अरबी रुमाल डाले रहते थे। घर से बाहर निकलते वक्त हाथ में तस्बीह रहती थी। मतलब यह है कि वे अपने को विश्व इस्लामी बिरादरी का अंग मानते थे। वे अपने को बड़ा इस्लाम प्रचारक मानते थे। लेकिन उन्हें विश्व की भी पर्याप्त जानकारी नहीं थी। लेकिन तब्लीगी जमात के लोग यह साफ कहते थे कि हक्कानी से उनका कोई तालूक नहीं।

हक्कानी के ज़रिए कहानीकार ने ऐसे मुनाफाखोरों का परिचय कराया है जो अपनी खुदगर्ज़ी केलिए धर्म के उसूलों को तोड़ - मरोड़ते हैं। दरअसल हक्कानी धर्म की आड़ में ऐशो - आराम की ज़िन्दगी बिताते थे। इस्लाम धर्म में पुरुषों केलिए कई छूट है, वे उन सबका लाभ चूसते थे। उन्होंने दूसरी शादी करने के बाद अपनी पहली पत्नी को मारपीट कर घर से निकाल दिया था।

चौदह साल का उनका लड़का डर के मारे दिल्ली भाग गया। वे हमेशा गर्व के साथ कहा करते थे कि इस्लाम मेहनत करने को बड़ा ऊँचा दर्जा देता है। उन्होंने अपनी ग्यारह साल की लड़की की शादी किसी पचास साल के बूढ़े के साथ करवा दिया और अनमेल विवाह की अनैतिक प्रथा को भी जारी रखा।

अपनी दूसरी पत्नी को वे इतना सुरक्षित रखते थे कि बाहर जाते वक्त किचन में बन्द कर ताला लगाते थे। अपनी बुरी करनी को वे धार्मिक उसूलों की आड़ में दफनाते थे। उनके अनुसार औरतें खेतियाँ हैं। इसलिए उनकी देखभाल सही सलामत करना है - 'तो जनाव जिस तरह हम अपने खेत की देखभाल और रखवाली करते हैं उसी तरह मैं.....'(१) गौरतलब है कि हक्कानी एक तो पाखण्ड़ करते थे, और ऊपर से इस्लाम को ढ़ाल बनाते थे। यानी कि इस्लाम धर्म को अपनी दिलचस्पी के अनुरूप ढ़ालते थे। जहाँ भी वे धर्म प्रचार केलिए जाते थे, वहाँ से नयी दुलहिन लाते थे। हर साल बकरीद पर ऊँटों की कुर्बानी करने में उन्हें बड़ा शौक था। कहानी का शीर्षक बेबी कैमिल ऊँट से संबन्धित है जिसकी कुर्बानी की वजह शर्माजी की बेटी की बुरी हालत का संकेत है।

यह ज़माना धर्म की आड़ में मनमानी करनेवाले झूठे धर्मावलंबियों का है। समाज में इनकी गहरी पैठ है। हक्कानी के चरित्र को कहानीकार ने बहुत निकट से देखा है। हक्कानी के चरित्र का यह ख़ोख़लापन धर्म को कठपुतली बनानेवाले धार्मिक कट्टरपन्तों की याद दिलाता है। ऐसे पात्र भारत जैसे धर्मावलंबी देश केलिए ख़तरनाक है। ये जबरन धर्म की छीछलेदारी करते हैं।

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १३८

४.४.१.४. सारी तालीमात

'सारी तालीमात' कहानी लघु उद्योगों में, धर्म के नाम पर गरीब लोगों के शोषण की है। कासिमपुरा शहर में हर तीन-चार साल के पश्चात् फसाद हो जाता है। अफवाहों का बाज़ार भी गर्म हो जाता है। पुलीस भी दंगों की रोकथाम केलिए कुछ नहीं करती। लिहाज़ा मोहल्ले में दहशत भरा वातावरण कायम है। प्रत्येक सांप्रदायिक दंगे के बाद हिन्दुओं के मोहल्ले के आसपास रहने वाले मुसलमान किसी मुसलमानी इलाके की ओर जाते हैं और मुसलमानों की बस्ती के पास रहनेवाले हिन्दू रस्तोगीगंज या रघुवीरपुरा जैसे हिन्दू शहर की ओर भटकते हैं। हालाँकि मस्जिद में नमाज़ी अधिक आने लगते हैं। इस प्रकार वह छोटा सा शहर दो तरफ बाँटा हुआ है एक हिन्दू इलाका और दूसरा मुसलमानो इलाका।

शहर के इस हिस्से में सौफीसदी मुसलमान रहते हैं। इन जगहों पर शायद ही कोई हिन्दू आता है। आने की तो बात नहीं है तो रहने का क्या सवाल? यानी कि पूरे मोहल्ले में मुसलमानों का ही कब्जा है। वहाँ की मुनिसिपालिटी में कोई हिन्दू उम्मीदवार ही नहीं खड़े होते। लिहाज़ा स्कूलों, अस्पतालों व दूकानों सभी में मुसलमानों का ही कब्जा है। अतः छोटे - मोटे काम करनेवाले किसी हिन्दू को वहाँ देखने को कहीं मिलेगा। ज़ाहिर है फिरकापरस्ती उस इलाके में जम गया है।

उसी इलाके में हाजी अब्दुल करीम का कारखाना है। कहानी का वह केन्द्र पात्र है। खलनायक भी है कि अपनी खुदगर्ज़ी हेतु धर्म का वास्ता देकर

सांप्रदायिक ज़हर मुसलमान मज़दूरों के ऊपर उँडेलते हैं - और हिन्दुओं को काम हरगिज़ नहीं देते। अर्थात् मुसलमान कर्मचारियों के मन में बैठे असुरक्षा, संदेह और भय के भाव को न सिर्फ बरकरार रखते ही नहीं अपितु धर्म की दुहाई देकर उसका औचित्य भी सिद्ध करते हैं। अतः धर्म की तालीमात का इस्तेमाल वे स्वार्थ सिद्धि के लिहाज़ से करते हैं। ताकि उनकी फेक्ट्री में वे सस्ते मज़दूरों के तौर पर काम करते रहे।

बहरहाल अपनी जान बचाने हेतु मुसलमान उनके यहाँ काम केलिए जाने को मज़बूर हैं। चूँकि यदि वे हाजीजी की फैक्ट्री से छूट जाये तो समझो उनकी जान खतरे में है। दूसरे हिन्दू कारखानों में यदि सांप्रदायिक दंगे भड़के तो अल्पसंख्यक मुसलमानों की जान को ख़तरा है। ऐसे में एक माहौल बनता है साम्प्रदायिकता केलिए।

निजी हितों को ऊपर रखकर सार्वजनिक जीवन की खिदमत से हाजीजी मुँह मोड़ देते हैं। हाजीजी पढ़े - लिखे कम है, लेकिन ज़्यादा कढ़े है। इसलिए वे कहते है कि अपने कारखाने में बड़ी मशीनें नहीं लगाते। वरन् आधे से आधे मज़दूरों को खिड़की से बाहर कर देते हैं - 'मैं बड़ी मशीनें नहीं लगाता। गरीबों की रोटी मारी जाएगी'[१] सबका मूँह बंद करने के तरीके भी वे जानते हैं - 'तुम्हें वीरेन्द्र की फैक्ट्री में पैसा ज़रूर मिलेगा लेकिन ईमान और जान से हाथ नहीं धोओगे?'[२] आगे वे कहते है कि जिसे यहाँ न रहना है तो वे वीरेन्द्र के यहाँ चले जाए। सैकड़ों हिन्दुओं के बीच एक आध मुसलमान के डर से कोई वहाँ जाने केलिए राज़ी नही होते।

---

(१) अंधेरे से असग़र वजाहत, पृ - ९८
(२) वही, पृ - ९९

यह परोक्ष रूप से हिन्दु - मुस्लिम दंगे पर आधारित कहानी है। दूकानों और बिस्कुट फैक्ट्रियों में काम करनेवाले बच्चों, होटलों और छोटे छोटे कारखानों में काम करनेवाले मज़दूरों की यथार्थ स्थिति का चित्रण इस कहानी में हुआ है। इनकी ज़िन्दगी को लेखक ने जैसे अत्यन्त नज़दीक से देखा है और इनके प्रति अपनी गहरी संवेदना जताई है। असल में हाजीजी, मज़दूरों को अपने संवैधानिक अधिकारों से भी वंचित रखते हैं। उन्हें बोनस, ई. एस. आई आदि बिलकुल नहीं देते। इतवार की छुट्टी भी नहीं देते। अल्लाह का वास्ता देकर वे सचमुच उनका शोषण करते हैं। उनका एक-एक लफ़्ज़ इस बात केलिए सख्त गवाह है - 'इस्लाम तुम्हें यही सिखाता हैं कि एक मुसलमान के कारखाने में काम छोड़कर थोडे से लालच में हिन्दू के कारखाने में चले जाओ?'[१] मज़दूरों की ओर से कोई विद्रोह यहाँ नहीं होते क्योंकि वे प्रतिक्रिया विहीन है। अतः हाजीजी ने उनका मुँह बन्द कर रखा है। उनके पैरों में बेड़ियाँ खींचा है। इसलिए पी.एफ., कम्पनसेशन, ग्रेच्यूटी धरना आदि वहाँ नहीं होते।

पूरे देश में मज़दूर एकता को तोड़ने में सांप्रदायिता की अहम् भूमिका है। बम्बई में चाहे शिवसेना हो या कानपूर में संघ परिवार और अहमदाबाद में मुस्लिम लीग और हिन्दुत्ववादी संगठन रहे हो, इन सबों ने तमाम पूँजीपतियों व व्यापारियों का हित साधन ही किया है। बहरहाल मज़दूर आन्दोलन के बिखराव के पश्चात् साम्प्रदायिक शक्तियाँ और अधिक मज़बूत हुई है। सत्ता की राजनीति एवं मुनाफा संस्कृति ने हिन्दुस्तान के साधारण जनता की इनसानियत छीन ली है। ऐसे में सदियों से पड़ोसी रहे लोगों को बाँटने का हमने जघन्य अपराध किया।

---

(१) अंधेरे से - असग़र वजाहत, पृ - ९९

प्रस्तुत कहानी ऐसे मुनाफाखोरों की तस्वीर खींचती है जो अपसंस्कृति को वरीयता देते है। फिलहाल राजनीति में हो, व्यवसाय में हो या पूँजी में धर्म एक प्रकार का ब्रान्ट मात्र बन गया है। जनता की निरर्थकता, ऊपर से अधर्म की तालीमात भी इसकेलिए उत्तरदायी हैं। बेरोज़गारी के बढ़ते दौर में मज़दूरों के मुँह ताला लगाना हाजीजी जैसे व्यवसायी केलिए आसान काम है। चूँकि एक तो आज सांप्रदायिकता एक विपुलव्यापी कैंसर है और धर्म का वास्ता देकर वह जनता को भयभीत व चेतावनी देता है। राजनीति व धर्म का अजीब गठबन्धन भी कायम है। फिलहाल भारतवर्ष की तमाम मज़दूर राजनीतिक रुचि व सांप्रदायिकता की हैसियत से बाँटे गये हैं। अतः देश की स्थिति खतरनाक है। कहानी में कथात्मक मनोव्यथा सक्रिय रूप से उपस्थित है। जहाँ मनोव्यथा ही नहीं है, बल्कि एक हस्तक्षेप भी है, प्रतिरोध भी है।

४.४.१.५. गुरु - चेला संवाद

'गुरु - चेला संवाद' वार्तालाप की शैली में रची गयी है। गुरु तथा शिश्य के बीच के संवाद द्वारा कहानीकार ने धर्म के नाम पर लोगों को परस्पर बाँटनेवाली मानसिकता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है।

भारतवर्ष की सांस्कृतिक गरिमा उसकी धर्माधर्मी एकता का परिचायक है। लेकिन भारत में एकल हिन्दू संस्कृति की स्थापना करने की ज़बरदस्त कोशिश ही हो रही है। हमारे घरों में बच्चों को विभेद की भाषा सिखायी जाती है। स्कूलों व कॉलिजों में सांप्रदायिक तनाव बढ़ाने का प्रयत्न हो रहे हैं।

गुरु अपने चेले से कहते है कि भारत के मुसलमान विदेशी संस्कृति के

है इसलिए आतंकवादी है। भारत में हिन्दू - मुसलमान एक साथ इसलिए नहीं रह सकते कि दोनों की संस्कृति अलग है, भाषा अलग है। चूँकि भारतवर्ष केवल हिन्दुओं का देश है। इसलिए मुसलमानों से घृणा करना चाहिए। वे गंदे, अनपढ़ और अत्याचारी होते हैं। उन्होंने हमारे ऊपर शासन किया है। हमारे देश को बाँटा है। इसप्रकार सांप्रदायिक विकेन्द्रीकरण का बीज सर्वत्र बोया जाता है और देशवासियों को बाँटने की कोशिशें जारी है।

कहानीकार ने बहुत ही व्यंग्यात्मक ढंग से सांप्रदायिक दंगों की रोकथाम में प्रयत्नरत बड़े - बड़े पंडित, मौलवी, बड़े - बड़े सेठ - साहूकार और बड़े अधिकारियों के चित्र खींचे हैं। दरअसल वे दंगे न रुकवाने केलिए प्रयत्नशील है।

दंगों की रोकथाम केलिए कोई समाधान हमारे संविधान में नहीं है। अतः दंगों से हत्याएँ कराने वाले अपराधियों को पुलीस व प्रशासन ने मारकाट की खुली छूट दी है - 'हमारा कानून इतना बेशर्म तो नहीं है कि उपकार करने वालों को फाँसी पर चढ़ा दे'।[१]

किसी भी राज्य सत्ता या समाज केलिए साम्प्रदायिक दंगा नहीं रोक पाना शर्मनाक है, पर दंगाइयों को पकड़कर सज़ा देने में देरी करना पीड़ितों के साथ और जुल्म करना है। सच तो यह है कि सारी बात राजनीतिक दलों की नीयत् पर आकर टिक जाती है। उनके राजनीतिक स्वार्थ सामाजिक और राष्ट्रीय हितों पर भारी पड़ते हैं।

वैज्ञानिक, सांप्रदायिक दंगों को पूर्णतः धार्मिक कहकर नज़रअन्दास करते हैं। धार्मिक, इसे सामाजिक मसला बताकर टाल देते हैं और समाजशास्त्री, इसे

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असगर वजाहत, पृ - १३५

बेशक राजनीतिक मामला घोषित कर स्खलित हो जाते हैं। लेकिन राजनीतिज्ञों केलिए यह तो कोई मामला ही नहीं है। यानी कि सांप्रदायिक दंगों की ज़िम्मेदारी निरीह जनता पर ही पड़ती है, जो मूकसाध इसे भुगतने केलिए अभिशप्त हैं।

४.४.१.६. शाह आलम कैम्प की रूहें

'शाह आलम कैम्प की रूहें' शोषितों का आकड़ा है। वहाँ हर रात को रूहें आती है और अपना बयान देती हैं। अपने साथ हुई ज़्यादतियों का इज़हार करती हैं। यह कहानी एक रिपोर्ट है। यह दंगों के वक्त आम जनता पर होनेवाले मुश्किलातों का रिपोर्ट खड़ा करती है। कहानीकार ने इसमें व्यंग्य का सर्वत्र सहारा लिया है। उनकी ये व्यंग्य कहानी एक ओर हमें काटती है तो दूसरी ओर सोचने को बाध्य करती है।

यह कहानी आज़ादी के बाद के सबसे नृशंस साम्प्रदायिक दंगे के दौरान ज़ख्मी हुए पीड़ितों के दुःख दर्द को दर्ज करती है। कितने बेकसूरों को ज़िन्दा जला दिया था। कितनी गर्भवतियों के पेट फाड़कर उनके बच्चों के टुकड़े - टुकड़े कर दिये गये थे। साम्प्रदायिक दीवानगी में कितने लोगों का गला घोंट दिया था। संबन्धों में भी दरारें आने का यह कारण बना। बहिन केलिए अपने भाई को पुकारना भी गलत समझ जाता था।

कैंप में ऐसे बूढ़े व्यक्ति भी आते है जो अपने साथ की गई ज़्यादतियों का बदला चाहता था - 'सिर्फ ये बताने केलिए कि न उनके गोली मार कर मारने से मैं मरा था और न उनके ज़िन्दा जला देने से मरूँगा'।[१] बूढ़े के चित्र को खींचकर कहानीकार बताना चाहते हैं कि इसप्रकार का दम भरना चाहिए। शाह

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १५०

आलम कैम्प में एक रूह से किसी नेता ने लड़के से इस प्रकार पूछा कि वह आराम से हो तब उस ने जवाब दिया कि वह सही सलामत है। चूँकि लड़का जानता था कि मुसलमान जब भी अपने हक केलिए लड़ते हैं तब लोगों में जबरन् यह गलतफहमी का अहसास होता है कि उनका दुश्मन उनके बीच में है।

कहानीकार ने दंगाईयों की गई - गुज़री कुकर्म की खिल्ली उठाई है। शैतान से लोगों का कथन - 'आप ऐसा कर ही नहीं सकते। आपका भी आख़िर एक स्टैंडर्ड है।'[१]

४.४.१.७. मेरे मौला

'मेरे मौला....' बाबरी मस्जिद के विध्वंस के दौर की कहानी है। यह उस समय के मुसलमानों का वैचारिक माहौल उत्पन्न करती है। कहानी का वाचक स्वयं कहानीकार है। यह सबको पता है कि बाबरी मस्जिद के ढ़ह जाने के पीछे राजनीतिक चाल है। इसके पीछे कार्यरत घोर संप्रदायवादियों में हिन्दू तथा मुसलमान शामिल थे। लेकिन सच्चे और पक्के मुसलमान केलिए यह राजनीति से परे मन मारनेवाली घटना है। इसके पीछे मुसलमानों को नेस्तनाबूद करने की साजिश भी द्रष्टव्य है। लेकिन मुसलमानों में भी बदमाशी करनेवाले है। बेशक उन्हें पकड़कर सज़ा देनी चाहिए। बदले में मासूमों को ज़िन्दा जलाना जघन्य पाप है। खलील मियाँ के शब्दों में उनके मन की आशंका प्रकट है - 'अब तो आने लगे...... मौत के पसीने मुझे .....मेरे मौला बुला ले मदीने मुझे.....।'[२]

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १५१
(२) वही, पृ - १४५

साम्प्रदायिक आशंका से भरी कहानियाँ आज के संदर्भ में काबिले गौर ही नहीं काबिले तारीफ भी है। चूँकि आज के हमारे जीवन में निहित जो संप्रदायवाद है, उसके रूप, उसकी भूमिका और उसके कारण विभाजन के समय की सांप्रदायिकता से भिन्न है। हालाँकि इतिहास अपने को दोहराता है। अतः आज फिर धार्मिक संप्रदाय के आधार पर राष्ट्र का निर्माण या राष्ट्र की पहचान कराने का अभियान छिड़ा हुआ है। इस लिहाज़ से देखें तो अपने बदलते हुए रूप में सही, इतिहास दोहरा रहा है। फर्क सिर्फ इतना है कि फिलहाल आज हिन्दू संप्रदायवाद इसकी अगुवाई कर रहा है।

'मेरे मौला' कहानी के खलील मियाँ ही नहीं, इन्जीनियर नकवी साहब जैसे केवल नाम के मुसलमान भी भारी किंकर्तव्यविमूढ़ता जैसी स्थिति में है। ये उन नेशनलिस्ट मुसलमानों में है, जो अलगाववादी मानसिकता से परे हैं और सचमुच धर्म - निरपेक्ष हैं। कहानी में बहुसंख्यक समुदाय के फासीवादी दुराग्रहों पर व्यंग्य है - 'आप नेशनलिस्ट मुसलमान हो नकवी साहब आप होली में रंग खेलते हो आप दिवाली में जुआ खेलते हो आप नेशनलिस्ट मुसलमान हो तिवारी जी, क्या आप नेशनलिस्ट हिन्दू हो? आप ईद में सेवई खाते हो? आप बकरीद में कबाब खाते हो? आप नेशनलिस्ट हिन्दू हो? '[१] इस मुल्क में बहुसंख्यक फासीवाद की हालत यह है कि वह अल्पसंख्यक वर्ग - विशेषतः मुसलमानों से यह प्रमाण माँगती है कि सिद्ध करो कि तुम 'राष्ट्रवादी' हो।

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १४३

४.४.१.८. शीशों का मसीहा कोई नहीं

'शीशों का मसीहा कोई नहीं' में हिन्दू मुस्लिम देगों के संबन्ध में एकाध स्थान पर संकेत अवश्य मिलता है। मगर कहीं भी सांप्रदायिक समस्या के संदर्भ में कोई अन्तर्दृष्टि नहीं है। इसमें खान बहादुर सुलतान के ज़माने की आइने की गुंजाइश है जिसे दंगों के दौरान नष्ट होने का दुःख प्रकट किया है। अतः कहानी इस बात का इज़हार करती है कि विभाजन के दौरान हुए हिन्दू - मुस्लिम दंगों में अपनी मनपसन्द चीज़ों के खोने की कसक भी है। जिसके शान से मामू का फतेहगढ़ का हेयर कटिंग सैलून शहर भर में मशहूर बन गया था और जिससे मामू निहायत इश्क करता था। आज वह उस शीशे का मसीहा बन गया।

कहानी के अन्तिम हिस्से में एक शीशे के टूटने की जो तेज़ आवाज़ आती है, और कमरे के बीचों - बीच शीशे के छोटे - छोटे टुकड़ों का जो ढेर लग गया है, यह दरअसल उसी खानबहादुर आइने का टूटना है जो एक समय संयुक्त समाज का प्रतीक प्रतिरूप था। इस आइने की यह नियति कैसे हुई, इसकी पूरी प्रक्रिया सिलसिले के साथ पूर्वदीप्ति के सहारे कहानी में दी गई है। इस सामाजिक ताने - बाने के टूटने, साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का सबसे भयावह व यातनापूर्ण असर मामू जैसे लोगों की आजीविका पर पड़ा है, जो बहुसंख्यक इलाके में अपना कारोबार करते हैं। मामू अपनी ज़िन्दगी के इस उतार - चढ़ाव से लगभग स्तंभित है। यानी एक अवसाद की मनःस्थिति में आ पहूँचे है - 'शीशे के छोटे छोटे टुकड़ों में सैकड़ों मामू मेरी तरफ देख रहे थे। न कोई

शिकवा, न कोई शिकायत, न आहत होने का भाव, न प्रतिरोध उनकी आँखों में अगर कुछ था तो सिर्फ यह कि कुछ न था'। [१]

४.४.१.९. उनका डर

'उनका डर' साम्प्रदायिक विरोधी विमर्श है। कहानीकार ने इसमें मुस्लिम कूढ़मगज़ी को अपना तीखा निशाना बनाया है। तत्ववादी कूढ़मगज़ी की यह एक और हद है कि विदेशों में काम करने वाले, वहाँ बस चुके मुसलमान किस कदर परम्परावादी और ठस - दिमाग हैं, इसको ज़ाहिर किया गया है।

कहानी में अमरीका में बसे कतिपय मुसलमानों का संक्षिप्त वर्णन है। वाचक उनके साथ डेट्रायट से शिकागो जा रहा था। हुआ यह कि अलीगढ़ के उनके दोस्त अंजुम ने उसे फोन करके बताया था कि उनके भाई शिकागो आ रहे हैं और यदि वे चाहे तो उनके साथ बिना खर्च के आ सकते हैं। अंजुम के भाई मसरूर साहब, उनके दोस्त असद साहब, डॉ. ताहिर व अहमद यात्रा में शामिल थे। वाचक (लेखक) एक पर्यवेक्षक की तरह कहानी में आता है। अमरीका जैसे आधुनिकतम देश में रहने के बावजूद औरतों के प्रति, बच्चों - विशेषतः लड़कियों के प्रति, संस्कृति के प्रति इन लोगों की मानसिकता मध्यकालीन और पारम्परिक है। वाचक बताता है कि ऐसा इसलिए है कि इन लोगों ने वहाँ भी 'एक्शन कमेटी फार द इंडियन मुस्लिम' जैसी संस्था बना रखी है, जो हिन्दुस्तानी मुसलमानों की अमरीका में नुमायंदगी करती है। अमरीका के हर बड़े शहर में इसकी शाखाएँ हैं। ये संस्थाएँ मस्जिद बनवाती है, हिन्दुस्तान के मुसलमानों को चन्दा भेजती है, हर इतवार को गेट टुगेदर

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १२६

करती है जिसमें इन्हीं में से कोई किसी मज़हबी नसल पर तकरीर करता है। मुशायरे करवाती है। इस्लामी फलसफे और उसूलों को सामने रखकर शायरी करनेवाले शायर भी इसमें शामिल है। वाचक का कहना है कि ये लोग हद दर्जे की इस्लाम परस्ती है और आदमी को बैकुण्ठ में जाकर छोड़ती है। विदेश में रह रहे मुसलमान ही नहीं, हिन्दू भी इसी लाइलाज़ कूढ़मगज़ी और परम्परावाद की गिरफ़्त में पड़े नज़र आते हैं। कहानी में मुस्लिम समाज की याथास्थितिवादी सोच तथा अन्धजन्य मानसिकता का चित्र खींचकर लेखक खुद चकित दिखाई दे रहे हैं 'यह सब हिन्दुस्तान में मैंने हमेशा देखा और भुगता था, लेकिन यह उम्मीद नहीं थी कि किसी ऐसे आदमी से अमरीका में भी मुलाकात हो जाएगी।'[१]

४.४.२. गंदी और गलीज़ राजनीति से जूझती कहानियाँ

राजनीति अब राजनीतिज्ञों केलिए सत्ता लिप्सा का कारगर माध्यम बन गया है जिससे वे 'मानवता' को लील रहे हैं। साफ है कि हमारे देश में जनतांत्रिक मूल्यों की बुनियाद निहायत कमज़ोर है। आज भी हमारे समाज का ढ़ाँचा सामन्ती है। खासकर गाँव में परम्परागत मान्यताएं टूटी नहीं। वहाँ हर सोच पर पितृसत्तात्मक सोच हावी है। नई पीढ़ी यदि नीतियों से अलग हटती है तो पूरा समाज भड़क उठता है। वह उसे रोकने केलिए किसी भी हद तक चला जाता है। एक मध्ययुगीन बर्बर तन्त्र ही खुलेआम सभ्य समाज और आधुनिक मूल्यों को चुनौती दे रहा है। जाति की राजनीति कर रहे नेताओं को अपने समुदाय से वोट तो चाहिए पर उनके मानसिक विकास से उन्हें कुछ लेना

(१) अंधेरे से - असग़र वजाहत, पृ - १०२-१०३

- देना नहीं है। हमारे लोकतन्त्र की विडम्बना यह रही है कि नीतियों का निर्माण जिस तबके केलिए किया जाता है, लाभ उनको नहीं मिलता। राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, भाई - भतीजावाद, जातिवाद, प्रान्तवाद जैसे फोड़े राष्ट्र के शरीर में एकाएक फूट पडे हैं और जिससे चौतरफा मवाद, सड़ते मांस और गंदे खून की महक ही छा गयी है।

वर्तमान व्यवस्था में राजनीतिक दलों की कोई विशेष सार्थकता नहीं रह गयी है चूँकि उनका मुख्य उद्देश्य मानवीय चेतना के विकास में कोई सार्थक राजनीतिक भूमिका अदा करने के बजाय सत्ता पर कब्जा जमाना हो गया है। सत्ता के इस तन्त्र के तमाम पहलुओं को अपनाना प्रत्येक राजनीतिक दल की मज़बूरी बन गयी है। परिणामस्वरूप प्रत्येक राजनीतिक दल की संस्कृति करीब एक जैसी हो गयी है। साधन भी एक जैसे हैं, साध्य पर भी उनका असर पड़ा है। लिहाज़ा राजनीतिक दल सत्ताकांक्षी लोगों का गिरोह बन गया। ऐसे मौके पर नन्दकिशोर आचार्य का मन्तव्य है 'जहाँ लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और निर्वाचित प्रतिनिधियों पर निरन्तर नियन्त्रण आवश्यक है, वहाँ साथ ही यह भी ज़रूरी है कि राजनीतिक दलों की इस पतनशील स्थिति को पहचाना जाय और उसका विकल्प दे सकने में समर्थ राजनीतिक व्यवस्था विकसित करने की ओर चेष्टारत हुआ जाय।'[१]

असग़र वजाहत की निम्नांकित कहानियाँ इसी उद्देश्य की माँग करती है।

४.४.२.१. नया गणित

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। मगर भारत की राजनीति इतनी खराब हो चुकी है कि किसी राजनैतिक दल को देश की चिन्ता नहीं,

---

(१) मानवाधिकार के तकाजे - नन्दकिशोर आचार्य, पृ - २७-२८

इनका तो अपनी कुर्सी बनाये और सत्ता कैसे हासिल की जाए इसी गणित में पड़े रहने की आदत पड़ गई है। जिस तरह अंग्रेज़ों ने राज किया था, 'फूट डालो राज करो' उसी तरह अब ये नेता कर रहे हैं। अतः आज की राजनीति में नया गणित काम करता है, वहाँ अब दो और दो मिलकर चार नहीं होते, बल्कि बाईस होते हैं। यह राजनीतिज्ञों की सुविधाभोगी वृत्ति का परिचय देता है।

प्रस्तुत कहानी की शुरुआत से ही इस व्यंग्यात्मक स्थिति का पता चलती है कि चुनाव एक ऐसा आयोग है जहाँ हमारे नेतागण सक्रिय व जागरूक रहते हैं। चूँकि या तो उनके मन में पाँच साल खत्म करने का उमंग रहते हैं या तो अपनी कुर्सी जमाने का। इस लिहाज़ से प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में मन्त्री महोदय प्रवेश करता है जैसे कोई मस्त और घबराया भैंसा लगातार खोदे जाने के बाद बाड़े में घुसता है। मंत्रीजी पूरे चार साल सात महीने सोते रहे थे, फिर उनकी नींद हाई कमान की डाँट से खुली थी। मन्त्रीजी अकेले नहीं आये क्योंकि उन्हें पता है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। अर्थात् उनकी अमरीकी पत्नी, दोनों बच्चे और भोलू रसोइया सहित तीन नौकर भी साथ थे। इसके अतिरिक्त दो कुत्ते और उनके अपने कार्यालय के लोग भी थे। इतनी तैयारियों के साथ आने का यही मतलब था कि चुनाव जीतना या और पाँच साल अख्तियार करना।

मन्त्री महोदय के आगमन की खबर मिलते ही भीड़ जम गयी थी। मन्त्रीजी जनता की नज़रों की पर्वाह किये बिना सीधे सिंचाई विभाग के विश्राम गृह की ओर भागा। नहा धोकर चाय वाय पीने के बाद मन्त्रीजी ने

जिलाधिकारी से उस सूची का आदेश दिया जिसमें तमाम जिलाधिकारियों की गणना हो। सूची मिलते ही मन्त्रीजी ने हर नाम को पढ़ना शुरू किया और फिर प्रत्येक नाम के आगे उन्होंने अंग्रेज़ी वर्णाक्षरों में कुछ संकेत दिया। दरअसल वे अपने फिरके के वोटर को एकत्रित कर रहे थे। उन्होंने अपनी बिरादरी के वोटर की माँग रखकर बाकी लोगों को धक्के मारकर बाहर निकाल दिया। वस्तुतः वे मानते हैं कि अपनी बिरादरी के लोगों के जुटाव से अपना चुनावी दल मज़बूत रहेगा।

शतरंज के इस चाल के बाद मन्त्री ने जनसंपर्क बनाने की योजना बनायी। मन्त्री महोदय खुलकर सबका मदद करते थे। बहादुर मन्त्रीजी शहर के सबसे सम्मानित और सबसे अधिक उपयोगी नागरिकों से जनसम्पर्क स्थापित करना चाहता था। इसकेलिए जेल, बीहड़ों या दीगर अड्डों में पुलिस की सहायता से मुलाकात संपन्न होती थी।

अब शहर के अधिकारियों में सभी मन्त्रीजी की जाति के अफसर थे, गैर जाति के अधिकारियों का मन्त्री महोदय अन्य अधिकारियों, तथा नागरिकों में अपना आतंक जमाये रखते थे। चुनाव प्रचार के बहाने मन्त्री महोदय की विदेशी पत्नी मारग्रेट भारती ने शहर की सम्मानित महिलाओं को चाय पर बुलाया। उधर मन्त्रीजी का रसोईया भोलु, सात साल से एम. एल. ए. के टिकट पाने केलिए रोटियाँ बेल रहा था - 'सात साल एम. एल. ए. का टिकट पाने केलिए रोटियाँ डाल रहा हूँ अबकी पक्का है।'[१] ज़ाहिर है सब कही मतलब की राजनीति ही है। जहाँ मन्त्रीजी चुनाव अख्तियारने केलिए अपने खेलतन्त्र में व्यस्त है वहाँ उनके रसोईया अपने मतलब की रोटी बेल रहा है।

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ - २६

लेकिन आम जनता इन साजिशों से अवगत नहीं है। यहाँ गणतन्त्र के नाम पर गणित तन्त्र ही काम करता है। अतएव दलबदल की राजनीति में धर्म, जाति व नस्ल का अमानवीकरण हो रहा है। सब अपना वजूद निकालने की फ़िराक में है। कहानीकार ने चुनाव क्षेत्र के असली राजनीतिक खेल को पेश कर हमें सोचने का समान अवसर दिया है।

४.४.२.३. मुर्दाबाद

नौकरी की व्यवस्था न होने पर आज किस प्रकार बेरोज़गार युवा पीढ़ी का गलत इस्तेमाल समाज के अपराधी, किस्म के लोग कर रहे हैं इसे असग़र वजाहत ने मुर्दाबाद कहानी में दिखाया है। यह सत्तर की आस-पास लिखी गई कहानी है। उस वक्त राजनीति में महाबलियों का बहुत कम वर्चस्व था। उस समय भूतपूर्व चोर   उचक्के, डाकू चुनाव लड़नेवाले उम्मीदवारों की मदद करते थे। सीधे राजनीति में आने की वे सोच भी नहीं सकते थे। प्रत्याशी अपने सहयोगियों से उनकी पहचान छिपाने केलिए कहानियाँ गढ़ते थे। लेकिन आज पूरा परिदृश्य बदल गया। अपराधियों और माफियाओं के आगे मुख्यमन्त्री भी नत-मस्तक है। सत्ता की कुर्सी के दावेदार सभी राजनीतिक दलों में होड़ लगी हैं कि कौन बड़ा महाबली किसके साथ है। सत्ता में उनकी समस्त भागीदारी तो है ही, साथ ही वे अपने सहयोगियों केलिए भी सभी सुख-सुविधाएँ सहज ही जुटा देते हैं। पूरा पुलिस प्रशासन उनके इशारों पर चलता है।

कहानी का परिदृश्य वोट की राजनीति का अहसास दिलाता है। उसकी निस्सारता को व्यक्त करता है। वोट हमारेलिए कोई नई बात नहीं रही।

लोकतन्त्र की यही तो खासियत है और इसमें हम पूरी तरह पगे हुए हैं। जनता आज इसकेलिए और कल उसकेलिए वोट डालते ही रहती हैं। कभी यह नेता हमें पसन्द आ जाता है तो कभी वह नेता हमें पसन्द आ जाता है और हम वोट दे देते हैं। असल में नेताओं को वोट देकर हम पछताते ही हैं।

नूरू मियाँ के इलेक्शन में शहर के मुसलमान लौड़े जानतोड़ मेहनत करते हैं। चूँकि कई ज़िलों में एक तो मुसलमान एम.पी है। उसके हार जाने से तो ज़िले के मुसलमानों का नाम कट जाएगा। ज़ाहिर है कि फिरकापरस्त सियासत ही सर्वत्र कायम है। कतिपय लोगों केलिए इलेक्शन त्योहार के समान होते हैं 'तुम क्या जानो इलेक्शन किस चिड़िया का नाम है? आराम से केकड़ा में घूम रहे हो। मुफ़त में चाय - सिगेरट मिल रही है'। [१] इन लोगों के लिहाज़ से साल भर इलेक्शन होना है।

आज का चुनाव, हमारा लोकतन्त्र अब दिखावा रह गया है। पैसे और गुण्ड़े जिसके पास है वही आज चुनाव जीत सकता है। इस प्रकार हमारा लोकतन्त्र वास्तव में जनता की भागीदारी से वंचित है और केवल उन्हीं लोगों का इस पर कब्जा है, जो पूँजीपतियों से साठ गाँठ रखे हुए है। चुँकि आजकल के नेताओं को चुनाव लड़ने केलिए पैसा पूँजीपति देते हैं और बाकी सब काम नेता कर देते हैं। वोट बैंक की ऐसा एक दृश्य कहानी के द्वारा सामने आता है। भिन्न - भिन्न जाति, धर्म, समाज व वर्गों में बाँटा एक अरब आबादी वाले हमारे देश में आज़ादी के बाद वोट बैंक की राजनीति का घटिया खेल ही देखने को मिलता है। वोट और कुर्सी केलिए भारतवर्ष में तुष्टीकरण का निकृष्टतम खेल खेला जाता है। कहानी में इन सभी राजनीतिक जालसाज़ों का

---

(१) अंधेरे से असग़र वजाहत, पृ ८४

व्यंग्यात्मक चित्रण है। चूँकि सिद्धान्तविहीन राजनीति का ही हमारे यहाँ बोलबाला है। अपराधी प्रवृत्ति के नेता, अफ्सर, दलाल गरीबों को लूट रहे हैं। यहाँ की पूरी व्यवस्था भ्रष्ट हो गई है और जनता भुखमरी में अपना दम तोड़ रही है । 'पतवार से पटी दल्लान की छत नीचे झुक आई है। लालटेन की रोशनी में बाबूजी का काला दुबला पतला चेहरा रजाई के बाहर फटे तकिए पर एक ओर पड़ा होगा। दमे के पुराने मरीज़ का सीना रजाई के नीचे उठ - बैठे रहा होगा। गाल की उभरी हुई हड्डियों और सिकुड़ी - सिकुड़ी हुई खाल - पचास भुखमरी में बिताए साल...'। (१)

कहानी के अन्त में उमाशंकर के दिमाग में जो रोम - रोम हाय - हाय, मुर्दाबाद का स्वर गूँजता रहता है, लगता है जैसे पूरी व्यवस्था, वर्तमान प्रजातन्त्र केलिए ही मुर्दाबाद का स्वर गूँज रहा हो। कहानीकार ने सरल व दिलकश रूप - शैली का प्रयोग किया है। इस कहानी में चुनावों की सामाजिक संरचना की देन को उभारा है। अतः चुनावों का निष्पक्ष खाका है जैसा किसी दूसरी कहानी में मिलना शायद मुश्किल है।

४.४.२.३. मुश्किल काम

'मुश्किल काम' में भी उन्होंने हमारी राजनीति में निहित दावपेंच का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। चुनाव के बाद विरोधी दल की एक इत्तफाकी मीटिंग हुई। मीटिंग के दौरान हुई बातचीत का विवरण ही कहानी का मर्म है।

चुनाव में अक्सर देखा जाता है कि विरोधी दल की पार्टियाँ परस्पर लड़ते रहते हैं। कहानीकार की साफगोई कि चुनाव के दरमियान जनता पर अमोदा

---

(१) अंधेरे से - असगर वजाहत, पृ - १२

लेने केलिए पक्ष - विपक्ष - आपसी वैर व रोब दिखाते हैं। यानी कि वे एक दूसरे पार्टि को झूठा, अत्याचारी चित्रित कर वोट बटोरना चाहते हैं। चुनाव के बाद दोनों पार्टियों की मुलाकात होती है। वह भी मदिरालय के आदर्श जगह पर। मीटिंग में अपने द्वारा की गई ज़्यादतियों का वे माप-तौल करते हैं। जैसे कि दंगों में किसने अधिक बहादुरी दिखाई, किस दल ने ज़्यादा माल लूटा, कितने बम फोडे, कितनी औरतों का कत्ल किया, कितने बच्चों की टाँगें चीरी, कितने अजन्मे बच्चों का काम तमाम कर दिया आदि।

कहानीकार की खुलासा कि राजनीति में फिलहाल लूट, मार, बलात्कार आदि, गतिविधियाँ उत्पन्न करने केलिए सहज साधारण बना दी गयी है। अतः गुंडागिरी व दादागिरी ही राजनीति की पहचान बन गई है। पहले राजनेता, राज्य का संरक्षक, मार्गदर्शक आदि हुआ करता था, लेकिन आज वह लम्पटता का पर्याय बन गया है। फिर भी लेखक की दृष्टि हमेशा आशावादी होती है। लिहाज़ा उन्होंने कहानी के अन्त में ढाबे में बैठ एक से अनुभव की बात कहलवायी है - 'यही कि बच्चों को मारना बहुत मुश्किल है उनको मारना जवानों को मारने से भी मुश्किल है....... औरतों को मारने से क्या, मज़दूरों को मारने से भी मुश्किल है।........... बच्चों को मारते समय....... अपने बच्चे याद आ जाते हैं।' [१] ज़ाहिर है कि व्यक्ति के दिल से इनसानियत पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ है। लेकिन जिस ढंग से कहानी समाप्त होती है, वह बेशक नाटकीय परिणति ही है। यह कि सबसे मुश्किल काम में ही परेशानी है।

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ - ५०

४.४.२.४. स्विमिंग पूल

'स्विमिंग पूल' में जो कहानियाँ शामिल है उनके माध्यम से उन्होंने वर्तमान राजनीतिक, शैक्षिक, साहित्यिक और प्रशासनिक क्षेत्रों की विरूपताओं पर तीखे - व्यंग्य प्रहार किए हैं। यों इसमें से प्रायः प्रत्येक कथा स्थिति हमारे लिए अपरिचित नहीं, लेकिन लेखकीय दृष्टि उसे जिस तरह उजागर करती है, उससे वह नितांत नई और अर्थपूर्ण हो उठती है। अतएव हम हैरान हो उठते हैं और हमारे भीतर एक और अनुभवलोक आकर ग्रहण करने लगता है, यहाँ तक कि वर्तमान व्यवस्था का बहुरूपी झूठ हमारे सामने टुकडे - टुकडे होकर बिखर जाता है। जिन व्यक्ति चरित्रों से यहाँ हमारी भेंट होती है, लगता है वे हमारे आसपास ही है और अब हम उन्हें बखूबी पहचानने लगे हैं। यह पाठकीय प्रतीति इन कहानियों की रचनात्मक कुशलता का ही परिणाम है। बेशक इसकी बुनियाद में लेखक का गहरा सामाजिक जुड़ाव क्रियाशील है, जिसके बिना कोई भी रचना सार्थक और कलात्मक नहीं हो सकती। अतः कहना न होगा कि ये कहानियाँ हमारे विविध जीवनानुभवों में बहुत कुछ नया और सार्थक जोड़ने में समर्थ है।

'स्विमिंग पूल' संपूर्ण व्यवस्था पर हस्तक्षेप करती है। इस कहानी के द्वारा असग़र वजाहत ने तमाम व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द की है। कहानी में सब मिलाकर तीन पात्र है - वाचक, उसकी पत्नी और वी. आई. पी। कथावस्तु सहज व साधारण है। वाचक के घर के सामने वाले नाले में कूड़ा - कचड़ा इतना जमा हुआ है कि बदबू और गंदगी से जीना बेहाल लगता था।

बहुत बार फरियाद देने पर भी नाला साफ नहीं होता। इस दौरान वाचक के घर वी.आई.पी. का जाना होता है। जहाँ वाचक की पत्नी उनसे नाले की शिकायत करती है और वी.आई.पी. से नाला साफ करवाने का वादा लेकर चैन की साँस लेती है। लेकिन इसके बावजूद नाला साफ नहीं होता। वादा ही रह जाता है। एक दिन नाले में ज़माने की खुशियाँ, ज़माने की आब और ज़माने के सपने डूबते नज़र आते हैं और इन सबके बीच नाले में किलकता डूबता - उतरता है वी. आई. पी. दिखाई देता है।

कहानी प्रतीकात्मक ढ़ंग से लिखी गयी है और इस हक़ीक़त को दर्ज करती है कि हमारी पूँजीवादी व्यवस्था में भ्रष्टाचार का खात्मा नामुमकिन है। गंदा नाला यहाँ प्रतीक है - भ्रष्टाचार और अव्यवस्था का जो समूचे देश केलिए खतरनाक है। अतः नाला 'कैंसर के उस रोगी जैसा लगता था जो आज न मरा तो कल मर जाएगा।' [१] यहाँ गौरतलब बात यह है कि कैंसर से रोगी मर जाता है, कैंसर बचा रहता है और रोगियों को मारने केलिए। यह लाइलाज बीमारी खून में इतनी घुल गयी है कि इससे निजात पाना नामुमकिन है। इसकेलिए सबूत है खुद - ब - खुद वी. आई. पी. का गंदे नाले में डुबकियाँ लगाकर आना और स्विमिंग-पूल की एहसास प्रदान करना।

नाले से फूल, किताबें, जड़ से उखड़े पेड़, चिड़ियों के घोंसले, टूटी शहनाई आदि का बहना भी सांकेतिक अर्थ का द्योतक है। आज के इस भूमण्डलीकृत युग में पूँजीवादी व्यवस्था का जमना कहीं - कहीं विघटनकारी स्थितियों को पैदा करती है। दुधमुँही बच्चियों के कत्ल, बाल शोषण और बँधुआ मज़दूरी को फिलहाल बढ़ावा मिलती है। जहाँ नैतिकता केलिए कोई

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - १२७ - १२८

जगह नहीं रह गया है। साहित्य व्यवस्था के तन्त्र में छटपटा रहे है। इसलिए ही सही वह आम पाठक की पहूँच के परे हैं। पेड़ों का जड़ से उखड़ जाना विस्थापितों की अन्दरूनी तकलीफ़ को वाणी देना है। जहाँ चिड़ियों के घोंसले और टूटी शहनाई का संकेत है वहाँ किसी भी हालत में मनुष्यता का क्षय ही है।

वाचक व्यावहारिक होने के नाते नाले के पीछे नहीं दौड़ते चूँकि वे जानते हैं कि व्यवस्था को बदलने केलिए उत्साह से अधिक क्षमता की ज़रूरत है। जहाँ वाचक का प्रतिक्रिया विहीन रहना भी एक प्रकार व्यंग्य बाण है। कुछ लोग मूक संघर्ष करते हैं। पत्नी का अधिक प्रतिक्रियाशील होना इस बात केलिए गवाह है कि स्त्रियाँ बाह्य जगत के वातारवण से उतना वाकिफ नहीं है। और एक बात यह है कि नारी को ही सारे अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।

'स्विमिंग पूल' उत्तर औपनिवेशिक भारत का सजीव चित्र खींचती है कि उपनिवेशन की परम्परा जारी है। बेशक उसका रूप बदला है हालाँकि उसकी साजिशों से आज़ादी भारत वर्ष केलिए नामुमकिन हो गया है।

४.४.२.५. पागलखाना

'पागलखाना - प्रसंग एक से छः' में कवि ने भारत के प्रशासन तन्त्र की खिल्ली उठाई है। पहले प्रसंग में बताया गया है कि भारत के राष्ट्रपति घोषित करने केलिए किसी भी पागल तैयार नहीं थे। पागल खाने के दरवाज़ा टूँटने पर एक पागल ने अपनी नाक काटकर पागलखाने के दरवाज़े पर चिपका दिया

और अपनी हार मान कर राष्ट्रीय गान गाकर भाग निकला। एक ने जब देखा कि दरवाज़ा टूटा है तो वह फूट - फूटकर रोने लगा कि बोला - 'इस देश में आदमियों के रहने लायक एक ही तो जगह थे। वह भी बर्बाद हो गई'।[१] और एक पागल ने ज़ोर से जयसिंह का नारा लगाया कि उसे दुबारा पागलखाने में बन्द करें। आख़िर पागलखाने के दरवाज़ा टूटने पर सरकार ने एक अवकाश प्राप्त जय की 'वन मैन इन्क्वाइरी कमेटी' बना दी। उन्होंने छानबीन व खोजबीन के बाद जो रिपोर्ट दाखिल कर दी उसे पढ़ने पर कोई भी पागल हो जाता था। विरोधी दल के नेताओं को जब यह खबर मिली तब वे बहुत उत्तेजित हुए और हमेशा की तरह एक बयान दर्ज किया। लेकिन वह पुराने बयान की कापी थी जिसमें बेरोज़गारी, महँगाई और शाँति, कानून - व्यवस्था पर चिंता प्रकट की गई थी। पर पागलखाने के संबन्ध में एक शब्द न था। यहाँ भारत के संविधान पर भी व्यंग्य किया है और साथ ही पक्ष - विपक्ष के सरकारी कार्य - कलापों पर भी। संसद भवन में आजकल झगड़े होते हैं।

अपनी तन्ख्वाह बढ़ाना, भत्ते दुगना मिलना और पेंशन ज़्यादा मिलना ही उनकेलिए सबकुछ है। लेकिन अपने देश की चिन्ता किसी को नहीं है। पत्रकार आजकल सच्चाई से मूँह मोड़ लेता है। सत्ता का स्थान फालतू बन गया है। संसद भवन जूतेमार का स्थान बन गया है चूँकि राजनीतिक पकड़ के कारण कोई भी सत्ता हासिल कर सकता है। इसलिए वह तस्कर और पहलवानों की दुनियां में तब्दील हो गया है।

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - ७०

४.४.२.६. बनना

कुछ बनने की हविश में दिलावर मिया की ज़िन्दगी किस प्रकार बदल जाती है इसका संकेत है। पहले वे पॉलिटिक्स को चुतियापा समझते थे और नेताओं और राजनीतिज्ञों पर हँसते थे। लेकिन रहमत अली के कहने पर वे किसी एम.पी. को लेने स्टेशन आए थे। दिलावर सांसद के साथ सिर्फ एक दिन रहे थे कि उसके मन में अमृत पीने की लालसा हुई। अपने पेशेवार से वे नेता बनने लगे। बाद में उन्हें सूझा कि बिना जेलवाला चाहे जितना बड़ा हो पूरा नेता नहीं माना जाता और जेल जाने के बाद विशाल काय हो जाती है। इसकेलिए उन्होंने अलग - अलग तरकीबें ढूँढ निकाली पर असर नही पडा। अन्त में उन्होंने संविधान जलाने की घोषणा की। लेकिन संविधान नहीं मिला तो उसके बदले किताब जला दी और मंच पर चढ़कर उन्होंने संक्षिप्त भाषण दिया और कहा कि वे संविधान जला रहे हैं। फिर भी दरोगाज़ी ने उन्हें गिरफ़्तार नहीं किया। चूँकि उन्होंने एफ.आई.आर दर्ज करने केलिए कहा।

कहानी में सहज ढंग से हमारे राजनीतिज्ञों पर तीखा व्यंग्य प्रहार किया है कि 'यही हर मर्ज की दवा है। यही हर मर्ज का इलाज है। मगर ये खुद लाइलाज है'।[१] कहानी में सरकार की नीतियों पर व्यंग्य है। मसलन भ्रष्टाचार, धाँधली, कमीशन, घूस, भाई - भतीजावाद, लूट - खसोट, अत्याचार, महँगाई, बेरोज़ागारी, पर्दाफाश, करारी, टक्कर, संघर्ष, जेल भरो, खून का बदला........ आदि शब्द उनके शब्दकोश में मिलते हैं। इसलिए उनकी इन नीतियों का मुकाबला करना होगा। निकम्मे और भ्रष्ट प्रशासन की अर्थी उठाना चाहिए।

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - १०६

यह संविधान इसलिए बना है कि यहाँ इनसाफ हो, आम जनता की खुशहाली हो, धर्मनिरपेक्षता हो और व्यक्ति अपने हक व कर्तव्य से लैस हो। लेकिन आज संविधान सचमुच जल गये हैं। चूँकि सरकार तथा नेता उनके हिसाब से नीतियाँ खड़ा करते हैं और पुलीस की भूमिका हास्यास्पद है। यह प्रशासन तन्त्र के अन्दर की सड़ान्ध का प्रामाणित दस्तावेज़ है। यह कहानी प्रशासन तन्त्र की कमज़ोरियों की पोल खोलती है।

४.४.२.७. दिल्ली पहूँचना है

उनकी कहानियों में राजनीतिक प्रतिबद्धता स्पष्ट है। 'दिल्ली पहूँचना है' में वामपंथी विचारधारा को मूर्त रूप दिया गया है। आज के आदमी के सामने जितनी जटिल ज़िन्दगी है उसका इस कहानी में हलका स्पर्श है। यह 'संघर्ष हमारा नारा है' को मूर्त करनेवाली राजनीतिक प्रतिबद्धता की कहानी है। मदनपूर गाँव के किसान विपिन बिहारी शर्मा की अगुवाई में दिल्ली पहूँचने केलिए बीस किलोमीटर पैदल चलकर ट्रेन पकड़ते है। जगह न मिलने पर ट्रेन की खिड़की, दरवाज़े तोड़ कर लोग प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठ जाते हैं। आखिर वे पुलिस के प्रतिरोध को तोड़कर दिल्ली पहूँचते हैं। संगठन और एकता है तो किसी भी अत्याचार को जीत सकता है। लेकिन आवश्यकता है मन से निर्णय लेने की कि किसी भी तरह हम लक्ष्य प्राप्त करेंगे। यहाँ दिल्ली पहूँचना प्रतीकात्मक ढ़ंग से सत्ता पर कब्ज़ा करना है। उसकेलिए ज़ुबानी संघर्ष के साथ - साथ कायिक संघर्ष भी कभी - कभी आवश्यक पड़ता है। बहरहाल हमें मंज़िल तक पहूँचना ही है। इसी की प्रेरणा कहानी देती है। कहानीकार ने समस्याओं की गहराई में न जाकर नारे - बाजी से ज़्यादा काम लिया है।

४.४.३. भूमण्डलीकरण की साजिश का पर्दाफ़ाश करनेवाली कहानियाँ

आज हर आदमी एक अजीब उलझन भरी ज़िन्दगी जी रहा है। वह अपने जीवन को अधिक सुन्दर, अधिक सुरक्षित व संपन्न बनाने के फेरे में न जाने कितनी ही बार मरता है। वैश्वीकरण के इस दौर में स्वप्न लोक की काली ज़ंजीरें सर्वत्र उसे घेर रही है। मानव मन में अभिलाषाएँ अनन्त होती है। एक अभिलाषा पूर्ण होती है तो दूसरी फन उठाने लगती है। बहरहाल भौतिक अभिलाषाएँ इस जीवन में कभी तृप्त नहीं हो सकती और न ही वे कभी - व्यक्ति के अन्तःकरण को सच्ची खुशियाँ दे सकती है। फिर क्यों इन भ्रामक खुशियों केलिए मरा जाए।

इस धरा पर अभी तक जितने भी नरसंहार या विनाश हुए है, उसके मूल में महत्वाकांक्षाएँ ही रही है। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति केलिए अत्यधिक जुनूनी हो जाना महत्वाकांक्षा की श्रेणी में आता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को केवल अपनी ही इच्छा नज़र आती है और उसका एकमात्र लक्ष्य किसी भी कीमत पर अपनी इच्छा की पूर्ति करना हो जाता है। ऐसे में इस स्थिति को प्राप्त करने केलिए लाशों के ढ़ेर पर से गुज़रने से भी परहेज नहीं करता अतः वह अनीति का वाहक हो जाता है और धर्म अधर्म में भेद नहीं कर पाता।

पूँजी के तन्त्रीकरण केलिए यह एक बुरी ख़बर है कि पैसे से खुशी नहीं खरीदी जा सकती। हालाँकि पूँजी के तन्त्र ने सारे मानवीय, पारिवारिक और भावनात्मक संबंधों को भी नग्न स्वार्थ, विनिमय और धन के संबंधों में बदल

दिया है। संपन्न राष्ट्रों की कतार में बैठने की हसरत रखनेवाले भारत और चीन जिस गति से अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारवाद की गिरफ़्त में आए है, उतने ही वहाँ के शहरी युवाओं की सतह पर दिखानेवाली प्रसन्नता बढ़ी है 'क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पश्चिमी समृद्धि से मिलने वाला देहिक आराम चाहता है। सबको लक्सेस गाड़ी, घर में बिजली, नल में पानी, साफ सुधरा बाथरूम और रेफ्रिजरेटर चाहिए।'(१) इन तमाम दावों व सुविधाओं के बावजूद अल्पसंख्यकों की हालत अब भी बदत्तर बनी हुई है। अतः देश में अल्पसंख्यकों पर अत्याचार की घटनाएँ ज़ारी है। ऐसे में असगर वजहात की निम्नांकित कहानियाँ हमें विचारने केलिए मज़बूर करती है।

४.४.३.१. गिरफ़्त

'गिरफ़्त' कहानी में उन्होंने भूमण्डलीकरण की साजिशों को उद्घाटित किया है। आजकल संसार बाज़ारीकृत होता जा रहा है। चूँकि सब कहीं पूँजी को बेटोरने की कामना है। समाज का प्रत्येक क्षेत्र इस बाज़ार की गिरफ़्त से मुक्त नहीं रह गया है। अस्पताल भी इसकेलिए आपवाद नहीं।

लेखक ने कहानी के प्रारंभ में भारतवर्ष की बेबुनियाद महानता का बखान बहुत ही व्यंग्यात्मक ढंग से किया है। हमारे देश की हर चीज़ महान है। हमारी परम्पराएँ भी महान है। हमारी महान परम्पराओं में एक परम्परा यह भी है कि सभी दिवंगत जनों को हम महान समझते हैं। मसलन, मल्लू। मल्लू निम्नवर्ग का प्रतिनिधि है जो पूँजी केलिए कुछ भी करने को तैयार है।

कहानी का केन्द्र पात्र मल्लू हेराफेरी से दिन काटता था और हेराफेरी न

---

(१) बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ - प्रभा खेतान, पृ - १४

चल पाती तो खून बेचता था। जिस दिन वह खून बेचता था उस दिन पूरा अद्ध पीता था और उसकी ताकत अपनी पत्नी को मारने - कूटने और बच्चों को गालियाँ देने में निकलती थी। किसी ने उसे समझा दिया था कि शराब में बड़ी ताकत होती है। मोहल्ले वालों से भी वह बराबर लड़ता था। लेकिन खून देने के दौरान मल्लू मर गया। हालाँकि मरने के बाद मल्लू महान हो गया। नेक इनसान बन गया। चूँकि भारतवर्ष में मरने के उपरान्त बुरे लोगों को भी अच्छे घोषित करते है।

कहानी में राजनेता की पुण्य तिथि पर रक्तदान शिबिर आयोजित करने की बात कही है। दिल्ली में व्यापक शिबिर एक सरकारी अस्पताल की ओ. पी. ड़ी में लगाया गया। इसकेलिए झंकिला, गलते, सजावटी गेट, बन्दनवार झण्डियाँ, झण्डे, गमले लगाये गए। ओ.पी.डी. मरीज़ों केलिए बन्द कर दी गई। शिबिर को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा देने केलिए दूरदर्शन की विशेष कैमरा टीम आ गई। विदेशी समाचार एजेन्सियों की टीमें एकत्रित हुई और गोरे संवाददाताओं ने रंग जमा दिया। ब्लैक कैट आ गए। ऊँचे अधिकारी आ गए।

रक्तदान शिबिर का उद्‌घाटन लघु - उप - राज्य मन्त्रीजी के द्वारा संपन्न होना है। ऐसे में खून देनेवाले स्वयंसेवक सफेद झलझलाते कुर्तो पाजामों और चमचमाती मारुति कारों में आए। उनमें खून देने का इतना उत्साह था कि पोर-पोर से खून टपक पड़ता था। वैसे तो उनके शरीर में इतना खून था कि पूरे देश को दिया जा सकता था। यानी वे मुस्टंडे हट्टे - कट्टे, खाए - पिए, सांडों जैसे लग रहे थे। उनके आने के पीछे यही उद्देश्य था कि वे विश्व भर जाना जाए। खून देने का बहाना देकर दुनिया के सामने अपने को बड़ा उदारी

घोषित करना। बहरहाल लघु - उप - राज्य मन्त्री के आने से पहले एक विदेशी मन्त्री आ पहूँचे और पिछली सीट से गीताजी उतरी। वह एक उभरते हुए उद्योगपति की दूसरी पत्नी थी। उसे कुत्ते पालने और राजनीति का शौक था।

रक्तदान शिबिर में गीताजी रक्त देने के बहाने आयी थी। मन्त्रीजी की उपस्थिति में गीता ने रक्त दिया। दूरदर्शन वालों ने छायांकन किया। मन्त्रीजी के जाने के बाद जब गीताजी जाने ही वाली थी उसे ख़बर मिली कि स्वयं प्रधानमन्त्री शिबिर में आनेवाले हैं। यह सुनते ही गीताजी अस्पताल के अन्दर की ओर भागी और उसने दुबारा रक्त देने की इच्छा प्रकट की। लेकिन डॉक्टर एक क्षण सोच में पड़े। उसने मल्लू को बुलाया।

मन्त्रीजी सबसे पहले गीताजी के बेड के पास आए। आडियो, वीडियो, आदि सब तरह के कैमरे चले। प्रधान मन्त्री ने फूलों का एक गुलदस्ता गीजाती को भेंट किया। गीताजी ने हाथ जोड़े। वस्तुतः वे खून देने का नाटक कर रही थी। नीचे मल्लू लेटा हुआ था। चादर से सब कुछ ढ़का हुआ था। लगता यही था कि टम-टम बोतल में गिरनेवाला खून मल्लू का नहीं बल्कि गीता का है।

दरअसल प्रस्तुत कहानी पूँजी की गिरफ़्त में पडे अस्पतालवालों, सरकारी कार्यालयों, राजनेताओं, स्वयंसेवकों व साधारण जनता पर व्यंग्य करती है। पूँजी के इस दिखावे तन्त्र में प्रमुख भूमिका अदा करते है - डॉक्टर, मन्त्री, चपरासी, गीताजी आदि। धन, प्रतिष्ठा, यश आदि की हविस में हमारा देश विघटन के कगार पर है। पर गीताजी का कथन 'आप भी अजीब डॉक्टर है। विज्ञान के इस युग में आप असम्भव शब्द पर विश्वास करते हैं..... लानत है आप पर और आपके विज्ञान पर.... '[१] ही ऐसे व्यक्तियों को समान प्रोत्साहन देता है।

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - २९-३०

४.४.३.२. विकसित देश की पहचान

'विकसित देश की पहचान' में कहानीकार ने ऐसे ही एक अहम मुद्दे को उठाया है। भारत जैसे विकासशील राज्यों के, अमरीका जैसे विकसित देशों का अन्धानुकरण करने की मानसिकता पर व्यंग्य किया है। विकसित देश लगातार अपने वर्चस्व व वजूद बनाये रखने केलिए; अपना नंगापन ढ़कने केलिए हथियारों का निर्माण करते हैं। भारत में भुखमरी मिटाने के बगैर सरकार नये - नये हथियारों के निर्माण में पूरा का पैसा खर्च करती है। इस पर व्यंग्य किया गया है। भूमण्डलीकरण के इस ज़माने में 'फास्ट फुड़' की माँग बढ़ गई है। जिससे बच्चे युवक, तथा बूढ़े अन्यान्य रोगों से भी पीडित हैं। विकसित देशों में बच्चे पैदा नहीं होते, बल्कि जवान पैदा होते हैं, और जो पैदा होते ही काम करना शुरू कर देते हैं। विकसित देशों में सब अपने-अपने ग्लोबल वेल्ड में जीते हैं। वहाँ आत्मीयता की गुंजाइश तक नहीं रहती। विकसित देश सैनिक बल द्वारा ही मानव अधिकारों की रक्षा करते हैं।

४.४.३.३. नाच

'नाच' कहानी में उन्होंने बन्दर और बन्दर नचानेवाले के द्वारा आदमी को बन्दर बनानेवाले सामज पर व्यंग्य किया है। हमारी परम्परागत मान्यताएँ आज बदल गई है। ऐसे में सामाजिक आर्थिक बदलावों के बीच तनाव की अनगिनत वजहें पैदा हो रही है। लिहाज़ा कल्चर के पैमाने बदल रहे हैं जो आज अमानवीयता को बरकरार रखती है। जिन चीज़ों में पहले लोगों की रुचि थी अब उसके विकृत रूप ही दूसरों को मनपसन्द लगना शुरू हुआ है। मसलन

बन्दर के खेल की जगह बन्दर नचानेवाले की क्रीड़ाएँ देखने लोग इकट्टे होते हैं। दरअसल मनोरंजन के कोई भी खेल जो पहले मानवीयता का संवहन करता था, आज उसमें नर हिंसा का बोलबाला है। आज की सभ्यता मानव को बन्दर की तरह नचाने में है। वहाँ व्यक्ति की पीड़ा, टीस, कसक आदि केलिए कोई स्थान नहीं रह गया है। चूँकि आज भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार बन गया है। सार्वजनिक खेलों में ऐसी विषैले, हानिकारक बातों की भरमार है जिसका खारिज करना चाहिए।

४.४.३.४.श्री. टी. पी. देव की कहानियाँ

'श्री. टी. पी. देव की कहानियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत जो भी कहानियाँ आती है विशेष उल्लेखनीय है। जिनमें आज की भारतीय संस्कृति की विडम्बनात्मक पक्षों पर व्यंग्य है। उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ में प्रतिरोध उत्पन्न करनेवाली है ये कहानियाँ। आज के इस नव उपनिवेशी दौर में व्यक्ति अपने से बहुत दूर है। मनुष्य किस प्रकार अपनी परिस्थितियों से काटा हुआ है, इसका चित्रण यहाँ मिलता है। प्रतियोगिता वृत्ति आज बढ़ गई है। महत्वाकांक्षा में नैतिकता का ह्रास हुआ है। अतः ज़िन्दगी जीने की रफ़्तार में वह अपनी निजी ज़िन्दगी के सुखद अंशों से काफी दूर भड़क रहा है।

दूसरी में, किस प्रकार मनुष्य टी.वी. जैसे प्रौद्योगिक सुविधाओं के गुलाम बन गए हैं, इस पर व्यंग्य है। विज्ञापन हमारे इस भूमण्डलीय माहौल का अपरिहार्य अंग बन गया है। इसके सिवाय जीना बेहाल है। तीसरी कहानी के

द्वारा उन्होंने मनुष्य के मन में छिपी ओहदा प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा का जिक्र किया है। पार्क में एक खाली बेंच को देखकर श्री. टी. पी. देव की प्रतिक्रिया इस बात को उजागर करती है। चौथी, आज संबन्धों में काफी दरारे पड़ गयी है। गौरतलब है कि व्यक्ति स्वयं अपने से काफी दूर है। वह अपने को सही रूप में पहचानने में सक्षम नहीं है। आगे की कहानियों में भी उनका कहना है कि मानव अर्थ - केन्द्रित ज़्यादा बन गया है। उसकी प्रत्येक चेष्टा में व्यापारीकरण की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है।

४.४.३.५. आग

'आग' कहानी में भुखमरी से पीड़ित एक परिवार का चित्रण है जोकि एक प्रतीकात्मक कहानी है। घर में आग लगी है, जैसी ख़बर सुनकर बुद्धिजीवी, लेखक, पत्रकार, आदि आये, अपना दुःख प्रकट किया और चला गया। दमकल वाले आये, चिन्ता में डूबे - 'यह आग इसी तरह लगी रहे इसी में देश की भलाई है। इसी बातचीत के बीच वहाँ विशेषज्ञों का दल आ पहुँचे। वे आग देखकर बोले - 'इतनी विराट आग इसका तो निर्यात हो सकता है।'(१) विदेशी मुद्रा आ सकती है और यह आग खाड़ी देशों में भेजी जा सकती है।

यहाँ मनुष्य की उपभोक्तावादी वृत्ति का चित्र खींचा है। भूख से पीडित आदमी को देखकर भी किसी के दिल में संवेदना नहीं जागती। बल्कि वे उसकी भूख को भी उपभोग में बदलने की तड़प में है। भूमण्डलीकरण के चलते आम आदमी की हालत बद से बदत्तर है।

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - ४६

४.४.३.६. सरगम कोला

इसमें आभिजात्य वर्ग की सभ्यता एवं संस्कृति पर व्यंग्य किया है। आज के इस भूमण्डलीकृत युग में कला - संस्कृति पर भी बाज़ार हावी है। अतः फिलहाल भारतीय कला और संस्कृति का जिम्मा उन्हीं लोगों ने ले रखा है जो भ्रष्ट तरीके से पैसा कमाते हैं। कला संस्कृति को भी इन्होंने पैसा कमाने का एक ज़रिया बना लिया है। जिन लोगों की दिलचस्पी दरअसल भारतीय कला व संस्कृति में है, उन्हें इससे दूर रखा जा रहा है।

जैसे कुत्तों केलिए कातिक का मौसम होता है वैसे ही कला और संस्कृति केलिए जाड़े का मौसम होता है। अर्थात् जाड़ा कला और संस्कृति का मौसम माना जाता है। ऐसे वातावरण में लोग कला और संस्कृति में डूब जाते हैं। कला और संस्कृति लोगों में डूब जाती है।

'ये साला निकल रहा है आर्ट सेन्टर का डायरेक्टर। पेंटिंग बेच बेचकर कोठियाँ खड़ी कर ली। अब सेनीटरी फिटिंग का कारोबार डाल रखा है। यही साले आर्ट कल्चर करते हैं। क्योंकि इनको पब्लिक रिलेशन का काम सबसे अच्छा आता है। पार्टियाँ देने हैं। एक हाथ से लगाते हैं, दूसरे से कमाते हैं.......लड़की सप्लाई करने से लेकर वोट खरीदने तक का धंधे जानते हैं.......'। [१] यहाँ कहानीकार ने आभिजात्य संस्कृति पर व्यंग्य करने के साथ - साथ भारतीय कला और संस्कृति की आड़ में भ्रष्ट आचरण करनेवाले लोगों को बेनकाब किया है।

---

(१) उनका डर, तथा अन्य कहानियाँ - असग़र वजाहत, पृ - ७७

४.४.४. नारी की बेबसी की अभिव्यक्ति करनेवाली कहानियाँ

असल में आज भी मर्द स्त्रियों के प्रति परम्परागत सोच के शिकार हैं। वे औरतों को शारीरिक और भावनात्मक रूप से कमज़ोर समझते हैं और उन्हें जीतने में विश्वास रखते हैं। औरतों को अपनी ओर अकर्षित कर लेना पौरुष की एक कसौटी मान ली गई है जबकि आज स्त्री अपने शरीर और मन के सीमित दायरे से बाहर निकल गई है। वह पुरुष से पराजित होने को स्त्रीत्व की सार्थकता नहीं समझती। अतः वह सृष्टि की स्वतन्त्र इकाई के रूप में अपनी क्षमता, अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर अपनी ज़िन्दगी जीना चाहती है। हालाँकि पुरुष - स्वामित्ववादी मानसिकता की कुण्ठाओं का उसे पर्याप्त शिकार होना पड़ता है। प्रसिद्ध लेखिका रमणिका गुप्ता की प्रतिक्रिया है 'मातृसत्ता की समाप्ति के बाद स्त्री की गुलामी पितृसत्ता का परिणाम है। विवाह उस गुलामी की शुरुआत है तो पारिवारिक बन्धन उसका पिंजड़ा है, जिसमें वह केवल सदियों से अनुशासन के नाम पर कैद है।'[१]

सही है कि तमाम वैज्ञानिक व तकनीकी विकासों के बावजूद स्त्री के प्रति ज़्यादतियाँ बढ़ती ही रहती है। अतः बेटियों केलिए आज भी ज़माना नहीं बदला जो कि बेटी के जन्म पर मातम मनाता है। पाखंड से भरा है वह समाज जो देवी के भक्त है किन्तु कन्या रूपी देवी का निरादर करता है। पारिवारिक प्रताड़ना की पीड़ा, पति की उपेक्षा, सांस के तानों व बच्चियों के भविष्य की पीड़ा ने स्त्री को विचलित कर दिया है। पूँजी के तन्त्र में उसे हमेशा जकड़ना पड़ता है। फिलहाल भूमंडलीकरण के नये साम्राज्यवादी पूँजीवादी दौर में उसे

---

(१) रमणिका गुप्ता - 'दलित स्त्री का कब्जाकरण', कथादेश, जुलाई २००३, पृ - ६३

पूर्णरूपेण मानवद्रोही साजिशों का शिकार बनना पड़ता है। वस्तुतः 'दहेज हत्या भी एक पूँजीवादी परिघटना है, पर एक भारतीय पूँजीवादी परिघटना।' [(१)]

असग़र वजाहत की लेखनी स्त्री के प्रति होनेवाले अवमूल्यन की समस्या को भी स्पर्श करती है। गौरतलब है कि उन्होंने स्त्री को किसी संप्रदाय के तहत रखकर आँका नहीं बल्कि सामाजिक प्राणि होने के नाते उसके ऊपर होनेवाले अत्याचारों एवं अन्यायों के बरखिलाफ़ विद्रोह किया है। उनके अनुसार समाज में स्त्री की बदहालत का ज़िम्मेदार भ्रष्ट व्यवस्था ही नहीं, उसके प्रति मौजूद पूर्वग्रह की रूढ़िगत मान्यता भी है। उनकी 'लड़कियाँ', 'अपनी अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास' और 'ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ' शीर्षक कहानियाँ इस लिहाज़ से चर्चा के काबिल है।

४.४.४.१. लड़कियाँ

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के प्रति ज़्यादतियाँ बढ़ रही है। पाखण्ड से भरा है यह समाज जहाँ बेटी को जन्म देने के जुर्म में माँ - बाप को दण्ड स्वरूप दहेज देना ही पड़ता है। फिलहाल दहेज लेना प्रतिष्ठा का कारण माना जाता है।

यह कहानी मात्र श्यामा की ही नहीं, तमाम नवविवाहित महिलाओं की है जिन्हें दहेज के लालच में जलाकर मार दिया गया है। माँ - बाप अपनी लड़कियों को पूरा का पूरा धन सौंपकर कन्या दान कर देते हैं। मगर धन की हविश में उसे पति तथा उनके परिवार द्वारा दुतकार ही मिलता है। पति को परमेश्वर का पद देनेवाले हमारे समाज में स्त्रियों के प्रति ज़्यादतियाँ बरकरार

---

(१) दुर्ग द्वार पर दस्तक - कात्यायनी, पृ - १४५

है। सारी दुनिया इस मसले से अवगत होने के बावजूद कानून चुप है। उत्तर भारत में आज भी लड़कियों को पैदा होते ही मार डालते हैं।

श्यामा की लाश जब अपना बयान देने अदालत जाती है तब उसकी शिकायत को बेबुनियाद साबित किया जाता है। अतः उसे इन्साफ नहीं मिलता। अपने साथ किये हुए अन्याय का भोक्ता होने पर भी उसकी बात सुनने केलिए कोई भी तैयार नहीं होता। ज़ाहिर है स्त्री शाक्तीकरण का ढ़िंढ़ोरा पीटनेवाला समाज आखिर स्त्री की बदहालत की खत्मा केलिए कुछ भी नहीं करते।

अख़बार वाले आज झूठ व अप्रासंगिक बातों को ही वरीयता देने लगे हैं। ऐसी खबरों को ही पहले पन्ने में स्थान देते हैं। आम आदमी की समस्या व परेशानी उनकेलिए नगण्य है। आज समाचार पत्रों में विज्ञापनों को ही प्रमुखता मिलती है। विकसित देश की श्रेणी में पहूँचने की फिराक में नारी समस्या व दलित समस्या देश केलिए नगण्य है   चाँद पर रोकेट भेजना, सैनिक बल मज़बूत करना, फिल्मी दुनिया को उबारना आदि के बदले।

शासन तन्त्र स्त्रियों के प्रति होनेवाले अन्यायों के प्रति खामोश है। प्रधानमन्त्री स्त्री शाक्तीकरण के लिहाज़ से बेखयाल है, चूँकि वे मन्त्रीमण्डल के अन्य सदस्यों द्वारा खींचा गया लकीर मात्र है। इसलिए उनके पास कोई ठोस जवाब नहीं रहता। श्यामा की जली लाश जब बाज़ार से गुज़र रही थी, तो लोग अफसोस प्रकट कर रहे थे कि बेचारी को जला कर मार डाला। उनकी प्रतिक्रिया देखिए 'तो फिर लड़की पैदा ही क्यों की? इससे अच्छा था, एक मारुति पैदा कर देता'। [१] चूँकि एक मारुति की लालच में ससुराल वालों ने

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १२९

उसे जला दिया था। लेकिन लोगों केलिए यह एक नयी खबर नहीं है।

श्यामा की जली लाश इन्साफ केलिए भड़कती रही। पुलिस थाने में हो या अदालत में, अखबार के दफ़्तर में हो या प्रधानमन्त्री के सचिवालय में, उसे कहीं भी न्याय नहीं मिला। कहानीकार ने अखिरकार यह साबित किया है कि भगवान् के पास भी श्यामा केलिए इन्साफ नहीं। उन्होंने भी बहती गंगा में हाथ धोया। उन्होंने श्यामा से कहा 'पति परमेश्वर होते हैं। वे जलते नही, जलाते हैं।'(१) कहानीकार ने स्त्रियों के प्रति हमारे समाज में विद्यमान पूर्व मान्यता पर व्यंग्य किया है। पति चाहे जितने भी निठल्ले व अत्याचारी हो उसे समाज में ईश्वर का दर्जा निर्धारित करने वाली रुढ़िगत मान्यता पर व्यंग्य है। लिहाज़ा सदियों से स्त्रियों के ऊपर दबाव जारी है। श्यामा की जली लाश जब मानव अधिकार समिति के पास पहूँचती है तब वे 'जघन्य पाप' कहकर अपना अफ़सोस प्रकट करते हैं। जो हमेशा करते हैं चूँकि वाचिक प्रतिरोध आसान है।

४.४.४.२. अपनी अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास

कहानी एक लो बजट फिल्म के निर्माण के बहाने नारियों के सांस्कृतिक विकास में बाधा डालनेवाले पुरुष समाज पर व्यंग्य है। कहानीकार की साफ समझ है कि पति हमेशा अपनी पत्नी के मानसिक व शारीरिक पक्ष को अविकसित मानते हैं। वे स्त्री की सांस्कृतिक ऐतिहासिक व सामाजिक तिलिस्म को तोड़ने का दावा करते हुए भी उसको अन्दर ही अन्दर दबाव देते हैं। स्त्री को चाहार दीवारी में कैद कर रखने की उनकी लालसा अब भी जारी है।

कहानी में नारियों की सांस्कृतिक विकास में प्रोत्साहन देने का दावा करने

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - १३१

वाले मलकानी का जिक्र है। लेकिन वाचक को आखिर पता चला कि वे अपनी बीबी को घर और बेड्रूम के सीमित दायरे में कैद कर उसके सांस्कृतिक विकास में कुठाराघात करते हैं।

कहानी में व्यंग्य है कि यह सब स्त्री केलिए श्रृंखला की कड़ियाँ नहीं है तो और कुछ नहीं है। चूँकि पुरुष कभी भी स्त्री को मनुष्य की दर पर देखने को मंज़ूर नहीं हैं। वह उसे अपने पैरों तले दबाना ही चाहते हैं। अक्सर उसकी देह का फैसला पिता पति पुत्र ही करते हैं और यदि वह घर से बाहर निकलती है तो वह देह के सिवाय कुछ भी नहीं। वह पुरुष की लोलुप प्रवृत्ति को ललचाने केलिए एक टुक्कड़ी मात्र रह जाती है।

४.४.४.३. ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ

'ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ' भी इस लिहाज़ से उल्लेखनीय है। यह उत्तर आधुनिक दौर की कहानी है। इसमें कहानीकार स्त्री की बदहालती व बदनसीबी का चित्रण करने के साथ - साथ पुरुष समाज केलिए एक चेतावनी भी ज़ाहिर करते हैं।

पितृसत्तात्मक स्वेच्छाचारिता को स्त्री भुगत ही रही है और उपभोक्ता संस्कृति की नई नग्न निरंकुशता का भी वह शिकार बनती है। भौतिक स्वार्थ और विवाह के वाणिज्यिक लाभों के घेरे में वह छटपटा रही है। नारी - द्रोही और पुरुष वर्चस्ववादी दृष्टिकोण ही इन सबके मूल में है। बहरहाल पुरुष वर्चस्वादी दृष्टिकोण व बाज़ार - उपनिवेशवाद की संस्कृति के तहत स्त्री का पण्यकरण ही हो रहा है। ऐसे में यह कहानी एक चुनौती है - 'आज कल संसार

में रहनेवाले आदमियों, तुम्हारे, पास और कुछ हो न हो, पुरुषत्व नहीं है। जबकि ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ, लड़कियाँ है, पर वे संसार में नहीं है।'[१] अर्थात् नारी की गैर हाज़िरी में पुरुषत्व ही मिट जाएगा।

कुंठा, निराशा, हताशा, दर्द के हर दौर से गुज़र कर स्वयं माँ अपनी बच्ची को बाथरूम के पाट में फ्लश करने केलिए मज़बूर होती है। अपनी बच्ची के भविष्य में आनेवाली तमाम विसंगतियों से छुटकारा दिलाने केलिए उसके पास एकमात्र उपाय ही बचा था। कहानी, सफदरजंग अस्पताल के जनरल वार्ड में अपनी तीसरी लड़की को जन्म देने वाली सरला की है। जिसके शरीर पर निकले दस बड़े-बड़े फोडे, शादी के दस साल के दौरान ससुरालवालों द्वारा प्रताड़ित होने का सबूत भी है। उसके तन पर ही नहीं, उसकी संवेदनाओं पर भी गहरे - गहरे ज़ख्म थे, अपमान, हिंसा, उपेक्षा और बर्बरता के निशान थे। यही नहीं दहेज के लालच में उसके पति जगदीश्वर ने सरला का काम तमाम कर दिया और यह साबित कर दिया कि तेल न होने के बावजूद 'स्टोव' फटा और इस तरह फटा कि सरला सौ प्रतिशत जल गई।

सरला के घर वालों ने मुक़दमा चलाने की अभिलाषा न रखी। चूँकि बड़े दो भाई अपने - अपने काम में व्यस्थ थे। अकेले, हाई ब्लर्ड प्रेशर का रोगी पिता, अपनी दूसरी ब्याहनेवाली बेटी की चिन्ता से मुकदमेबाज़ बनना नहीं चाहता था। इसलिए वे पुलिस में बयान देते हैं कि यह वास्तव में दुर्घटना थी।

ज़ाहिर है स्त्री के साथ हमेशा अन्याय व अनीति ही होते हैं। अपने साथ होनेवाली ज़्यादतियों से अपनी बेटी को बचाने की खातिर स्वयं माँ को भी अपनी बच्ची का गला घोंटना पड़ता है। अतएव यह कहानी हमसे प्रश्न करती

(१) हंस - मार्च २००६, पृ - १५

है कि क्या अपनी बच्ची के साथ ऐसा कठोर निर्णय लेनेकेलिए दोषी सिर्फ माँ ही है? या वह पूरा समाज है जो अपने आपको श्रेष्ठ वर्ण का कहता है, लेकिन बेटी के जन्म को अशुभ मानता है? अदालत में सरला का बयान सटीक था

'मैंने बच्ची को 'पाट' में डाल कर फ्लश चला दिया था,
अपनी बच्ची के सुन्दर भविष्य केलिए किया था और माँ-बाप का काम अपने बच्चों के भविष्य को सुधारना है।'[१]

४.४.५. अन्य सामाजिक समस्याओं से जुड़ी कहानियाँ

उपर्युक्त कहानियों के अतिरिक्त इन्होंने अन्य ऐसी कुछ कहानियाँ भी लिखी है जो सामाजिक चेतना से जुडी हुई है।

४.४.५.१. ज़िम्मेवारी

जो कृषि संस्कृति सदियों से भारत की संस्कृति बनी रही, आज औद्योगिक भारत उसे अपने पाँवों की जूती भी नहीं समझता। अभी कुछ दिन पहले तक हमारे लोकतन्त्र में किसानों की भागीदारी ऐसी थी कि कोई भी दल इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। किसानों के इस तरह हाशिए पर चले या धकेल दिये जाने का मुख्य कारण है नई अर्थनीति के चलते खेती की उत्पादकता और लाभ में आ रही निरन्तर कमी। इन सबके बदौलत कोलकत्ता के नन्दीग्राम, उड़ीसा के विदर्भ तथा उत्तरप्रदेश के बुन्देलखण्ड इलाके में सूखे के कारण अभी ढ़ाई सौ से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। इन परिघटनाओं के पीछे कृषि संस्कृति का संकट है। फिलहाल किसान बेमौत मर

---

(१) हंस - मार्च २००६, पृ - १४

रहे है चूँकि राजनेता विदेशियों को उनकी पैदावर लूटने का मौका देकर कुछ डॉलर कमा रहे है। कृषि प्रधान देश के भी मन्त्रीगण किसानों का ध्यान नहीं रखते। अन्न का बाज़ार दूसरों केलिए छोड देते हैं।

असग़र वजाहत की 'ज़िम्मेवारी' कहानी इस जघन्य पाप केलिए ज़िम्मेवार हमारे सरकार, संविधान व प्रशासन तन्त्र की पोल खोलती है जिसमें दुलीराम ने अपने परिवार के साथ आत्महत्या की थी।

४.४.५.२. ऊसर में बबूल

प्रस्तुत कहानी जनवादी कहानी आन्दोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जहाँ जनता प्रतिरोध का अभियान चलाती है। सामन्तों और गरीबों की जो आज की स्थिति है जिसमें गरीब तबका सामन्तों को अब खुलकर प्रतिरोध कर रहा है, इसी प्रतिरोध को कहानीकार ने यहाँ उजागर किया है।

सिड़कू की माँ गरीबी के चलते नंबरी (मालिक)के घर न केवल जी तोड़ मेहनत करती है, बल्कि उसकी काम वासना का शिकार भी बनती है। हालाँकि वह मूकसाध अपने ऊपर होनेवाली ज़्यादतियों को झेलती है। चूँकि यह उसकी रोज़ की ज़िन्दगी की अनिवार्य मजबूरी बन गई है। इसे वह रोते सिसकते भोग रही है। उसकेलिए इससे भी बड़ा दर्दनाक हादसा यह है कि पति और बेटे के समक्ष ही नंबरी उसके घर में घुसता है और अपनी काम वासना को चुप करता है। नंबरी उसकी कुटाई करता रहते है, जबकि पतिदेव (मढ़कू) दूर खड़ा खीसे निपोरता रहता है। उसका बेटा सिड़कू पहले पहल निस्सहाय यह सब देखता रहा। मढ़कू से जब उसका बेटा सिड़कू इसकी वजह पूछता है तो जवाब में वह

उसे थप्पड़ मार देता है। साथ ही साथ उसके मन में यह सवाल बार-बार उठता है कि बाबू कुछ नहीं बोलता। नम्बरी अम्मा को क्यों मारता है? काम तो वह जी तोड़ करती है। तीनों के पेट भराने का कार्य अम्मा ही करती है।

सिड़कू का पिता मढ़कू नम्बरी की हलवाही करता है। वह नम्बरी के जानवर चराता है। सिड़कू के मन में अपने पिता के निठल्ले व्यक्तित्व के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है। उसके मन में नम्बरी से प्रतिशोध लेने की बेचैनी है। नंबरी के खिलाफ कुछ करने केलिए वह अपने बाप को साथ में लेना चाहता है। उसका एकमात्र लक्ष्य होता है नंबरी के अत्याचार का बदला लेना। नंबरी के बैलों को धतूरे का बीज खिलाकर, उसकी गुड़ से लदी गाड़ी को नदी में डुबाकर और ईख का खेत नष्ट कर सिड़कू नंबरी से बदला लेता है। यहाँ सिड़कू जैसे संवेदनशील युवक का नंबरी जैसे अत्याचारी लोगों से प्रतिरोध करना दलितों का अपने हक केलिए लड़ना है। अपने प्रति होनेवाले शोषण से अवगत होना है। सिड़कू का आत्मविश्वास ही उसके अभियान की नींव है। कहानी में कोई वाचिक प्रतिशोध नहीं है। लेकिन सिड़कू की प्रतिक्रिया उसकी गहराई में ही सही, किसी भी पीड़ित स्थिति का एहसास ही है।

मढ़कू यद्यपि अपनी बीबी के साथ होनेवाली ज़्यादतियों को अपनी निजी ज़िन्दगी से बिलकुल दूसरा समझता है। मगर कहानी के अन्त में अपने बेटे का व्यवहार जो कि अपने मालिक को नुकसान पहूँचाना कहीं भी बर्दाश्त नहीं करता। वहाँ मढ़कू अपने बेटे को ज़ोर का थप्पड़ मार देते हैं। आखिरकार सिड़कू का अपनी लाठी से बाप को मारना भी इसी का परिणाम है। लाठी उसके आत्मविश्वास का परिचायक बन जाता है। वह गाँव के दूसरे हमउम्र

युवकों को अपने साथ लेना चाहता है। उसका उद्देश्य है - नंबरी के अत्याचार का बदला लेना। बिना हथियार बन्द होकर हम अन्याय का सामना नहीं कर सकता। अतः गाँधीजी का अहिंसात्मक प्रतिरोध केलिए शायद यह कहानी जवाबदेह नहीं है। जनवादी आन्दोलन मार्क्सवाद के साम्यवाद पर निर्भर है। वहाँ धर्म की रक्षा केलिए किसी भी प्रकार की आक्रमण प्रवृत्ति को लेना इसलिए वाजिब टहरता है।

४.४.५.३. आठवाँ आश्चर्य

'आठवाँ आश्चर्य' में ताजमहल की यात्रा करने वाले कतिपय लोगों का संकेत है। वाचक सपरिवार अपनी बेटी की पढ़ाई के संबन्ध में ताजमहल देखने आगरा गये। कंडेक्टेड टुअर के गाइड, यात्रियों व विदेशी पर्याटकों, को लुभाने केलिए मुगल शासकों की कमज़ोरियों को ऊपर दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। कहानी में युवा पीढ़ी के ज़रिए विदेशी सभ्यता का अन्धानुकरण करने पर व्यंग्य है।

नव-युगल भी इस डुअर में शामिल थे। कहानी में ये दोनों बड़ी हाई-फाई मुद्रा में दिखाई पड़ते थे। अतः वे पहनावे और धन से तो अल्ट्रा मॉर्डन दिख रहे थे, दिल्ली महानगर के उत्तर आधुनिकों के बतौर आपस में अंग्रेज़ी बोल भी रहे थे। लड़की, लड़के से ज़्यादा होशियार दीख रही थी। वह बैग से पानी की बोतल निकालती है और विदेशियों की तरह होंठ तर करने लगती है। खाते वक्त भी वे विदेशियों के जैसे बर्ताव करते थे। दोपहर के समय कॉफ़ी के साथ सैंडविच ले रहे थे और ताजमहल देखकर विदेशी पर्यटकों की तरह खुश हो रहे थे।

प्रस्तुत कहानी जीवन में साधारणता या सहजता की माँग करती है। यानी कि आदमी अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहे। बनावटीपन, बड़बोलापन, अतिरंजना इत्यादि को लेखक जीवन में कोई स्थान नहीं देता बल्कि उन्हें चिढ़ है 'अंग्रेज़ों का ठीक है, जो चाहें करें हमसे मतलब क्या? लेकिन यार, अपने बन्दे यानी हिन्दुस्तानी भाई इस तरह के चुतियापे में पड़ जाएँ तो तकलीफ़ तो होती ही है।'(१)

४.४.५.४. पन्नू

'पन्नू' में वाचक अपने सहपाठी पन्नू की कहानी बताता चलता है जो कि दसवीं तक उसका पक्का दोस्त था। उसने ही वाचक को पहले पहल बीडी पिलाई थी। बहुत दिनों बाद पन्नू से वाचक की मुलाकात हुई। पन्नू वाचक को देखने स्वयं उनके दफ़्तर पहूँचे थे। वहाँ तो वाचक बेकार बैठा था। पब्लिक सेक्टर में काम थोड़े ही होते हैं। उस सेक्टर के जन-संपर्क विभागाधिकारी को कोई काम नहीं है। काम नहीं है का मतलब है वे सब कमज़ोर है।

पन्नू अब बहुत सुधर - गया है। करोड़पती बनने के बाद भी वह अपने पुरानी आदतों को नहीं छोड़ता। पढ़ते वक्त अंजली नामक लड़की से वह प्यार करता था, लेकिन कभी भी उससे कहने का (प्यार का इज़हार करने का) धीरज नहीं बाँध सका। इतने सालों बाद वह वाचक से अंजली को देखने की इच्छा प्रकट करता है। वाचक उसकी सहायता भी करता है। लेकिन अब की बार भी वह अपनी कमज़ोरियों से उबरा नहीं।

कहानी पन्नू के माध्यम से मानव स्वभाव के उस पक्ष को दिखाने का

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ -३४

यत्न करती है कि आदमी बाहर से कितना भी अपने को सुधरा, सभ्य रिपक्व व प्रौढ़ समझे अन्दर ही अन्दर वह अपनी कमज़ोरियों को पालता हता है।

४.४.५.५. तख़्ती

'तख़्ती' आत्मकथात्मक शैली में लिखी गयी कहानी है। इसमें लेखक अपनी पढ़ाई के समय की तस्वीर खींचते हैं।

उनके यहाँ यह धारणा ज़रूर बची रही कि लोग नौकरी करने केलिए पढ़ते है और चूँकि उनके पास अल्लाह का दिया सब कुछ है, नौकरी करने की आवश्यकता नहीं थी। अतः घर की पढ़ाई बहुत है। लेकिन उनके दादाजान की समझ में यह बात आ गई थी कि स्कूली शिक्षा ज़रूरी है। चूँकि अब के समय में ज़मींदारी नहीं है। किसी न किसी को नौकरी करनी थी। इसलिए पढ़ाई की ज़रूरत पढ़ी।

दसवीं कक्षा में यह साफ था कि गणित में वह पास नहीं होगा। इसीलिए दोस्त की सहायता से उन्होंने पहली बार नकल किया और पास हुआ। पास होने के बाद आगे की पढ़ाई की चिन्ता हुई। परिवारवालों की माँग के तहत विश्वविद्यालय में उनकी भर्ती हुई। होस्टल में रहने के कारण उन्हें काफी आज़ादी मिली। पेंटिग सीखना शुरू किया, लेकिन निपुण अध्यापक के अभाव में छोड़ दिया। विज्ञान में अरुचि की वजह से क्लास नहीं जाते थे। क्लास कट कर घूमना, चाय पीना, सिगरट पीना, शेरो शायरी में दिलचस्पी लेना,

लड़कियों को देखने केलिए मीलों चले जाना, कलाकारों जैसे कपड़े पहनना, किराये की साइकिल पर शहर की वर्जित सड़कों का चक्कर काटना आदि कार्यों में मन फेरता था।

किसी भी विश्वविद्यालय की यह विशेषता होती है कि जो उससे चिपटे रहते है वे उपकृत होते हैं। इस प्रकार चिपटे रहने की वजह से रगड़ते - रगड़ते वह बी. एस. सी पास हो गए। विश्वविद्यालय में और कुछ पढ़ने की इच्छा से उसने हिन्दी में एम. ए. किया। अन्य विषयों की तुलना में वहाँ हिन्दी की स्थिति 'अछूत' जैसी थी। लोग मानते थे कि सबसे गए - गुज़रे, सबसे बेकार या मूर्ख ही हिन्दी पढ़ते और पढ़ाते है। मतलब यह कि हिन्दी की सामाजिक स्थिति बहुत ही खराब थी। सचमुच हिन्दी पढ़ाने वाले अध्यापकों का रवैया भी कुछ ऐसा था। एक क्लास में ही हिन्दी साहित्य का इतिहास खत्म करता था। बाकी समय गप - शप में बीतता था।

लेखक ने एक सूत्र को पकड़ा कि हम सब जो कुछ कर रहे हैं उसका मतलब वह नहीं है जो है। जो नहीं है वह है। इसी सूत्र के आधार पर उन्होंने अपनी शिक्षा को जाँचा तो पता चला कि जो दिखता है वैसा नहीं है। अपने आपको भी देखा तो यही पाया। अपने परिवेश को भी पाया, जो दिखता है वह नहीं है। यही से उनकी समस्याएँ शुरू हो गई। जब से यह लगा कि उन्होंने जो कुछ भी अब तक पढ़ा है वह 'ढोंग' था तो बहुत खुशी भी हुई। अपने अध्यापकों के प्रति उनके मन में सम्मान भी जागा। क्योंकि यदि वे वास्तव में गंभीरता से पढ़ा देते तो शायद वे कहीं का न रहता।

४.४.५.६. होज वाज पापा (कैसे हो पापा?)

हंगेरियन के एक अस्पताल ही कहानी का परिवेश है। कहानी में एक बूढ़े व्यक्ति के संपर्क में आने से वाचक के जीवन में आया हुआ बदलाव आदि का चित्रण है। उस बूढ़े व्यक्ति से वे इतना उत्प्रेरित हुए कि उनकी प्रत्येक इशारे से वे अवगत हो गए। बूढ़ा चौरासी वर्ष का था और उन्हें टट्टी करने की जगह कैंसर था। ऐसे में उन्हें काफी बाढ़िया ऑपरेशन केलिए भर्ती किया गया था।

बूढ़े को वे पापा कहकर बुलाते थे। पापा संसार की जानकारी में काफी रुचि रखते थे। कहानी के अन्त में लेखक ने पापा को यूरोप की सबसे बड़ी लाटरी 'लोटो टोटो' के नम्बर भरते हुए देखा। लेखक एकदम अवाक् रह गए। चुँकि वृद्धावस्था और रोग से पीड़ित एक व्यक्ति के मन में लोटो खेलने का मंशा अजीब अहसास दिलाने वाला था। चूँकि हमारी धारणा के अनुकूल वृद्धावस्था वह समय है जहाँ पहूँचकर व्यक्ति अपने सारे ख्वाहिशों से मुक्त रहते हैं। जीवन और समाज के प्रति उसका रुझाव कम रहता है। आध्यात्मिक चिन्ता उसे मृत्यु भय से उबारता है। बहरहाल इस उम्र तक पहूँचकर व्यक्ति इच्छाओं से खाली बैठते हैं।

लेकिन वाचक अपनी युवावस्था में ही ज़िन्दगी की एकरसता, व्यस्तता आदि से ऊब गए है। लेकिन वहाँ बुढ़ापे में कैंसर जैसे रोग से लड़ते वक्त भी पापा जीवन की सफलता के नये मायने ढूँढ रहे हैं। ऐसे व्यक्ति से लेखक काफी कुछ सीखने केलिए तैयार होते हैं। जैसे कि जीवन की सफलता उसे देखने के दृष्टिकोण पर निर्भर है।

४.४.५.७. केक

यह मध्यवर्ग की झूठी शान और आशा -आंकांक्षाओं को व्यक्त करनेवाली कहानी है। कहानी के तीन पात्र है - मिसेज़ डिसूसा, डेबिड साब और वाचक। वाचक तथा डेविड साब मिसेज डिसूसा के किरायेदार है। डेविड साब प्रूफ़ रीड़िंग का काम करते हैं और वाचक जासूसी नॉवल लिखने का।

मिसेज डिसूसा के शानदार मकान में लगी तस्वीरों को जो प्रायः उनकी जवानी के दिनों की हैं, किरायेदार हटा नहीं सकता। 'किसी तस्वीर में वह मोमबत्ती के सामने बैठी किताब पढ़ रही हैं, तो किसी में अपने बाल गोद में रखे शून्य में देखने का प्रयत्न कर रही हैं। कुछ लोगों का परिचय अंग्रेज़ अफ़सर के रूप में करवाती है, पर देखने में वे सब हिन्दुस्तानी लगते हैं।'[१] मिसेज डिसूसा के ठाट का उपर्युक्त वर्णन उनकी अंग्रेज़ों के प्रति झूठी शान का संकेत है। वह खाद्य पदार्थों का नाम अंग्रेज़ी में लेती है जो कि हास्यास्पद है। जैसे रोटी को 'ब्रेड' कहती है। दाल को 'सूप', तरकारी को 'बॉयलड वेजिटेबुलस' और करेलों को 'हॉटडिश' कहती है।

डेविड साब ने अपने जन्मदिन के अवसर पर केक बनवाया था। एक महीना पुरा बजट तैयार कर लिया गया था। सब खर्च जोड़ कर कुल सत्तर रुपये होते थे। उन्हीं के अनुसार बचपन से उन्हें दो चीज़ें बहुत पसंद रही है जॉली और केक। जॉली उनकी प्रेमिका थी जिसकी शादी किसी मिलिट्री के कैप्टन से हो गयी तो वह धीरे - धीरे उसे भूलते गए। मगर केक अब भी उन्हें पसंद है। उनका केक खाने का आदी होना अंग्रेज़ी सभ्यता के प्रति झुकाव का

(१) अंधेरे से - असगर वजाहत, पृ - ६८

संकेत है। भारत में कई ईसाई परिवार है जो अंग्रेज़ों के जैसे जीवन बिताने की इच्छा रखते हैं। कहानी में मिसेज डिसूसा व डेविड साब अपने - अपने ठाट में ज़िन्दगी बिता रहे हैं। वाचक यहाँ एक निरीक्षक का काम करता है जो दोनों की ज़िन्दगी को निकट से देखता है और उनके हरकतों की निगरानी करता है। दोनों के अंग्रेज़ी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति जो लगाव है वह निश्चय ही उनके मज़हब के लोगों के जैसा ही है। मगर यहाँ कहानीकार ने ऐसे लोगों की यातना को वाणी दी है जो उस शान - शौकत को बनाये रखने में मजबूर है। प्रस्तुत कहानी समसामयिक सामाजिक संरचना की देन है।

४.४.५.८. गवाही

'गवाही' में एक ऐसे व्यक्ति से हमारा परिचय होता है जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के है। प्रोफेसर सी. सी. सूरी मध्यकालीन इतिहास के विशेषज्ञ है। इन्होंने मध्यकालीन इतिहास से जीवन - दृष्टि पाई है। यानी कि मध्यकालीन इतिहास जो षड्यन्त्रों, हत्याओं, सत्ता - लोलुप बादशाहों की निरंकुशता से पटा पड़ा है, इनकेलिए केवल शोध करने का विषय ही नहीं बल्कि जीवन जीने का एक तरीका भी है। उनके जीवन की सफलता का रहस्य भी यह है। कहानीकार ने भारत के मध्यकालीन इतिहास जो कि स्वार्थ पूर्ति में महीन था, पर व्यंग्य किया है।

जब देश का विभाजन हुआ था तो लाखों आदमी शरणार्थी हो गए थे। उधर से, यानी पंजाब से, आनेवालों में प्रोफेसर सूरी भी थे। उन्होंने हलफनामा लिया था कि उनकी सारी डिग्रियाँ - पी. एच. डी. की भी सांप्रदायिकता के

शोलों में स्वाहा हो गई है। इस तर्क को कोई काट न सका। अतः पूरे देश में पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के प्रति जो सहानुभूति का भाव था, उसका पचानबे प्रतिशत लाभ मिला सी. सी. सूरी को और वे विश्वविद्यालय में प्राध्यापक लग गए। जल्दी ही प्राध्यापक से रीडर हो गए और रीड़र से प्रोफेसर होने के जुगाड़ में जुट गए। मंत्री महोदय के निकटतम सलाहकार से दोस्ती करके आखिर वे 'इतिहास शोध केन्द्र' के निर्देशक बन गए और केन्द्र पर अपनी पकड़ जमा रखी। निर्देशक होते ही बिना किसी सिलेक्शन कमेटी को 'फेस' किए प्रोफसर हो गए। वहाँ उन्होंने एकाधिकार जमाने की हविश में कई तरकीबें ढूँढ डाला। चूँकि प्रोफेसर सूरी को अक्सर लगा करता है कि दुनिया बदली नहीं है। सैकड़ों साल पहले जो कुछ किया गया था, वही दोहराया जा रहा है। 'वही शासक है, वही प्रजा है, वही नौकरशाही है, वही आपाधापी है, वही षड्यन्त्र है, वही सत्ता की राजनीति है'। [१]

यह कहानी इन सभी की गवाही देती है। आज सर्वत्र भ्रष्टाचार फैल गया है जिसके कारण प्रोफेसर सूरी जैसे मौकापरस्तों को पनपने का सर्वाधिक मौका मिलते हैं। शोध केन्द्र के रिसर्च आफीसर श्री गुप्ता के अनुसार 'ये दुनिया है सूरी साहब, जितनी हवा भरिएगा, फूलेगी, फटेगी नहीं।'[२]

प्रोफेसर सूरी ने नई रणनीति बनाते - बनाते पूरे केन्द्र पर एकमात्र राज्य जमाया था। सभी नियुक्तियाँ प्रोफेसर सूरी के आदमियों की हो चुकी थी। उसमें के. के. गुप्ता, पी. एन. शर्मा तथा अनवर अहमद थे। अपना उल्लू सीधा करने केलिए कुछ भी करने केलिए तैयार प्रोफेसर सूरी जैसे मुनाफाखोरों से पूरे देश को खतरा है।

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - २१

(२) वही, पृ - २१

४.४.५.९.खूँटा

इसमें एक ऐसे पात्र से हमारा साक्षात्कार होता है जो अपने को बड़े साहित्यकार मानते हैं। दिल्ली की लगभग सभी साहित्यिक गतिविधियों के वे साक्षी है; साहित्यिक सेमीनारों और गोष्ठियों के वे नियमित वक्ता है। आलोचना, कविता और कथा साहित्य के वे भावी व्यक्तित्व है, कहानी के ठहराव, कविता की वापसी और आलोचना के निष्प्राण होने की चिन्ता में वे आधे से ज़्यादा घुल गए हैं। स्थापित साहित्यकारों की सृजनात्मक तथा व्यक्तिगत समस्याओं में रुचि लेनेवाले श्री साहित्येश्वर व्यावसायिक तथा अव्यवसायिक पत्रिकाओं के दफ़्तरों के पर्यटक भी है। कहानीकार ने साहित्येश्वर के ज़रिए ऐसे तमाम ख़ोख़ले साहित्यिक रुचि दिखानेवाले निकम्मे व्यक्तियों पर व्यंग्य सधा है। अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों से भ्रष्ट श्री साहित्येश्वर का दावा है कि 'वे महान साहित्यकार बनने केलिए पैदा हुए हैं और ऐसा करके वे दिखा देंगे।' (१) चूँकि वे किसी भी कीमत पर यह बर्दाश्त नहीं करेंगे कि उनके सहयोग के बिना हिन्दी साहित्य, जो दरिद्र है, पिछड़ा हुआ है, सामंती और मध्यवर्गीय संस्कारों से ग्रस्त है, का उद्धार हो जाए। अतः हिन्दी साहित्य की सेवा करने वे दिल्ली गये।

कहानीकार ने व्यंग्य प्रहार किया हैं कि आज के ज़माने में साहित्यकार बनना बहुत आसान काम है। इसलिए ही सही साहित्येश्वर जैसे निठल्ले व्यक्ति अपने खूँटे की हैसियत से साहित्यकार बनने पर आमोदा लिये हुए है। नई पीढ़ी के साहित्यकारों में ईमानदारी, लगन और निष्ठा नहीं है जो पिछली पीढ़ियों के

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - ४४

पास थे। नयी पीढ़ी के प्रत्येक सफल साहित्यकार की सफलता का राज़ है 'खूँटा' - 'अरे वह, उसने तो भाई साहब सोची - समझी स्कीम के तहत सब कुछ किया है। पहले यह था, फिर वहाँ गया, फिर लाभ देखकर यह काम किया, बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में रचनाएँ छपवाता रहा, फिर अमुक जी को पकड़ लिया और आज देखिए - स्थापित!'[१] कहानी में प्रतीकात्मक ढंग से खूँटे बनने पर व्यंग्य किया है पत्रिका निकालना आज प्रत्येक साहित्यकार का सहज कार्य बन गया है लेकिन उसमें साहित्यिक रुचि और क्षमता कहाँ तक हो इसमें यह देखने की बात है।

४.४.५.१०. चन्द्रमा के देश में

सांस्कृतिक विपन्नता तो है ही। मगर आज हम अपनी भाषा का प्रयोग बहुत कम कर रहे हैं। भाषा का संस्कार तो हम लोगों से छीन लिया गया है। 'चन्द्रमा के देश में' कहानी इस पर व्यंग्य करती है। इस मान्यता के पीछे यह धारणा रूढ़ मूल हो चुकी है कि अंग्रेज़ी सभ्य भाषा है। उसे पढ़ने और पढ़ानेवाले सभ्य हैं। इसलिए यह एक प्रकार से अपने औकात पर निर्भर भाषा बन गयी है 'अंग्रेज़ी से आदमी की इज़्जत होती है....... रुतबा पोज़ीशन पावर....... जो इज़्जत तुम्हें अंग्रेज़ी बोलकर मिलेगी वह हिन्दी या उर्दू या दीगर हिन्दुस्तानी जबानें बोलकर मिलेगी?'[१] वकील साहब का उक्त कथन उनकी दुनियादारी की ओर संकेत करता है। आज हम अपने बच्चों को मातृभाषा में इसलिए नहीं पढ़ाना चाहते कि आज उसकी हैसियत नगण्य है। शिक्षा आज एक प्रकार से धंधा बन गई है। आज की शिक्षा पद्धति

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - ५१

(२) वही, पृ - ८९

में पर्याप्त अन्तर भी आया है 'मुझे क्या मतलब लोगों से, क्या मतलब मातृभाषा से... ये तो धंधा है......... धंधा'। [१]

हर आदमी अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़वाना चाहता है। यद्यपि हम औपनिवेशिक संस्कृति को गालियाँ देते है तदापि उनकी दाद देते हैं। यह दोहरी मानसिकता है। हमें पता है कि अंग्रेज़ी हुक्मवारों की ज़बान है। हालाँकि अंग्रेज़ी तो पानी है, जैसे बिना पानी के सब सून है, वैसे ही बिना अंग्रेज़ी के सब कुछ सूना है। तो पहले हमें अपने अन्तर के संकोच को खत्म करना चाहिए। हमें भारतीयता पर या भारतीय होने पर गर्व करना चाहिए। अपनी संस्कृति, भाषा, रहन - सहन के आधार पर अपनी रुतबे को आंकना चाहिए। तभी हम औपनिवेशिक संस्कृति पर विजय पा सकेंगे। कहानीकार यही बताना चाहते हैं।

४.४.५.११. राजधानी के नीचे

'राजधानी के नीचे' में भारतीय परम्परा पर व्यंग्य है कि भारतीय सभ्यता व संस्कृति अपनी गरीबी का संवहन करने में ज़्यादा होशियार है। चूँकि संचय करने की प्रवृत्ति यहाँ ज़्यादा है।

यानी कि लाखों रुपए की रोज़गारी को गाड़ कर अपने टाट के पर्दे लगाकर जीते हैं। इसलिए विश्व में भारत की गरीबीपन प्रसिद्ध है। कहानीकार ने घोषणाओं पर भी व्यंग्य किया है कि घोषणाएँ लगातार की जाती है, लेकिन उसको अमल में नहीं लायी जाती। 'घोषणाओं, तुम क्या हो? गरीब की जोरू? वेश्या? ताश का पत्ता? धोखा? फिर तुम की क्यों जाती हो? किसकेलिए की जाती हो? घोषणाओं, तुम छलावा हो। घोषणाओं, तुम ही हमारी व्यथा हो। तुम ही अभिशाप हो।' [२]

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - ८९
(२) वही, पृ - ९७

४.४.५.१२. हरिराम और गुरु - संवाद

'हरिराम और गुरु - संवाद' कहानी व्यवस्था पर व्यंग्य करती है। एक में गुरु अपने चेले से (हरिराम) कहते हैं कि तुम्हारा जीवन बर्बाद इसलिए हो गया कि तुम्हें जीभ चलाना नहीं आता। चूँकि जीभ से पूरा मनुष्य काट जाता है, तलवार से तो मात्र गर्दन कटती है। दूसरे संवाद में बताया गया है कि भीड़ में घुसकर तमाशा न देखें तो खुद तमाशा बन जाओगे। क्रान्ति एक चिड़िया है। वह चतुर लोगों की ज़ुबान पर और सरल लोगों के दिलों में रहती है। चतुर लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, उसके गीत गाते है और समय आने पर उसे चबा जाते हैं और सरल लोगों के वह कभी हाथ नहीं आती। एक हड्डी केलिए यदि दो भूखे कुत्ते लड़ रहे हो तो सरल आदमी बीच-बचाव कराएगा और चतुर आदमी हड्डी लेकर भाग जाएगा और राजनीतिज्ञ दो भूखे कुत्तों को वहाँ छोड़ देगा। चूँकि जनता को आपस में लड़वाकर अपना वजूद निकालना ही राजनीतिज्ञों का काम है।

आदमी निरा जानवर है। वह विचारों का निर्माण करता है, उनका महल बनाता है फिर उसमें विचारता है और अन्त में विचारों को खा जाता है और फिर नए विचारों का निर्माण करता है। संसार एक चारागाह है। जहाँ वही चरता है जिसके आँखें, जीभ, बुद्धि व दुम होती है। सफलता का रहस्य असफलता है। अगर एक सुन्दर स्त्री के पीछे दो प्रेमी लड़ रहे हो तो स्त्री को तीसरे प्रेमी की तलाश करनी चाहिए, इसलिए कि स्त्री के पीछे लड़नेवाले प्रेमी नहीं हो सकते। सबसे बड़ा दर्शन चाटूकारिता है। इस तरह कि चाटूकार बड़े से बड़े

दर्शन को भी चाट जाता है। ईमानदारी आज के संदर्भ में एक भयानक जानलेना बीमारी है। पहले प्लेग, टी.वी और हैजे की तरह इसका भी कोई इलाज न था। तब ये हमारे देश में फैलती थी और लाखों लोगों को चट कर जाती थी और अब उस दवा का पता चल गया है, जिसके कारण यह बीमारी रोकी जा सकती है। अर्थात् आजकल ईमानदारी कहीं भी देखने को नहीं मिलती। सब कहीं चोरी व बेईमानी ही दीगर नज़र आता है।

४.४.५.१३. मुक्ति

'मुक्ति' कहानी भारतीय संस्कृति के आप्त वचन 'सत्य ही ईश्वर है' कि मान्याता को ललकारती है। कहानीकार का खुलासा कि आज की दुनिया 'शराफत' शब्द से भयभीत है। समाज से सत्य का लोप हो रहा है। सर्वत्र झूठ का ही बोलबाला है। हमारे गणतन्त्र का चौथा स्तंभ अखबार भी आज असत्य का पैरोकार बन गए है। अतः यह गौर करने की बात है कि जनतन्त्र का चौथा स्तम्भ भी सत्ता व अपराध - तन्त्र के साजिश से मुक्त नहीं है। चूँकि सच व शराफत की डगर पकड़ने से उन्हें धीरज नहीं। लिहाज़ा सत्य के संवाहक होने में वे हिचकिचाते हैं। सर्वोच्य लोकतान्त्रिक संस्था भी सत्य का मुँह ओढ़ लेने की फिराक में है। बहरहाल सत्य व शराफत का समर्थन करने कोई भी तैयार नहीं है। बल्कि वे सत्य को शराफत से खत्म करना चाहते है। 'हमसे यह न हो सकेगा। या तो देश का भार हमसे उठवा लो या इस चादर का।' [१] ज़ाहिर है कि सर्वोच्य संवैधानिक संस्था भी सत्य से हाथ धो लेते हैं।

---

(१) सब कहाँ, कुछ - असग़र वजाहत, पृ - ५६

४.४.६. लघु कहानियाँ

उनकी लघु कहानियाँ भी समाज के खुरदरे यथार्थ का बयान देती है।

४.४.६.१. कवि का एलान

'कवि का एलान' कहानी में कवि अपना एलान करता है कि नदी समझती है कविता। लेकिन कवि को जब अहसास हुआ कि वह नदी नहीं नाला है। उसमें कीचड़ ही कीचड़ है। कीचड़ से कविता का मेल नहीं है। और कविता करना खेल नहीं है। नदी समय का प्रतीक है और असग़र वजाहत की राय में समय ही किसी भी रचना का मूल्य निर्धारित करेगा।

४.४.६.२. कवि और उनकी बिल्ली

'कवि और उनकी बिल्ली' में साहित्यकार के, (वह भी राजनीतिक पकड़वाले) अवसान पर किस प्रकार रेडियो व संचार माध्यम उसका शोक मनाते हैं; इस पर व्यंग्य किया है।

४.४.६.३. कवि की भोपाल - यात्रा

'कवि की भोपाल - यात्रा' में कविता की असफल महत्वाकांक्षा का जिक्र है।

४.४.६.४. कवि और लोटा

'कवि और लोटा' साहित्यिक चोरी पर टिप्पणी है।

४.४.६.५. कवि के दिन फिरे

'कवि के दिन फिरे' में यह व्यक्त करने का प्रयास है कि आज बज़ार की संभावनाओं से साहित्य भी आक्रान्त हो चुका है। चूँकि अपनी आत्मकथा लिख डालने की जुगाड़ में साहित्यकार अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है। ऐसे में साहित्य भी एक व्यवसाय बन गया है। अतः 'कला कला केलिए' न होकर बाज़ार केलिए हो गया है। उपर्युक्त कहानियाँ काव्यात्मक लय के कारण बहुत मार्मिक है।

४.४.६.६. राजा

'राजा' में मुखौटों की दुनिया पर ज़िक्र किया है। आज जो जंगल का राजा है, वह दरअसल उसी लोमड़ी की संतानें है, जिसने शेर की खाल पहनकर राजा बनी थी।

४.४.६.७. योद्धा

'योद्धा' में अपने को संसार भर में सबसे वीर समझने वाला योद्धा एक छोटी सी चींटी से किस प्रकार हार मानता है इसकी गुंजाइश है। कहानी का यही संदेश है कि बडे से छोटा ज़्यादा बड़ा होता है।

४.४.६.८. बंदर

'बंदर' कहानी आदमी के जानवरनुमा स्वभाव पर व्यंग्य है। मानव की अमानवीय चेष्टाओं से क्रुद्ध होकर कहानीकार बताते हैं - 'हक़ीक़त में आदमी बन्दर है और बन्दर आदमी'।[१]

---

(१) स्विमिंग पूल - असग़र वजाहत, पृ - ७८

४.४.६.९. बेमौसम की बारिश में

'बेमौसम की बारिश में' कहानी अफ़सरशाही पर व्यंग्य प्रहार करती है। कहानी में भारत सरकार के एक मन्त्रालय के सचिव का संकेत है जो मन्त्रीजी से अधिक शक्तिशाली होता है, क्योंकि मन्त्री तो आते - जाते रहते हैं, पर ये स्थाई होते हैं।

४.४.६.१०. चार दिशाएँ

'चार दिशाएँ' कहानी में व्यंग्य है कि कानून बनानेवाले, उसके पालनकर्ता और उसके रक्षक उसी का उल्लंखन ही करते हैं। यह हमारे प्रशासन तन्त्र पर व्यंग्य प्रहार करते हैं।

४.४.६.११. शेर

कहानी में वाचक जंगल में उसके पहले दिन की किस्सा सुनाता है। वह शहर से या आदमियों से डर कर जंगल इसलिए भागा था कि उसके सिर पर सींग निकल रहे थे और डर था कि किसी न किसी दिन कसाई की नज़र उस पर ज़रूर पड़ जाएगी। जंगल में उसने बरगद के पेड के नीचे एक शेर को बैठे देखा। शेर का खुला मुँह देखकर उसका हाल बेहाल हो गया और डर के मारे वह झाड़ी के पीछे छिप गया। कुछ देर बाद उसने देखा कि जंगल के छोटे - मोटे जानवर एक लाइन से चले आ रहे हैं और शेर के मुँह में घुसते चले जा रहे हैं। शेर बिना हिले डुले, बिना - चबाए, जानवरों को गटकता जा रहा है।

अगले दिन एक गधा हरी घास की इच्छा में शेर के मुँह के अन्दर चला गया। फिर लोमड़ी रोज़गार मिलने की प्रतीक्षा में दरखास्त देने हेतु शेर के मुँह के अन्दर चली गयी। इस प्रकार उल्लू व कुत्तों के बडे जुलूस आदि शेर के अन्दर जाते देख वाचक शेर के पास गए और पाया कि शेर आँखें बंद किए पड़ा है और उसका स्टाफ आफ़िस का काम निपटा रहा था। उसने पूछताछ की तो स्टाफ़ ने बताया कि शेर के पेट के अन्दर रोज़गार का दफ़्तर है। उसने प्रमाण माँगा तो नहीं मिला। उसने तर्क किया तो गौतम बुद्ध की मुद्रा में बैठा शेर दहाड़ कर खड़ा हो गया और उसकी तरफ़ झपट पड़ा।

यह बहुत ही प्रतीकात्मक कहानी है। यहाँ शेर शोषक का प्रतीक है जो संपूर्ण व्यवस्था पर अपना राज चाहता है। यहाँ अहिंसा और सह अस्तित्ववाद की आड़ में कमज़ोर व्यक्ति की ज़िन्दगी से खेलने वाले नेता वर्ग की खिल्ली उठाई गयी है।

४.४.६.१२. डंडा

यह भी प्रतीकात्मक ढंग से लिखी गयी कहानी है। डंडा प्रतीक है शोषण का या डंडे का राज करने का। सत्ता धारी वर्ग सर्वदा अपना उल्लू सीधा करने केलिए अपने डंडे का राज करते हैं। कहानी में हाथी के डंडा कर पुरातत्व विभाग में नौकरी देना और फिर डंडा कर देने पर उसका हँसना इसी ओर संकेत करते है कि सत्ता की जूठन पाने केलिए व्यक्ति प्रतिक्रिया विहीन व समझौतावादी रहते हैं।

४.४.६.१३. पहचान

कहानी में ऐसे घृणाचार्य का जिक्र है जो अपने अस्तित्व की तड़प में घृणा फैलाना चाहता है, जबकि हमारे राजनीतिक नेता लोगों में भगावत ज़माना चाहते है ताकि जनता पर उनका राज ही बरकरार रहे।

४.४.६.१४. ज-१

कहानी सरकारी डाक्टरों पर व्यंग्य प्रहार करती है। उन लोगों ने 'ज' से कहा कि डाक्टर ही मर्ज़ पहचान सकता है, मरीज़ नहीं, इसलिए 'ज' को वह मर्ज़ है जो वे कहते हैं न कि वह जो 'ज' कहता है। इसलिए इस मामले में बहस की इतनी ही गुंजाइश थी कि बहस होती और 'ज' हार जाता। बल्कि 'ज' ने कहा कि दर्द उसके पेट में है। मगर वे मानने केलिए तैयार न थे। अतः उन लोगों ने 'ज' की मरम्मत शुरू कर दी। उसके मोटे होंठों को पतला कर दिया। उसकी आँखों को नशीला बना दिया गया। इस बीच वह अपना पेट पकडे कराहता और चीखता रहा। उन लोगों ने 'ज' की घिनौनी और गंदी नाक की प्लास्टिक सर्जरी करने केलिए जब नाक काटी तो ऐसे निशान मिले जिनसे अंदाज़ा लगाया कि 'ज' की यह नाक नकली है। 'ज' संबन्धी पुराने कागज़ों को उलटने - पलटने के बाद डाक्टरों ने 'ज' से कहा कि पिछले बीसियों सालों से तुम्हारी नाक इतनी बार काटी और जोडी गयी है कि उसकी असली नाक क्या और कैसी थी ये किसी को नही मालूम। 'ज ने कराहते हुए कहा, लेकिन मेरा पेट वही है और दर्द भी वही।'[१]

---

(१) अन्धेरे से   असग़र वजाहत, पृ - ११६

४.५. असग़र वजाहत की कहानियों में शिल्प विधान

कथावस्तु को गति एवं जीवन्तता प्रदान करने में पात्रों की अहम भूमिका है। असग़र वजाहत की कहानियों के पात्र हमारे आस-पास मँडराने वाले जीवन्त पात्र है। उनके पात्र समाज के निम्न वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी कहानियों के केन्द्र में कमज़ोर आदमी की पीड़ामय ज़िन्दगी ही है। अतः आम आदमी के दुःख-दर्दों को उकेरने में उनकी कहानियाँ बेहद सफल हुई है।

उन्होंने सामाजिक वैषम्य को खड़ा करने वाले ऐसे पात्रों की संरचना की है जिनकी हरकतें निर्ममता के हद तक पहूँची है। 'सारी तालीमात' का हाजीजी, और 'तेरह सौ साल का बेबी कैमिल' का हक्कानी ऐसे ही पात्र है। उन्होंने पात्रों के अन्तःस्तल में पहूँचकर उनके हर मनोविकार को उजागर करने की सफल कोशिश की है। 'मैं हिन्दू हूँ' में सैफू के चरित्र को कहानीकार ने इतनी बारीकी से उकेरने का प्रयास किया है कि साम्प्रदायिकता के हैवे से भयभीत उसका चेहरा पाठकों के सम्मुख प्रश्न चिह्न खड़ा करता है।

उन्होंने सामाजिक विसंगतियों को चित्रित करते वक्त कतिपय पात्रों का जिक्र किया है जो कि बिलकुल प्रतिक्रिया विहीन है। 'स्विमिंग पूल' में वाचक की स्थिति ऐसी है। बहुत सी कहानियों में कहानीकार नैरेटर का काम करता है हालाँकि पात्रों के चरित्र में कोई आपत्ति नहीं आयी है। जैसे, 'मेरे मौला', 'मैं हिन्दू हूँ', 'होज वाज पापा?', 'तख़्ती', 'पन्नू', 'स्विमिंग पूल' आदि।

'दिल्ली पहूँचना है' का 'विपिन बिहारी शर्मा संघर्षचेता पात्र है। कहानीकार ने पात्रों के बाहरी संघर्ष के अलावा आन्तरिक संघर्ष को बहुधा मूर्त किया है। 'ज़ख्म' का मुख़्तार इसकेलिए निदर्शन है। नारी की बेबसी को व्यक्त करने केलिए उन्होंने सरला (ड्रेन में रहनेवाली लड़कियाँ) ओर श्यामा (लड़कियाँ) की भी सृष्टि की है। ज़ाहिर है उनकी कहानियों की चारित्रिक संरचना सामाजिक सद्भावना को उजागर करने में सफल हुई है।

असग़र वजाहत की कहानियों का जायजा लेने से यह बात ज़ाहिर होती है कि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित कथा शिल्प को अपनाया है। इसलिए उनमें प्रतीकात्मकता कभी   कभी सघन होती है तो कभी सरल। उन्होंने प्राचीन बोधकथाओं या रूपक कथाओं के शिल्प का प्रयोग भी आधुनिक यथार्थ की अभिव्यक्ति केलिए किया है। 'कुत्ते, 'शेर' (अंधेरे से) इसकी मिसाल है।

इनकी कतिपय कहानियों के पात्रों का व्यक्तित्व इतना प्रतीकात्मक है कि कहानीकार ने उन्हें अंग्रेज़ी तथा हिन्दी के वर्णों द्वारा पुकारना जायज समझा। उदाहरण केलिए 'श्री. टी. पी. देव की दस कहानियाँ (मैं हिन्दू हूँ) और 'आदमी से आईएफएस हो जाने के बाद श्री त्रि के जीवन की कुछ उल्लेखनीय घटनाएँ (हंस, अगस्त १९९९)। आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई कहानियों में पूर्वदीप्ति के शिल्प का भी इस्तेमाल किया गया है। 'तख़्ती', 'होज वाज पापा' (मैं हिन्दू हूँ) आदि इसकेलिए निदर्शन है। उनकी ज़्यादातर कहानियाँ संवादात्मक है। जैसे गुरु चेला संवाद (सब कहाँष कुछ) 'हरिराम और गुरु संवाद' (स्विमिंग पूल)

इन्होंने संवादों के नाटकीय शिल्प का उपयोग करके सुन्दर कहानियों की रचना की है। ऐसी कहानियों में संवाद तो अपने आप में रोचक होते ही है, साथ ही वे बड़े व्यंजक भी होते हैं। 'मुश्किल काम', 'गुरु चेला संवाद', 'मुक्ति (सब कहाँ, कुछ) इस अवसर पर उल्लेखनीय है। उदाहरण केलिए 'यही कि बच्चों को मारना बहुत मुश्किल काम है'[१] (मुश्किल काम से)।

सामाजिक संरचना की समझ उनके शिल्प में भी है। 'अंधेरे से' की भूमिका में भाषा को लेकर असग़र वजाहत ने यों लिखा है 'नयी कहानी ने अभिजात्य भाषा, जो सरासर बनावटी है, को स्थापित किया है और भाषा के सही ऐतिहासिक विकास की उपेक्षा की है।'[२] इसे पढ़कर सुप्रसिद्ध नाटककार सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपना अभिमत दिया है 'उनकी चिन्ता आभिजात्य भाषा के तिलिस्म से निकलने और जन साधारण की भाषा का पुनः साहित्यिक भाषा बनाने की है। और, वह इस दिशा में प्रेमचन्द के ढंग को सही मानते हैं। भाषा, कथानक और पात्रों के चुनाव पर निर्भर है। आभिजात्य वर्ग के चित्रण में आभिजात्य भाषा होगी। असग़र वजाहत उस वर्ग का चित्रण करते हैं न उस भाषा की उन्हें ज़रूरत है, न प्रेमचन्द को थी।'[३] यहीं नहीं असगर वजाहत की कहानी की (विशेषकर अंधेरे में संकलित) सधी हुई बनावट को देखकर सर्वेश्वर ने उसकी तुलना गेराल्ड कर्श से करना भी संगत समझा।

उनकी छोटी प्रतीकात्मक कहानियों की भाषा सांकेतिक व्यंग्य गुंफित शैली की है। इनकी छोटी प्रतीकात्मक, सांकेतिक फेबुल्स की शैली में लिखी गयी कहानियाँ है 'कुत्ते', 'शेर', 'डंडा' और 'ज - १' (अंधेरे से)। 'डंडा और ज - १' की भाषा सूक्ष्म व्यंग्य केलिए चर्चित है। 'ज - १' कहानी की भाषा

---

(१) मैं हिन्दू हूँ - असग़र वजाहत, पृ - ५६

(२) अंधेरे से - असगर वजाहत (भूमिका), पृ - ३

(३) संपूर्ण गद्य रचनाएँ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ - १२०

सूक्ष्म व्यंग्य का द्योतक है - 'उन लोगों ने कहा, और तुम्हारे चेहरे को देखकर हर आदमी कह सकता है कि इसकी मरम्मत की ज़रूरत है।'[१] भाषा में काव्यात्मकता की शैली भी द्रष्टव्य है । 'कवि का एलान', 'कवि के दिन फिरे', 'कवि और बिल्ली' आदि कहानियाँ पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है।

कुल मिलाकर देखें तो इनकी कहानियों में शिल्पगत विविधता सहजता के साथ उजागर हुई है।

---

(१) अंधेरे से - असगर वजाहत, पृ - ११६

५

पाँचवाँ अध्याय:

असग़र वजाहत के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

पाँचवाँ अध्यायः

असग़र वजाहत के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

५.१ हिन्दी उपन्यास विकास के विभिन्न मोड़

इतिहास की बदलती ड़गर पर चलते उपन्यासकार की नज़रिए में बदलाव आना लाज़िम है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास का जायजा लेने से यह बात साफ़ निकलती है कि अथ से अब तक हिन्दी उपन्यास ने परिवर्तन के जितने आयामों का संस्पर्शन किया वह समाज से असंपृक्त नहीं रहा। अतएव मनोवैज्ञानिक व्यक्तिवादी, समाजवादी, सामाजिक ऐतिहासिक व आंचलिक उपन्यासों का केन्द्रीय स्वर सामाजिकता ही रहा। यद्यपि प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती दौर में हिन्दी उपन्यास ने अपना आकार भले ही ग्रहण किया हो, हालाँकि उनमें उपन्यास को प्राणतत्व प्रदान करनेवाले वैशिष्ट्य का नितान्त अभाव रहा। अतः हिन्दी उपन्यास को स्तरीयता एवं सही आकार देने का युगान्तकारी श्रेय प्रेमचन्द को प्राप्त है। उन्होंने उपन्यास साहित्य को सर्वोच्च सामाजिकता से जोड़ने की कोशिश की। समाज के हर वर्ग को उन्होंने व्यापक फलक पर चित्रांकित किया। लिहाज़ा उनके कमोबेश उपन्यास उत्तर भारत के तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक हालातों की ज़िन्दा तस्वीर है। जहाँ 'प्रतिज्ञा' में उन्होंने विधवा समस्या को उसकी जड़ से उखाड़ा है, वहाँ 'सेवासदन' में वेश्याओं की

कसक को वाणी दिया है। 'प्रेमाश्रम' में कृषक जीवन के चित्रण की आड़ में सरकारी कर्मचारियों, वकीलों एवं ड़ाक्टरों के निरंकुश ख़ोख़लेपन का ज़िक्र किया है। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में मौजूदा व्यवस्था में पिसते ग्रामीण जीवन एवं किसानों की बदहालत का चित्रण है। इसमें ज़मीन्दारों व पूँजीपतियों की तानाशाही के परिणाम स्वरूप खेतहीन श्रमिक में तब्दील होती किसानों की दुर्दशा का बखान है, जो आज भी प्रासंगिक है। 'गोदान' का होरी समूचे भारत में कृषकों की व्यथा की जीवन्त मिसाल है। उनकी रचनाओं में सामज एवं मानव जीवन के चित्र एक विशाल यथार्थ - की भूमि पर उभरे हैं। वह यथार्थ उनके उपन्यासों का प्राण तत्व, उनकी सबसे बड़ी शक्ति बने। निःसंदेह उनके उपन्यास समाज के आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है। यहाँ पर डॉ. कुँवरपाल सिंह का कथन द्रष्टव्य है 'हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द वह आलोक स्तम्भ हैं जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को सर्वोच्च सामाजिकता से जोड़कर उसे एक निश्चित दिशा प्रदान की, नये आयाम दिये और एक सुदृढ़ परम्परा की शुरुआत की।' [१]

प्रेमचन्द के पश्चात् सामाजिक यथार्थ के विपरीत एक नई विचारधारा के चिह्न भी दिखाई पड़े जिसने सामाजिक यथार्थ की लीक से हटकर व्यक्ति मानस के उलझनों तथा सामाजिक जीवन के बीच व्यक्ति की अपनी स्थिति को प्रमुखता दी। 'सुनीता' (जैनेन्द्र कुमार), 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' (अज्ञेय), 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'अन्धेरे बन्द कमरे' (मोहन राकेश) आदि मनोवैज्ञानिक उपन्यास इसी विचारधारा का परिणाम है।

---

(१) हिन्दी उपन्यासः सामाजिक चेतना - डॉ. कुँवरपाल सिंह (भूमिका), पृ - ८

इसी बीच उपन्यासकारों का एक ऐसा जमात भी सामने आया जो न केवल प्रेमचन्द की विरासत का अनुगामी था। वरन् एक नई परम्परा के निर्माण का हकदार भी साबित हुए। यथार्थ की जो दिशा प्रेमचन्द ने निर्देशित की थी, उस यथार्थ की ओर बढ़ने का एक सफल प्रयास उपेन्द्रनाथ अश्क में दिखाई पड़ा। यशपाल, रागेंय राघव, अमृतराय, भैरव प्रसाद गुप्त आदि कथाकारों ने युग जीवन को केवल एक तटस्थ दृष्टा के रूप में देखा ही नहीं, तीखी प्रतिक्रिया तथा घनीभूत संवेदनाओं के साथ उसे दोनों हाथों उठाकर सबको दिखा दिया।

यशपाल के उपन्यासों का चित्रपट रांगेय राघव तथा नागार्जुन की तुलना में अधिक व्यापक है। प्रेमचन्द के पश्चात् कदाचित वे हिन्दी के सर्वाधिक अनुभव संपन्न उपन्यासकार हैं जिन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की प्रत्येक गतिविधियों को मूर्त किया। उनके 'पार्टी कामरेड', 'दादा कामरेड़', झूठा सच' 'देश द्रोही', 'दिव्या' आदि उपन्यास इसकेलिए मिसाल है। 'झूठा सच' में उन्होंने साम्प्रदायिक विभीषिका में जलते हुए भारत और पाकिस्तान का चित्र खींचकर इस दौरान सांप्रदायिकता के भीषण तन्त्र में फँसे जन पीड़ा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। 'प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यासों में मार्क्सवाद का स्वर प्रधान न भी रहा हो किन्तु उसका प्रभाव निश्चय ही अन्तर्निहित रहा है'।[१] 'विषाद मठ', 'घरौंदे', 'हुज़ूर' तथा 'कब तक पुकारूँ' जैसी कृतियों में रांगेय राघव के यथार्थ दृष्टा कलाकार को सरलता से परखा जा सकता है। वर्ग वैषम्य और आर्थिक शोषण का शिकार जन-साधारण ही उनकी कृतियों का विषय बना रहा।

---

(१) हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र, पृ - ७६

हिन्दी उपन्यास साहित्य में यथार्थ वाद के परिवेश के साथ ही आँचलिक धारा का जन्म हुआ जिनका नागार्जुन समर्थ प्रतिनिधि माने जाते हैं। आँचलिक कथाकारों ने युग के जटिल जीवन को पिछड़े जनपदों के सरल, निश्छल जीवन के परिप्रेक्ष्य में परखा हैं। नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुख मोचन', 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची' आदि इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। 'बाबा बटेसरनाथ' में ज़मींदारों की निरंकुशता किसानों की स्थिति को सुधारने केलिए किये गए विभिन्न राजनीतिक आन्दोलन, ज़मीन्दारी प्रथा का उन्मूलन तथा वर्तमान शासन का चित्रण है। नागार्जुन के उपन्यासों की विषयवस्तु मिथिला के जन जीवन से संबन्धित थी तो फणीश्वर नाथ रेणु ने पूर्णिया अंचल को अपनी कथा का विषय बनाया। उनके 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', जुलूस तथा दीर्घतपा विशेष उल्लेखनीय हैं। 'मैला आंचल' में रेणुजी ने युगों से शोषित ग्रामीण समाज की आर्थिक विपन्नता का सम्यक् निरूपण किया है। नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में, 'मैला आँचल' में मिथिला के निरन्तर बदलते हुए आज के एक गाँव की आत्मा की गाथा है।'[१]

अमृतलाल नागर और राही मासूम रज़ा ने अन्मुक्त, प्रसन्न और बेदह दिलचस्प किस्सागोई की परम्परा का सूत्रपात किया है, जो कि अपने विलक्षण गुण हास - परिहास या विनोद प्रियता का परिचायक रहा। राही ने आँचलिकता के परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम समाज की समस्याओं का बहुत ही मार्मिक, चित्रण किया है। उनके 'आधा गाँव', 'टोपी शुक्ला', 'हिम्मतजौनपुरी', 'ओस की बूँद', 'कटरा बी आर्ज़ू' आदि इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। 'उन्होंने आधा गाँव में पूर्वांचल के ही एक गाँव गंगौली में सदियों से रहते जा रहे मुसलमान

(१) अधूरे साक्षात्कार - नेमिचन्द्र जैन, पृ - ३४

ज़मीन्दारों और किसानों की बिखरती हुई ज़िन्दगी का अत्यन्त संवेदनापूर्ण अंकन किया है।'[१] भीष्म साहनी एक ऐसे कथाकार है, जिन्होंने सर्वदा सांप्रदायिक दीवानगी व कमीनगी के हैवा के शिकार मासूम जन-समुदाय का चित्रण किया है। इस विचार के तहत उनके 'कड़ियाँ', 'तमस', 'मय्यादास की माड़ी' और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' आदि आते हैं। 'तमस' के द्वारा लेखक ने विभाजन पूर्व जन-जीवन में सांप्रदायिक तनाव, अलगाव, घृणा की भूमिका व साम्प्रदायिक - संकीर्णता के कारण हुए दंगों में मानवीयता का टूटना, अंग्रेज़ों की कूटनीति और धार्मिक कट्टरता, आदि का चित्रण किया है। 'पंजाब के परिवेश पर आधारित उपन्यास विभाजन के समय की सामाजिक मनःस्थिति को हमारे सामने लाता है'।[२] बदी उज़्जमाँ का 'छाको की वापसी' शरणार्थियों की समस्या पर आधारित उपन्यास है। मजूम एहतेशाम ने 'सूखा बरगद' में साम्प्रदायिक संबन्धों की पड़ताल व्यापक राष्ट्रीय और सामाजिक संदर्भों में किया है।

नवें दशक के उपन्यासों में रचनात्मक वैविद्य विद्यमान है। जीवन के बहुआयामी पक्षों का विस्तृत विवेचन यहाँ द्रष्टव्य है। साथ ही पारिस्थितिक सजगता भी शामिल है। संजीव के तमाम उपन्यास इस संदर्भ में याद किया जाएगा। जनजातियों के दुःख दर्द एवं संघर्ष ही उनके उपन्यासों का कैनवास बना। 'सावधान नीचे आग है', 'धार', 'जगल जहाँ शुरू होता है' आदि इस दृष्टि से दीगर नज़र आता हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास बनारस के बुनकर सामज के जीवन यथार्थ को कलात्मक बिम्ब के साथ प्रस्तुत करता है। वीरेन्द्र जैन ने 'डूब' और 'पार' के द्वारा

---

(१) हिन्दी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ - ४०४

(२) हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, डॉ. कुँवरपाल सिंह, पृ - २०८

पिछडेपन, शोषण व दमनचक्र की दास्तान को पारिस्थितिक सजगता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि दलित विमर्श को उभारते वक्त कभी भी उपन्यासकार स्वाभाविकता से खारिज नहीं हुआ। बल्कि उन्होंने परिस्थिति के दमनचक्र का भी इज़हार किया।

नवउपनिवेश वादी ताकतों व कुप्रभावों से समाज को मुक्त करने की कोशिश में कुछ उपन्यास सामने आये कमलाकान्त त्रिपाठी के 'पाहीघर' में १८५७ के ऐतिहासिक विद्रोह की घटना के तहत एक व्यापक जन विद्रोह की गाथा प्रस्तुत की है जो कि आज के संदर्भ में विशेष महत्व रखते हैं। 'बेदखल में' लोकजीवन उपस्थित है जिससे उपनिवेशवादी, सामन्त व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के तहत किसानों की बेदखली का प्रश्न उठाया गया है। प्रियंवद के उपन्यास 'वे वहाँ कैद है' साम्प्रदायिक सोच व फासीवादी विमर्श पर आधारित है। 'परछाई नाच' में प्रतीकात्मक ढंग से भूमण्डलीय दौर के बाज़ारतन्त्र का जिक्र हुआ है। 'प्रियंवद के औपन्यासिक विज़न में पिछली सदी के अन्तिम दशक में पनपनेवाला बाज़ारवाद है, जिसके तहत देश-विदेश के पूँजीपति और उद्योगपति मध्य वर्ग को एक नयी गुलामी के पट्‌टे में ज़कड़ना चाहते हैं।'[(१)] स्वयं प्रकाश ने 'बीच में विनय' द्वारा मार्क्सवादी चिन्तन के बलबूते पर सर्वहारा-मेहनत वर्ग को साम्राज्यवादी - बुर्जुआ वर्ग के प्रति क्रान्ति पहल करने का आह्वान देने के साथ - साथ इस चिन्तन को गलत सोच में सीमित रखनेवाले उसके तहत कार्यरत कम्यूनिस्ट राजनीतिक दल पर व्यंग्य प्रहार किया है। अप संस्कृति में पले वर्तमान समाज की यथार्थ तस्वीर इन उपन्यासों में खुलता है। वैश्वीकरण के बढ़ते दौर में आदमी का स्वयं वस्तु बनना या बाज़ारीतन्त्र का शिकार बनना

(१) हिन्दी उपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ - ४११

अहम मुद्दा है। इसको केन्द्रीय विचार देने का प्रयास उदयप्रकाश ने 'पीली छतरी वाली लड़की' में किया है ।

वर्तमान दौर में लिखे गये कमोबेश उपन्यास को परखने से ऐसा लगता है कि फिलहाल स्त्री की मुक्ति से जुड़े विभिन्न आयामों को बड़ी प्रखरता से अभिव्यक्ति मिलने लगी है। पहले के लेखन में स्त्रियों की दीन दशा के प्रति करुणा का भाव पैदा करना एक बड़ा लेखकीय दायित्व समझा जाता रहा है जबकि अब करुणा की जगह उनके अन्दर अपनी दुर्दशा के प्रति आक्रोश एवं आक्रामकता के भाव प्रकट होने लगे है। यानी परिवार से लेकर समाज व राजनीतिक क्षेत्रों में वे समान अधिकारों केलिए जुझारूपन दिखाने लगी है। फिलहाल वे न 'अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी' को अपनी मान कर चुपचाप बैठने वाली है, न ही 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो', जैसी विरुदावली से आत्म मुग्ध - होकर संतुष्ट रहनेवाली है। बल्कि वह तो अब नाना व्यवधानों रूढ़ियों, वर्जनाओं का तिरस्कार कर विज्ञान, प्रौद्योगिकी, फिल्म, गायन, नृत्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी गुणवत्ता को प्रकट करते हुए पुरुष वर्चस्ववादी समाज को चुनौती दे रही है।

'पचपन खम्भे लाल दिवारें' (उषा प्रियंवदा), 'अमलताश' (शशिप्रभा शास्त्री), 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा' 'कठगुलाब' (मृदुला गर्ग) 'बेघर' (ममता कालिया) 'आपका बंटी' (मन्नू भण्डारी) 'यामिनी कथा' (सूर्यबाला) 'तत्-सम' (राजी सेठ) 'ठीकरे की मंगनी, 'शाल्मली' (नासिरा शर्मा), 'मित्रो मरजानी', 'ज़िन्दगीनामा, (कृष्णा सोबती) 'इदन्नमम', 'चाक', 'झूला नट' 'अलमा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा) 'आओ पेपे घर चलें', 'पीली

आँधी' 'छिन्नमस्ता' (प्रभा खेतान) 'एक ज़मीन अपनी', 'आवाँ' (चित्रा मुद्गल) 'कलिकथा वाया बाइपास' (अलका सरावगी) जैसे उपन्यासों में पुरुष वर्चस्व के प्रतिरोध में ऐसे ही स्त्री तेवर का उपभार देखने को मिलता है। आवाँ में चित्रा मुद्गल ने बम्बई के महानगरीय हालातों में विज्ञान जगत् के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह व्यापार की चकाचौंध ज़िन्दगी को उकेरा है। 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया एक विद्रोही स्त्री चरित्र है जिसे प्रेम, सेक्स, विवाह आदि सदियों पुराने घिसे हुए शब्द लगते हैं। वह पीहर से लेकर ससुराल तक, माँ से लेकर पति तक उपेक्षा, अवमानना, का दंश झेलते हुए अन्ततः अपनी स्वतन्त्र इयत्ता के पक्ष में उठ खड़ी होती है। 'चाक' में सारंत्र नैनी के रूप में एक ऐसी स्त्री को प्रस्तुत किया है जो अपनी बहन रेश्मा के हत्यारे के साथ अपने पति की समझौतावादी नीति के विरोध में खुद संघर्ष में उतर पड़ते हैं और पति के न चाहने के बावजूद राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय हो उठती है।

ज़ाहिर है वर्तमान उपन्यास साहित्य में जहाँ आर्थिक, सामाजिक गैर - बराबरी के बरक्स स्त्रियों की संघर्षशीलता के चित्रण हो रहा है, वहीं बोल्डनेस एवं विद्रोह के नाम पर यौन स्वच्छन्दता की भी वकालत की जा रही है जो स्त्री मुक्ति आन्दोलन का स्वस्थ विकास नहीं कहा जा सकता। महाश्वेता देवी, लता मंगेशकर, मेधा, पाटेकर, किरण बेदी, कल्पना चावला आदि स्त्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों में कम एवं संघर्षरत रह कर जिन उपलब्धियों को सामने रखा है, वे ही स्त्री विमर्श का विषय बन कर स्त्री मुक्ति के प्रश्न को सही दिशा प्रदान किया है।

दरअसल हिन्दी उपन्यास में, प्रेमचन्द के कथासाहित्य से सहानुभूतिपूर्ण प्रभाव स्वरूप, दलित विमर्श की शुरुआत हुई थी। जिनमें आदिवासियों की पीड़ामय ज़िन्दगी को जगह मिली। यद्यपि प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारों ने दलितों की पीडामय ज़िन्दगी को किसी न किसी माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है तदापि दलित विमर्श की प्रवृत्तिगत विशेषताओं से परिपूर्ण उपन्यास समकालीन परिदृश्य की देन है। यहाँ हाशिए की ज़िन्दगी को उसकी पूरी अस्मिता के साथ पिरोया है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (अमृतलाल नागर), मुर्दाघर (जगदम्बा प्रसाद दीक्षित) 'धरती धन न अपना', 'नरक कुंड में वास' (जगदीशचन्द्र) 'एक टुकडा इतिहास' (गोपाल उपाध्याय) 'सर्पगन्धा' (शैलेश मटियानी) 'धार' (संजीव) 'परिशिष्ट' (गिरिराज किशोर) 'छप्पर' (जय प्रकाश कर्दम) आदि इस दृष्टि में विशेष उल्लेखनीय हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में 'लेखक ने ब्राह्मण युवती निर्गुनियां के परिस्थितिवश मेहतर जाति वर्ग में स्वीकार कर लिये जाने की छटपटाहट और अन्तर्बाह्य पीड़ा का आख्यान लिखते हुए अपने मन की गुत्थियों, ब्राह्मण वर्ग के अपने संस्कारों का तीखा मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस उपन्यास के ढाँचे में उपस्थित किया है।'[१] 'छप्पर' में जय प्रकाश कर्दम ने अपनी भोगी हुई ज़िन्दगी के तहत सवर्ण समाज द्वारा अवर्ण (दलित) समाज के उत्पीड़न व उसके बरखिलाफ दलितों के खिलाफ़त का चित्रण किया है।

ज़ाहिर है उपन्यास साहित्य अपनी प्रवृत्तिगत विशेषताओं के मूल में सामाजिकता को सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं।

---

(१) उपन्यास का पुनर्जन्म - परमानन्द श्रीवास्तव, पृ - ७३

५.२. असग़र वजाहत के उपन्यास

असग़र वजाहत के उपन्यास सामाजिक जीवन की हक़ीक़तों से लैस हैं। प्रस्तुत अध्याय में उनके द्वारा विरेचित चार उपन्यासों की कथ्यगत विशेषताओं को परखने की कोशिश जारी है। वे है, 'रात में जागने वाले', 'पहर दोपहर', 'सात आसमान' और 'कैसी आगी लगाई'।

५.२.१. 'रात में जागनेवाले': बनते-बिगड़ते पारिवारिक रिश्ते

बिखरे पारिवारिक माहौल में पलनेवाला व्यक्ति स्वयमेव बिगड़ जाता हैं। चूँकि ममता, प्यार, आपसी समझौता आदि भावनाओं से ही रिश्ते मज़बूत होते हैं। एक परिवार की सबसे खतरनाक स्थिति सदस्यों के बीच की संवादहीनता है। यह संवाद हीनता संवेदन हीनता को पैदा करती है। जहाँ पारिवारिक संवेदनहीनता है वहाँ घर बेघर में तब्दील होता है। पति व पत्नी के बीच का स्नेह - व्यवहार उनके बच्चों के दिल में सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। जबकि माँ - बाप के बीच का अलगाव बच्चों के जीवन को बर्बाद कर देते है। कहने का मतलब यह है कि बच्चों के मन में नैतिक विरासत का बीज बोने में उनके मां - बाप ज़िम्मेदार है। मगर आजकल हम टूटे - बिखरे परिवार ही देख पाते हैं। जहाँ एक ओर महानगरीय ज़िन्दगी का विषैला माहौल है तो दूसरी ओर गँवारू वातावरण। बहरहाल सब कहीं पुरुष वर्चस्ववादी समाज ही हम पाते हैं। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में पुरुष ही मेधा है उनकी राज ही चलता है। ऐसे में घर की स्त्री, पुरुष की आज्ञाओं की कठपुतली बनती है। ऐसे माहौल में

पलनेवाले बच्चों का मानसिक स्तर स्वस्थ नहीं होते। एक तो वे अधिक बहिर्मुखी बनते है या अधिक अन्तर्मुखी। कभी - कभी असामाजिक तत्व बनते है और कभी अमानवीयता के स्तर तक नीचे गिर जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में अन्तु के साथ भी ऐसा हुआ। अन्तु माने अनन्त प्रसाद सक्सेना। बचपन उसकेलिए एक डरावना सपना था। इस सपने का खलनायक और कोई नहीं, उसका अपना पिता था। पिता पुलिस में सिपाही का काम करता था जोकि आज के पितृसत्तात्मक समाज के नियन्ता का प्रतिनिधित्व करता है। घर में उसका ही हुक्म चलता था। उन्होंने घर को भी पुलीस थाना बनाकर रखा था। जहाँ पत्नी और बच्चा अपराधियों की ज़िन्दगी गुज़ारने को मजबूर थे।

मौजूदा व्यवस्था में रंगीन खुशी से भरपूर वातावरण इने - गिने परिवारों में ही हम देख सकते हैं। समान्यतः पुरुष की तानाशाही ही चलती है जहाँ घर के किसी भी सदस्य को हिलने - डुलने तक की इज़ाज़त नहीं मिलती। ऐसे बहुत सारे लोग है जो चाहते है कि पत्ता भी उनकी मर्ज़ी से हिले। नारी मुक्ति आन्दोलन के बावजूद बहुत से घर है, जहाँ अन्तू की माँ की ज़िन्दगी गुज़ारने केलिए अभिशप्त नारियाँ मौजूद है। अन्तू की माँ दिन भर गली में बैठी मोहल्ले वाली औरतों के साथ चावल चुना करती थी या बीड़ियाँ बनाया करती थी और किस्मत को कोसती रहती थी कि उसकी शादी कैसे शराबी के साथ हो गयी जो एक मिनट को अपने बच्चे से दो मीठी बातें भी नहीं करता। अन्तु की माँ, पिता से बहुत डरती थी। वे उसके हाथ में एक पैसा भी नहीं देते थे। उसकी माँ कभी - कभार मोहल्ले की औरतों के सामने रोया करती थी कि उसे

शादी को सात साल हो गये। यह भी नहीं मालूम कि अन्तु के बाबूजी को क्या तनख्वाह मिलती है। यद्यपि मोहल्ले की स्त्रियाँ उसको तरह - तरह की सलाहें दिया करती थी तदापि पतीजी के सामने उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाता था। अन्तु जब पाँच साल का था दिन भर अपनी माँ की साड़ी पकड़े उसके साथ घर के अन्दर और सामने गली में बैठा करता था। उसके अब्बा ने अन्तू को गली में बच्चों के साथ खेलने से रोका था। ऐसे में अन्तू आत्म सीमित होने लगा था उसने अपनी ही एक दुनिया रची। इस बीच अन्तु के पिताजी को कुछ बदमाशों ने चाकू मारा और उसकी जान ली। पिता की मृत्यु की खबर सुनकर अन्तु भावहीन बैठा रहा। मगर एक प्रकार की घबराहट ने उसके मन को छुआ।

पिताजी के इंतकाल के बाद अन्तु और माँ अलीगढ़ में अपने नानाजी के यहाँ रहने लगे। वहाँ लल्लू (अन्तु की माँ की बड़ी बहन का लड़का) ने पहली बार उसे इस तरह देखा था कि उसे बाबूजी की याद आ गयी थी। उसकी आँखों में भी वही भाव थे जो बाबू जी की आँखों में वह देखा करता था। लल्लू ने सबसे पहले ही उस पर अपने बड़े होने का रोब झाड़ दिया था। उसने अन्तू को समझा दिया था कि उसे घर में उसका पाबन्द होकर रहना पडेगा। अन्तू को इसमें विशेष कष्ट भी नहीं हुआ था और उसने लल्लू की हर बात को जैसा का तैसा मानना स्वीकार कर लिया था। चूँकि उसे पिता के तानाशाही का अनुभव था। मगर अन्तू माँ या नानी के पास छिपा बैठा रहने के कारण बाहरी दुनिया से बेखबर था।

अन्तू के चरित्र को उभारने में लेखक ने बालमनोविज्ञान का सहारा लिया

है। जिन बच्चों का बचपन असाधारण परिस्थिति में बीतता है उनका भविष्य अन्तू के जैसा भी हो सकता है। बचपन में पिता द्वारा निर्मित दहशत भरे वातावरण का शिकार अन्तू उनकी गैर - हाज़िरी में भी एक प्रकार के भय से आक्रान्त रहा। लल्लू ने उस भयानक सपने को यथार्थ बनाया। बाद में माँ की मृत्यु शय्या की घटनाएँ भी अन्तू केलिए असह्य रही। जब वह सात साल का था तब उसकी अम्मा बीमार रहने लगी थी। उसके सीने में गहरा ज़ख्म हो गया था। वह बिस्तर से उठने तक नाकाबिल रही। माँ का इलाज करने केलिए आये वैद्यजी से भी अन्तू डरने लगे। उसे लगता वैद्यजी राक्षस हैं और किसी दिन चुपके से उसकी अम्मा को खा जायेंगे। हालाँकि उसके मन में उत्सुकता बनी रहती कि वैद्यजी अम्मा को कैसे ठीक करते है।

वैद्यजी साफ कपड़े में कोई पीले रंग की दवा उसकी माँ के घाव में लगाते और उसे धीरे - धीरे घुसेड़ते वक्त माँ की भयानक चीखें पूरे कमरे में गूँजती। माँ की चिल्लाहट अन्तू के मन में बार बार धँस जाती थी। ऐसी भयानक घडियों में अन्तू का आहत मन कराह उठता और इन सबसे भागने हेतु वह ज़्यादा आत्मकेन्द्रित होता गया। कक्षा चार से वह पंडितजी के यहाँ जाता था। माँ की अकाल मृत्यु के पश्चात्, जब वह कक्षा छः में पढ़ता था कि पंडितजी के अधिक संपर्क में आने की वजह से अनेक महा पुरुषों की कथाओं से अवगत हुआ। अतः पंड़ितजी ने जिन महापुरुषों की कथा उसे सुनाई थी, वह बारंबार उनकी याद करता रहा और तनहाई से बचने हेतु उन महापुरुषों की आत्मकथाएँ लगातार पढ़ता रहा, और अपने को अर्जुन, भीष्म, पितामह, भगवान कृष्ण, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि का भक्त मानने

लगा। वह रामकृष्ण परमहंस जैसे ऋषियों की तरह ब्रह्मचर्य को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानने लगा। उसने सत्य, अहिंसा और प्रेम का अभिभूत बनने का प्रण लिया। गाँधी दर्शन को अधिक मान्यता देने लगा। जब वह उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में स्थित आदर्श हाई स्कूल के नवाँ कक्षा के छात्र बना तब उसने माँस, मदिरा और स्त्री संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की।

मगर कौमार्य अवस्था के मोह को दबाने में वह असफल रहा। घर की नौकरानी बसंती के आकर्षण से बचने हेतु यद्यपि उसने माता का ध्यान कर अपनी कामुकता को क्षीण करने की बेकार कोशिश की। परन्तु एक दिन मजबूरन उसे बंसती से संभोग करना पडता है। उस अपराध बोध से बचने हेतु वह सन्यास स्वीकार कर घर से भागने का निर्णय लेता है। मगर उसकी भागदौड़ विफल रह जाती है चूँकि उसकी साधना खोखली थी। दरअसल यह लौकिक सुख से पलायनवाद था। अपनी कोमल भावनाओं को जबरन दबाने केलिए उसने वैराग्य स्वीकार कर लिया था। इसलिए ही अन्त में वह हार जाता है। अध्यात्म स्वीकार करने केलिए आत्महनन और कठोर तपस्या की ज़रूरत है। वह तो आदमी में जन्मजात तौर पर अन्तर्निहित होता है। इसलिए ही अपनी कामुकता को छिपाने केलिए विरक्ति का मार्ग आत्मसात् करनेवाला अन्तू नाकाबिल बना।

अन्तू के चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा उपन्यासकार ने आज के दमघोंटती वातावरण में छटपटाते बालकों की दर्दनाक दास्तान का जिक्र किया है। पिता के वात्सल्य और माँ की ममता से वंछित ऐसे असंख्य बच्चों की दारुण तस्वीरें यहाँ खुलती हैं। बच्चों के चरित्र रूपायन की सबसे पहली इकाई

परिवार है। लेकिन आज ऐसे परिवार विरले हैं, जहाँ बच्चों की मानसिक संतुलन केलिए अनुकूल माहौल हों। ऐसे में प्रतिकूल वातावरण में पलनेवाले बच्चों का भविष्य खतरनाक साबित होगा। इस बुनियादी तथ्य पर अधिष्ठित है उपर्युक्त उपन्यास। अर्थात् असग़र वजाहत ने इस भविष्य वाणी को उपन्यास का रूप प्रदान किया है।

अन्तू की माँ की बेबसी आज के स्त्री शक्तीकरण के युग में प्रश्न चिह्न है। नारी मुक्ति आन्दोलन की असंख्य कोशिशों के बावजूद अनपढ़ नारियों की गुहार फिलहाल बरकरार है। अन्तू की माँ अपने पति की तानाशाही की शिकार थी। उसके पिता नायब तहसीलदार है। मगर हमारी सामाजिक व्यवस्था यही सिखाती है कि कन्यादान के बाद पति जितना भी अत्याचारी हो, पत्नी केलिए परमेश्वर से बढ़कर कुछ नहीं। इसी वजह से पति की निर्मम कर्तूतों को मूकसाध सहने केलिए अन्तू की माँ विवश थी। अतः असंख्य नारियों की नसीब अब भी बदला नहीं है। इसकी मिसाल स्वयं अन्तू की अम्मा है। उपन्यासकार ने पुरुष वर्चस्ववादी समाज में नारी की अप्रधानता को साबित करने केलिए ही सही अन्तू की माँ का विशेष परिचय नहीं दिया। एकाध स्थान पर पण्डितजी के मुँह से 'अरे कौसल्या का लड़का कहाँ है रे'[(१)] कहलवाकर इस हक़ीक़त को और मज़बूत बनाया है कि जीवित समय में उसे अन्तू की माँ पुकारा और मृत्यु के उपरान्त ही उसे नाम मिला वह भी अपने बेटे को संबोधित करने हेतु। उपन्यास नारी की यन्त्रणाओं का जीता - जागता चित्र पेश करता है।

---

(१) कथादेश - मई १९८३, पृ - १२

५.२.२ 'पहर दोपहर': फिल्मी दुनिया के पैंतरे

यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है जो हमें फिल्मी दुनिया की अन्दरूनी हक़ीक़त से बावस्ता कराता है। उपन्यास बताता है कि पटकथा की ज़िन्दगी यथार्थ ज़िन्दगी से कोसों दूर है। रंगीन जगत के प्रति लोगों के मन में आकर्षण स्वाभाविक है। मगर सुन्दरता पर छिपि हुई विरूपता पर किसी का ध्यान नहीं पड़ता। फिल्म की दुनिया पैंतरेबाजी की दुनिया है। शोषण की दुनिया है। कमाई वह भी बहुत जल्दी कमाने की दुनिया है। नृत्य - संगीत का वाह - वाही दुनिया है। नशे की दुनिया है। मदिरा और जिस्म पर टिकी दुनिया है। मगर इस दुनिया के प्रति जनता के मन में अनन्त मोह है। अभिनेता अभिनेत्रियों के प्रति एक प्रकार का जुनून ही है।

लेखक फिल्मों में पैसे की संभावना देख दिल्ली से बंबई की ओर रवाना होता है। अतः अपनी टूटी फूटी हालत में फिल्मी दुनिया की बेहतरीन ज़िन्दगी उसे आकर्षित करता है। इसी आकर्षण के फलस्वरूप वह अपने मित्र जालिब के यहाँ बंबई पहूँचता है। वहाँ की रंगीन दुनिया के पीछे की बेरंगी वातावरण से उसका साक्षात्कार होता है। जालिब के फ्लैट में फिल्मी लोगों की महफिलें जमती। उस जमात में जिन व्यक्तियों से लेखक की मुलाकात होती है, वे फिल्मी दुनिया के यथार्थ चेहरे हैं। उन खूबसूरत चहरे के पीछे की बदसूरती से लेखक वाकिफ होता है। वह दुनिया मौजमस्ती की दुनिया है। फिजूलखर्ची ही वहाँ का नारा है। वहाँ की ज़िन्दगी का नैरन्तर्य पीने - पिलाने में है। इस तरह फिल्मी इंडस्ट्री की कड़वी सचाइयाँ लेखक के सम्मुख मण्डराने लगती है।

फिल्मी दुनिया की चकाचौंध ज़िन्दगी दरअसल धन और प्रतिष्ठा की झूठी शान पर टिकी है। मानुषिक मूल्यों की गुंजाइश वहाँ नाम मात्र केलिए भी नहीं। फिलहाल फिल्मी सितारों को हमारे समाज में बहुधा प्रतिष्ठा मिल रही है। हालाँकि वहाँ की ज़िन्दगी किस हद तक नीचे गिरी है इसका अन्दाज़ साधारण जन को नहीं है। वे फिल्मी सितारों के चमक - दमक का ख्ञाब देखते हैं। उन्हें अपने जीवन में बेहद स्थान देते है। वहाँ अभिनेत्रियों की हालत गयी गुज़री है। धन और प्रतिष्ठा कमाने केलिए उन्हें बहुत कुछ खोना पड़ता है।

पिया और शकुन्तला फिल्मी नायिका बनने की हविश में अपनी पूरी ज़िन्दगी स्वाहा कर देती है। पिया को ऐड़वरटाइज़िंग वालों नें ऑफर देने के वास्ते बदनाम किया। फिल्म और ऐड वालों की वजह से उसकी इज़्ज़त उतनी भी न रही जितनी रंडियों की। फिर जानेमाने निर्देशक धर्मवीर से शादी करने के बाद भी वह पतिव्रता नहीं रहती। क्योंकि अपराधबोध व अभाव की शिकार पिया पहले के रास्ते को ही फिर अपनाती है। मगर पति के मरने के बाद अपने बच्चों का खर्च उठाने के वास्ते वह रतन सेन नामक निर्देशक की भोगपिपासा की शिकार बनती है। हालाँकि रतन सेन ने उसे फिल्म में काम नहीं दिया। अन्त में वह एक एन.आर.आई सर्जन से शादी कर लेती है। उस अधेड व्यक्ति का टोरंटो में अपना अस्पताल था। अपनी बेटी को पूना के एक अच्छे स्कूल के बोर्डिंग हाउस में भर्ती कराकर वह पति के साथ टोरंटो चली जाती है और साल में एक बार बंबई के 'ओबराय' में आकर पैसा पानी की तरह खर्च करती है। अर्थात् धूमधाम ज़िन्दगी की आदी पिया ज़िन्दगी भर मस्ती में रहती है। उसकी ज़िन्दगी को इसप्रकार ढालने में फिल्मी दुनिया का हाथ है।

इसप्रकार के छल - कपड़ की शिकार बनानेवाली शकुन्तला को हीरोइन बनने की हविश में न जाने कितनों से हमबिस्तरी करनी पड़ी। नाम और शोहरत की ऐसी ज़ीन्दगी की आदी होनेवाली नारियों का नैतिक पतन ही यहाँ देख सकते हैं। फिल्मी सितारों की ऐश और आराम की ज़िन्दगी आखिर अपने से सीनाज़ोरी की ज़िन्दगी है। अपने से बेईमानी कर मौज मस्ती की ज़िन्दगी बिताना कहाँ तक उचित है? क्या इन केलिए दिल नामक कोई चीज़ ही नहीं है?

फिल्मी इन्डस्ट्री बहुत बढ़िया है। एक फिल्म बनकर बाहर आने के पीछे कितनों की आहें है, रुधन है, गम है, इन सबसे जनता बेखबर हैं। हम फिल्म देखते हैं, मनोरंजन करते हैं। मगर हम पटकथा के भीतर की ज़ालिम दुनिया को नहीं देखते। वहाँ आपसी होड़, अस्तित्व की तड़पन, प्रतियोगिता की मानसिकता और कूटनीति का चक्र ही विद्यमान है। इन सबसे परे मानसिक संघर्ष व तनावग्रस्त ज़िन्दगी हर एक को भुगतना पड़ता है। यहाँ जो यश मिलता है वह नाम मात्र केलिए है। यह ग्लैमर की दुनिया है। जब तक सौंदर्य है, तब तक नाम है, यश है। बीते ज़माने की हीरोइन सुलताना से लेखक की मुलाकात से यह बात ज़ाहिर होती है कि सुन्दरता के घट जाने के साथ उनका पुराना शान भी घट गया। भारी मेकअप और कीमती जेवरात से सजी उस महिला की उम्र का अंदाज़ा लगाना लेखक केलिए मुश्किल था।

फिल्मी निर्देशक हो या संगीत निर्देशक जीवन का अन्तिम अर्थ उनकेलिए मदिरा व जिस्म ही है। उनका डावाडोल मन का संकेत उपन्यास में मिलता है। इन्डस्ट्री की अनैतिक बातों का वे निर्देश करते हैं। गांजा और नशीले पदार्थों

के उपयोग के साथ स्त्रियों की ज़िन्दगी से वे खिलवाड़ करते है। रिश्ते यहाँ बनते है, टूटते है। शादीशुदा जीवन बिताने के अतिरिक्त पर-स्त्री संबन्ध रखनेवाले इनमें अधिक है। स्क्रिप्ट राइटर जालिब, संगीत निर्देशक मानस दा और फिल्म निर्देशक रतन सेन आदि इसी मौज मस्ती पर निर्मंज्जित हैं। जालिब में सामन्ती संस्कार का प्रभाव अवश्य पड़ा है। चूँकि उनके अब्बा और उनके निज़ाम के ज़माने की शाही ज़िन्दगी, अदब आदाब, रख रखाव, तहज़ीब और नफासत - नज़ाकत जालिब केलिए दिलचस्प था। उनके घोर सामन्ती व पतनशील दृष्टिकोण का बखान उपन्यास में हुआ है। गैर मुसलमान, नर्स की पेशा करनेवाली नीना से जालिब ने विवाह तो किया। मगर दिन - रात नशे में चूर होकर वह स्त्रियों से नाजायज संबन्ध भी रखता था।

फिल्मों में काम ढूँढकर आनेवाली युवतियों को जाल में बिछाना उनकेलिए मनपसंद बात है। रोल के चक्कर में जयपुर से आये मनोहर मीणा और उसकी ममेरी बहन शकुन्तला को जालिब ने पहले इंडस्ट्री के खतरों से पूरी तरह आगाह कराया और उसके बाद संभावनाओं की भरपूर चर्चा की। फिर उनकेलिए रणनीति तय किया और उन्हें झूठा भरोसा दिया। उस पूरे फिल्मी माहौल में जहाँ दूसरों ने उनको दुत्कार दिया हो वहाँ जालिब की चेतावनी, सहानुभूति, रणनीति और संभावनाएँ गहरा असर डालनेवाली थी। अपने पास संभावनाओं की तमन्ना से आनेवाले लोगों को फिल्मी टर्मिनॉलॉजी में शीशे में उतारने में जालिब कामयाब थे। उसकी बातों में निहायत आत्मविश्वास था - 'देखो मेरी ज़िन्दगी ऐसे ही लोगों को 'डील' करते कटी है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ये क्या, कैसे होते हैं।'[१] एक जाने माने स्क्रिप्ट राइटर का नैतिक

---

(१) इंड़िया टुडे - १५ अगस्त १९९६, पृ - ९९

पतन ही यहाँ द्रष्टव्य है। नाकाम ज़िन्दगी का शिकार जालिब बहुधा आलसीपन में गुज़रता है। अपनी नर्स पत्नी नीना की आमदनी से दो बच्चों (शब्नम और अहमद) के खर्च निपटता था। जालिब को पीने के पैसे भी वह देती थी। लेकिन अपनी पत्नी से धाँधली करने से वह किंचित भी अपराध बोध से ग्रसित न होता। मगर नीना जब इन सब बातों से अवगत होती है तो घर छोड़कर अपनी बहन के यहाँ पूना चली जाती है। अखिरखार वह लौटती भी है। मगर जालिब सुधरता नहीं। एक पटकथा लेखक की अपनी ज़िन्दगी की खुलासे के ज़रिए उपन्यासकार ने फिल्मी दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र में कार्यरत प्रतिष्ठा प्राप्त लोगों की निकटतम ज़िन्दगी की तस्वीर खींची है जोकि बाहरी यशप्राप्त ज़िन्दगी के बिलकुल विरुद्ध है। एक तरह देखें तो रण्डेबाज ही इस क्षेत्र में सजग हैं। जलिब जैसे असंख्य निर्देशकों में दूरदर्शन का अभाव है। उनका डावाडोल मन, नैतिक गिरावट आदि यहाँ बेपर्द हुए है।

संगीत निर्देशक मानस दा की हालत इससे भिन्न नहीं है। नशीले पदार्थों के अनगिनत उपभोग के कारण उनकी आकस्मिक मृत्यु होती है। इस वजह उनकी पत्नी और बच्ची बेसहारा बन जाती हैं। हालाँकि 'मानस फण्ड' से काफी सहायता मिलती है।

काम की खोज में आये लेखक फिल्मी दुनिया की नग्नता से चौंक गया। बहरहाल लेखक ने जाने माने फिल्म निर्माता दत्ता साहब को अपनी लिखी कहानी सुनाई मगर निराश होकर लौटना पड़ा और बंबई छोड़ने की सोचने लगा। उसे महसूस हुआ कि ऐसी दुनिया में अपमानित होना साधारण बात है। मतलब यहाँ अपमान, अपमान ही नहीं लगेगा। दुख, दुख नहीं लगेंगे और

दुश्मन, दुश्मन नहीं लगेगा। प्यार, प्यार नहीं लगेगा और दोस्त, दोस्त नहीं लगेंगे। बंबई नगरी पर उसे लानत आया। दोस्त जालिब ने उसे समझाया कि 'देखो, ये फिल्मी दुनिया है। यहाँ इतना सेंटिमेंटल, होने से काम नहीं चलता। तुम्हें नहीं मालूम अच्छे - अच्छे राइटर दत्ता साहब से मिलने केलिए महीनों जूतियाँ चरखाते हैं और सालों इंतज़ार करते हैं।.... आज का अपना सुपरस्टार दत्ता साहब की चिलम भरा करता था..... यहाँ के दस्तर अलग हैं।'[१] अतः इस दुनियाँ में सफलता की मंज़िल हासिल करने केलिए चापलूसी, चाटूकारिता और दूसरों के मुँहताज बनने की कला सीखनी चाहिए।

आखिरखार लेखक दिल्ली लौटता है। लेकिन बारह - तेरह साल के बाद भी बंबई की सब घटनाएँ उन्हें याद आती थी। अतः उन घटनाओं और व्यक्तियों से पीछे छुड़ाना आसान नहीं था। चूँकि वे उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुके थे।

यहाँ बंबई बोलीवुड़ की धूम मचाती दुनिया के एक - एक पहलु का नग्न नेत्रों से जायजा मिलता है। वहाँ से गुज़रे प्रत्येक चेहरे की अपनी एक गमगीन किस्सा है। कभी कभार दूसरों को उगलने केलिए मौजूद चेहरे देख सकते हैं, तो कभी हैदर साहब की तरह एक बिलकुल असफल और नाकाम ज़िन्दगी गुज़ारने के बावजूद बुढ़ापे में बहुत शाँत, सौम्य और हमदर्द किस्म के निर्देशक भी है। जो लोग इसमें एक बार आए और अचानक गायब हो गए वे जिज्ञासा जगाते हैं, एक तरह की कसक छोड़ जाते हैं, जैसे सुलताना। हो सकता है उसकी दुआ कुबूल हो चुकी होगी। मगर एक अदद फिल्म में हीरो बनने की आस में बदहाल जसिया भी इस जालिम दुनिया से छूटना नहीं चाहता। वही इस

---

(१) इंडिया टुडे - १५ अगस्त १९९६ , पृ ८२

दुनिया की विशेषता है। एकबारगी इसमें अकड़नेवाला इनसान इससे मुक्त होने की सोच हरगिज़ नही लगते। फिल्म निर्देशक हो या संगीत निर्देशक, नायक हो या नायिका, सब इस व्यापार तन्त्र में इतना जकड़े हुए कि उससे बाहर निकलना नामुमकिन है। यह फिल्मी दुनिया धोखे की टट्टी है। यह सराब की दुनिया है। इस हक़ीक़त से बावस्ता कराना ही उपन्यास का मकसद है।

५.२.३. 'सात आसमान': सामन्ती सभ्यता का उत्थान और पतन

'सात आसमान' उपन्यास एक खानदान की कई पीढ़ियों के इतिहास का सफल प्रस्तुतीकरण है। इसमें मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान अस्तित्व में आए नवाब सामन्तों की शान - शौकत, फिजूलखर्ची, सनक और दीवानगी की इतिहास कथा के बहाने वाकई विकास की यातना का चित्रण किया गया है। चूँकि फिलहाल विकास के नाम पर मानवीय मूल्यों की फज़ीहत ही हो रही है। अतः उपन्यास निस्संदेह अपनी संभावनाएँ बुलन्द करता है।

इसमें चार सौ वर्ष पहले की ऐतिहासिक कथा की पृष्ठभूमि में जो कि ईरान से शुरू होकर हिन्दूस्तान के सामन्ती समाज तक, मनुष्य की मूल प्रकृति की तलाश जारी है। उपन्यास में एक ही परिवार की कहानी का बखान है और यह एक ही परिवार में सीमित न होकर अनेक परिवारों से जुड़ने लगती है। अतः प्रत्येक कहानी के अन्दर एक कहानी निहित है। जितने पात्र है, उतनी कहानियाँ है। इसमें वर्तमान एवं अतीत के वाक़या से बेशक तालमेल बना

रहता है। इसमें सामन्ती परिवारों के बनने तथा बिगड़ने की गुंजाइश के साथ उनके आपसी तनाव और झगडे इस हद तक चित्रित है कि उनकी ज़िन्दगी के आन्तरिक एवं बाह्य पहलु एक - एक करके हमारे समक्ष उभरते हैं। यह एक ऐसा महावृत्तान्त है जिसमें उनकी सत्ता - शक्ति और शारीरिक भूख भी है। मगर पात्रों की अपार भीड़ के बावजूद वृत्तान्त कहीं खोया नहीं है। बल्कि वह सजीव पात्रों की जीवन्त दास्तान की तरह बनता रहता है। यह सामन्ती समाज के अच्छे व बुरे सपने मात्र सीमित न होकर उनके मदोन्मत्त भोगविलास का भी बयान है।

उपन्यास में ऐसा कोई पात्र नहीं है जिसका नाजायज संबन्ध न हो। अतः आम तौर पर नवाब, सामन्त और ज़मींदार केलिए अवैध संबन्ध प्रतिष्ठा का परिचायक माना जाता था। कथा वाचक के दादा अब्बा मियाँ (सत्तन मियाँ) जो कि उपन्यास का केन्द्र पात्र है, अवैध संबन्ध भी पूरी निष्ठा के साथ निभाते थे। उपन्यासकार के शब्दों में - 'औरतों अब्बा मियाँ की कमज़ोरी थी। शुरू से ही उनके पास रखैलें थी। रखैलों के अलावा दूसरी औरतों से ताल्लूक न करते थे। इस बात का खास ख्याल रखते थे कि रखैलें उनके ही पास आये, दूसरों के पास न जायें।'(१)

मुगल सल्तनत पर धर्म और संस्कृति का कोई नियन्त्रण नहीं था। अतः उनके आचरण से ऐसा महसूस होता है कि वे धर्म और संस्कृति के आचरण से पूर्णतः मुक्त है। उनके सामाजिक दायित्व भी इस हिसाब से अपसंस्कृति का कूड़ा था। अब्बा मियाँ के बड़े भाई जत्तन मियाँ के पुत्र लखू मियाँ तथा डॉ. विक्टोरिया के नाजायज़ संबन्ध इसकेलिए सबूत है कि इस समुदाय के पात्र

---

(१) सात आसमान - असगर वजाहत, पृ - ३९

शादी करके या शादी न करके भी आज़ाद रहते है। विक्टोरिया का कथन देखिए - 'तुम अपनी आज़ादी बचाये रखने केलिए शादी कर रहे हो और मैं अपनी आज़ादी बचाये रखने की खातिर शादी नहीं कर रही।'(१)

अतः दोनों स्वच्छन्द होकर एक दूसरे का उपभोग करते हैं। उपन्यास में ऐसे कई जगह है जहाँ अवैध संबन्धों की भरमार है। यह तो जगजाहिर है कि सामन्ती समाज अपने अन्तहीन अवैध सेक्स संबन्धों को मनाया करता था। उपन्यास उसका भी रपट तैयार करता है। इन अवैध संबन्धों की विकृति यासीन मियाँ एवं अंधे जाफर की कहानी में देखी जा सकती है। यासीन मियाँ जत्तन मियाँ की रखैल सत्ती अहीरन की लड़की जुबैदा के पति थे। वह भी कानपूर के किसी रईस की रखैल का बेटा था। जुबैदा के इंतकाल के बाद यासीन मियाँ अब्बा मियाँ के आश्रय में रहते थे। नौकर अंधा जाफर तथा यासीन मियाँ सुविधा भोगी थे। रण्ड़ीबाजी करने केलिए उनके पास पैसा नहीं था। इतनी हिम्मत भी नहीं कि अब्बा मिया के दूसरे नौकर अँगनू की तरह शहर की छिनाल औरतों को पटा सकें। लिहाज़ा दोनों अदला बदली करते थे। मुश्ताक, मैकू मनीजर आदि नौकरों का अपना कोई नैतिक चरित्र नहीं है।

सब के सब ऐश - ओ - आराम की ज़िन्दगी केलिए कुछ भी करने को तत्पर थे। वैसे भी सर्वथा देखा आया है कि सामन्ती ज़मींदारी - समाज नैतिक चरित्रों को बढ़ावा नहीं देते। चूँकि उसे अपना उल्लू सीधा करना काफी है। अतः वे नैतिक मूल्यों के बदले, अपनी शक्ति और सत्ता, शान और शौकत, दिखावा, तकल्लुफ, नज़ाकत, अदब - आदाब, अदला - बदली, फिजूलखर्ची आदि नकारात्मक मूल्यों को तरजीह देते हैं। उनके चरित्र में श्रम की गरिमा की

---

(१) सात आसमान - असगर वजाहत, पृ- १३-१४

गुंजाइश तक नहीं है। गाज़ीउद्दीन हैदर, मिर्ज़ा हादी, हक़ीम मेहदी अली, लक्खू मियाँ आदि सामन्तों के मुताबिक सत्ता - शक्ति और दौलत के सामने नैतिक और धार्मिक मूल्य कोई मायने नहीं रखते। अतः अपना काम निकालने हेतु अनैतिक कार्यों को वे नैतिक घोषित करते हैं। लखू मियाँ ग्रेजुएट होने तक अच्छे किस्म का नौजवान था। मगर पिता जत्तन मियाँ के मुख़्तारे - आम बना दिये जाने के पश्चात् लक्खू मियाँ ने अपने इख्तियारात को कई तरह से आज़माया। मसलन हुजूर की फिटन बेच डाली और उसकी जगह एक आस्टिन कार खरीदा। घोंड़ों को बेचकर तथा बैरे को अलग कर उसने अस्तबल को मोटरख़ाना बना दिया। उसने अपने वालिद के साथ ज़्यादतियाँ भी की। यहीं नहीं मरते वक्त तक उसे चैन की सांस नहीं दी। मोतमुद्दौला केलिए जो कि वाचक की माँ के पूर्वज है, सत्ता शक्ति और दौलत ही सबकुछ है। उड़ती चिड़िया के भी पर गिनने में वे माहिर थे।

उपन्यास के पूर्वांश में अधिकांश स्थलों पर पूर्वजों के प्रतापी, विलासी, ज़िद्दी, मूल्य विघटित ज़िन्दगी का विशाल ढाँचा सुविस्तार से प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अपने पूर्वजों की पतन कथा के द्वारा वर्तमान की पीड़ा को उजागर किया है। उपन्यास में प्रायः दो युगान्तों की टीस है। एक तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के धक्के से नवाबी दौर का अन्त और दूसरे स्वाधीन भारत में कांग्रेसी धक्के की वजह से ज़मींदारी का अन्त। यहाँ अंग्रेज़ों के भारत से बरखास्त होने के बाद भारतवर्ष की शासन - प्रणाली पर आशंका प्रकट की है जो ज़मीन्दारी के परतों को खोलती है - 'अंग्रेज़ों के जाने के बाद यहाँ हुकूमत कौन करेगा? कान्ग्रेसी ?   ज़मीन्दारी न रहेगी तो पूरा निज़ाम दरहम -

बरहम हो जायेगा। लगान कौन वसूलेगा? गाँवों के लुच्चे लफंगा? सरकारी खज़ाना खाली हो जाएगा और सरकार ही नहीं रहेगी।'[१] आखिरकार अंग्रेज़ों के जाने के बाद ज़मींदारी खत्म हुई है। हालाँकि ज़मींदार धड़धड़ अपने इलाके के पेड़ बेच रहे थे। ऐन वक्त पर जहाँ तक ज़मीनों के पट्‌टे अपने अज़ीज़ों के नाम करने की बात थी। आम तौर पर ज़मीनदार किसानों को ज़मीन से बेदख़ल करके ज़मीन के पट्‌टे अपने या रिश्तेदारों के नाम कर रहे थे। मगर अब्बा मियाँ हरगिज़ उन किसानों को बेदख़ल नही कर सकता था जो ज़मीनें जोत रहे थे। वैसे तो अब्बा मियाँ का जो कुछ भी था ज़मींदारी ही थी। वह भी सैकड़ों सालों से पुरखों की बची-खुची जायदाद थी। वही उनकी ज़िन्दगी का ढ़र्रा था और आमदनी भी। उसी से ही उनका नाम और सम्मान था। ज़मीन्दारी चले जाने के बाद उन्होंने कसम खायी कि वह कभी अपने इलाके नहीं जायेगा। अपना अभिमान खोने को वे कभी तैयार नहीं थे।

ज़मीन्दारी समाप्त होने के बाद वे कांग्रेस के पक्के दुश्मन हो गये थे। चूँकि उनका यह मानना था कि ज़मींदारी कांग्रेज़ ने खत्म की है। इसके बाद उनके ऊपर ऐसा मनोवैज्ञानिक असर पडा था कि वे राजनीति से ही दूर हो गये थे। यद्यपि उन्हें राजनीति से कोई दिलचस्पी न थी तदापि वे मोहम्मद अली जिन्ना और जवाहरलाल नेहरू के बड़े प्रशंसक थे। दरअसल वे इन दोनों की राजनीति नहीं बल्कि मोहम्मद अली जिन्ना की दिमागदारी और जवाहर लाल नेहरू की शराफ़त और मुस्लिम परस्ती को दिलो - जान से पसंद करते थे। अब्बा मियाँ को पाकिस्तान से बड़ी हमदर्दी थी, लेकिन वहाँ जाने की बात उन्होंने कभी सोची नहीं थी। अब्बा मियाँ ईमान के पक्के और मूल्यों के पक्षधर थे। उनके सरीखे पात्र मीर तकी व अमीन साहब निस्वार्थ चरित्र के अधिकारी थे।

---

(१) सात आसमान - असगर वजाहत, पृ - १५२

अपना खाना चिड़ियों को खिला देने वाले मीर तकी केलिए चिड़ियाँ ही सबकुछ थी। तेज़ बुखार के बावजूद उन्होंने चिड़ियों को पानी रखा, उन्हें खिलाया। मृत्यु के बाद अन्तिम विदाई भी उन्हें चिड़ियों ने दी थी 'सुबह मीर साहब को गुस्त देकर कफ़न दिया गया और जनाज़ा बरामदे में रखा गया। अचानक गौरयों का जत्था आया और उन पर बैठ गया। उनके बाद तो ताँता लग गया। उनकी मय्यत गौरयों से ढ़क गयी। गौरयाँ चीं - चीं कर रही थी और मय्यत पर से हटने का नाम न लेती थी। उन्हें किसी ने हटाया भी नहीं। हुज़ूर ने भी कहा कि चिड़ियों को मय्यत से ऊपर से न हटाया जाय। थोड़ी देर बाद चिड़ियाँ अपने आप उड़ गयी तो मय्यत अठाकर दफ़न कर दी गयी।'[१] इतना दिलकश चित्रण है कि पाठकों के मन में मीर तकी के प्रति पूरी करुणा उपजती है।

उपन्यासकार ने निर्ममता या संवेदन हीनता के हद तक पात्रों को जिया है। मोतमुद्दौला के किसी तिकड़म, स्वार्थवृत्ति, साजिश को छिपाने की कोशिश नहीं की गयी है। इसके एवज़ उन्हें बिलकुल क्लोज़अप में चित्रित किया है। वे निहायत कुटिल, षड्यन्त्रकारी और दूरदर्शी खिलाड़ी थे। हारी हुई बाजी जीत लेने में माहिर थे। आख़िरकार सज़ायाफ़ता होने के बावजूद सज़ा से बच निकलने की कला में भी वे माहिर थे। वाचक के ननिहाल की विशाल सफ़ेद कोठी, जो पहले रामनारायण लाल की थी, मोतमुद्दौला की खरीदारी में आयी थी। करीब बीस साल तक अवध के वज़ीरे आज़म रहे मोतमुद्दौला को बेहिसाब दौलत थी। उन्होंने अपनी बेटी दाऊदी बेगम की शादी एक गरीब, लेकिन अच्छे खानदान के, खरी हड्डी वाले सैयद से करवा दी। उनके रहने केलिए

(१) सात आसमान - असग़र वजाहत, पृ - ७४

सफेद कोठी के बराबर महल बनवाया था। उन्हें पच्चीस हज़ार रूपये वसीफा मिलता था। इसके अतिरिक्त उन्होंने बड़ी बड़ी ज़मीन्दारियाँ खरीद ली थी और वे काफी शानो - शौकत से रहते थे। गर्मियों की छुट्टियों में वाचक तथा अन्य जिस महल में जाया करते थे वह मोतमुद्दौला द्वारा बनवाया गया महल था और सफेद कोठी उन्होंने सेठ रामनारायण से खरीदी थी। वहाँ जो घर बने थे वह किराये पर उठाये गये थे जिनका पैसा उस खानदान के लोगों को मिलता था। सेठ रामनारायण ने यह कोठी अपनी रखैल और अंग्रेज़ दोस्तों की खातिरदारी करने हेतु बनवाया था। मोतमुद्दौला अवध की सरकार में वज़ीरे - आज़म थे। उनके बादशाह गाज़ीउद्दीन उनकी मुट्ठी में थे। सारी ताक़त उनमें थी। अपनी फतह के रास्ते में आनेवाली प्रत्येक बाधा को उडा देने में वे सक्षम थे। हालाँकि हालात के पलटा खाने की वजह से वे मुल्कबदर कर दिये थे।

वे अपने ज़माने में हिन्दुस्तान के मशहूरतरीन और मालदारतरीन लोगों में गिने जाते थे। उन्होंने 'नासिख' को अपने ऊपर कसीदा लिखने का इनाम एक लाख रुपया दिया था। यह सुनकर असदुल्लाह खाँ 'गालिब' ने भी मोतमुद्दौला पर कसीदा लिखा था। मगर गालिब अहंकारी होने के कारण मोतमुद्दौला ने उसको ठुकरा दिया था। मोतमुद्दौला की कब्र के संबन्ध में उपन्यासकार ने यूँ लिखा है जो कि उनके अतीत के क्षरण की मिसाल है - 'कब्र देखता हुआ मैं आगे बढ़ता रहा। इमारत के बीच में जो हाल था वहीं बीचों बीच एक बड़ी - सी कब्र थी जिस पर संगमरमर के पत्थर लगे थे। कतबे पर इस कदर धूल था कि यह न पढ़ा जा सकता था कि यह किसकी कब्र है। मैं ने कतबा पढ़ने की कोशिश की तो रिक्शेवाला मेरी दिक्कत समझ गया

उसने कतबे से मिट्टी हटाना शुरू कर दी। जैसे - जैसे वह मिट्टी हटाता जा रहा था मैं कतबे को पढ़ता जा रहा था। एक - एक लफ़्ज सामने आ रहा था। लंबे - चौड़े अल्काब नज़र आने लगे। उसके बाद रिक्शे वाले ने और मिट्टी हटाई तो असली नाम नज़र आया और मैं दर हक़ीक़त कुछ लड़खड़ा सा गया - नाम था मोतमुद्दौला। तो ये मोतमुद्दौला की कब्र है। बिलकुल इसे यहीं होना चाहिए था। मोतमुद्दौला की याद आई और उसके साथ - साथ मिर्जा असद असदुल्लाह खाँ 'गालिब' की याद आ गई - गालिब, जिन्होंने मोतमुद्दोला की शान में कसीदा लिखा था। लेकिन उनकी शर्तें मौतमुद्दौला ने नहीं मानी थी इसलिए कसीदा गलिब ने उन्हें नहीं सुनाया या पेश किया था।'[१]

जत्तन मियाँ और उनके पुत्र लक्खू मियाँ के बीच के टकराव एवं असहमती के चित्रण द्वारा उपन्यासकार ने पुरानी एवं नई पीढ़ी के बीच की दरारों को पेश किया है। हुज़ूर के इंतिकाल के पश्चात् पुश्तैनी हवेली में जत्तन मियाँ और उनका खानदान बचा था। जत्तन मियाँ मस्तमौला किस्म के आदमी थे। उन्होंने एक निहायत खूबसूरत सत्ती (रखैल) को डाल रखा था। उसको दिलोजान से चाहते थे। उसकेलिए नीचे मोहल्ले में एक साफ़-सुथरा लेकिन कच्चा घर बनवाया था। सत्ती की खूबसूरती अफ़सानों और दास्तानों की शक्ल इख्तियार कर गयी थी। जत्तन मियाँ उस पर दिलो-जान से फिदा थे और निकाहनामा भी पढ़ चुका था। जत्तन मियाँ के सभी इख़्तियारात लक्खू मियाँ को दे दिये थे। लक्खू मियाँ ने अपने इख़्तियारात को कई तरह से आज़माया। मिशिन अस्पताल में हाल ही में आयी हुई आइरिश लेड़ी डॉक्टर से उसका चक्कर था। जत्तन मियाँ को पैसा लक्खू मियाँ से माँनना पड़ता था। खानदानी

---

(१) सात आसमान - असगर वजाहत, पृ - २४७

जायदाद के अहंकार में लक्खू मियाँ पैसों को पानी की तरह बहा रहे थे। पैसे की आवश्यकता पड़ने पर जत्तन मियाँ ने अपनी निजी कीमती अंगूठी बेच डाली तो लक्खू मियाँ उससे टकराने लगे 'वो अंगूठी आपकी खरीदी हुई नहीं थी। आप खानदानी जायदाद को इस तरह बर्बाद नहीं कर सकते।'[१] लक्खू मियाँ, रत्ती से बाप के संबन्ध को तोड़ने का प्रयत्न करता रहा। तलाकनामा अपने बाप के सामने रखकर उसने दस्तख़त करने को कहा। लक्खू के हरकतों से मज़बूर जत्तन मिया ने कहा 'लक्खू तुम खानदान के पहले ग्रेजुएट हो। मुझ पर हाथ उठाकर तुम खानदान के ऐसे पहले बेटे भी बन जाओ जिसने अपने बाप को मारा हो।'[२] अन्त में मन मारकर उनका देहांत हुआ। लक्खू मियाँ की नाराज़गी कम नहीं हुई। उसने रत्ती को कष्ट पहूँचाता ही रहा कि किसी पागल के साथ उसकी शादी करवाने की धमकी दी। मगर रत्ती ने अपनी बेटी जुबैदा को अब्बा मियाँ के हवाले कर आत्माहुति दी। ज़ाहिर है नवाबों के खानदान की दुर्गति से नव्वाबी टूटती है।

उपन्यासकार ने मौखिक परंपरा द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी से हस्तान्तरित अतीत की घटनाओं, पात्रों और प्रसंगों को नानफिक्शन बनाकर तथा अपने बुजुर्खों की कथा सुनाकर अतीत की उन तमाम विसंगतियों व विद्रूपताओं का पर्दाफाश किया है। अब्बा मिया के मरने के बाद वाचक के अब्बा को डर था कि उन्होंने कर्ज़ छोड़ा होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ था। अब्बा मियाँ के बचपन के दोस्त अब्बू साहब जो कि मुंशी के तौर पर सारा काम करता था, उनकी मृत्यु के बाद आधा मर चुका था। अब्बा मियाँ से बयालीस साल का संबंध छूट गया था। अब्बू साब के पास अब कोई काम न था। अब्बा को किसी मुंशी की

---

(१) सात आसमान - असगर वजाहत, पृ - ८८

(२) वही, पृ - ९८

ज़रूरत भी न थी। हालाँकि वे अब्बू साहब को नौकरी से निकाल भी नहीं सकते थे। चूँकि उनका उस खानदान से एक अलिखित संबन्ध था। वे अपने आबाई वतन लखनऊ से कलकत्ता (उनके परदादा वाजिद अलीशाह के यहाँ) जाते वक्त अब्बा मियाँ के यहाँ दिन भर केलिए रुके थे। मगर मियाँ ने उन्हें जाने नहीं दिया। दिल बदलाने केलिए उन्हें अपना - हिसाब किताब भी भेंट दिया। अब्बा मियाँ के पुराने नौकरों में अब्बा ने अंगनू और बकरीदी को ही रखा था। उनसे भी अब्बू साब के जैसा सरोकार था। बाहर वाले नौकरों में मुश्ताक़ बचा था। वह फाटक के पासवाली कोठरी में सपरिवार रहता था।

अब्बा मियाँ वाचक के अब्बा के हाईस्कूल में फेल होने पर उन्हें प्रमोट करने केलिए गवर्नमेंट हाईस्कूल के हेडमास्टर के नाम खत लिखे थे कि उसे प्रमोट कर देना चाहिए। चूँकि वे ऊँचे शरीफ़ और ज़मींदार घराने के लड़के हैं। ज़ाहिर है परीक्षा में हारना और जीतना आर्थिक हिसाब से जाना जाता है न कि पढ़ाई से। खैर, शिक्षा भी अर्थ की कठपुतली रही। फिलहाल पूँजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति ने शिक्षा के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन किये हैं कि वह न घर की रही न घाट की। शैक्षिक संस्थाएँ आज अर्थतन्त्र की गिरफ़्त में है। वहाँ चन्द पैसे वाले बच्चों को घृणा की दृष्टि से देखते है। फिर बड़े - बड़े ओहदे वाले, बडे घरों के बच्चों को विशेष सुविधा देते हैं। इसप्रकार भेद-भाव की संस्कृति पैदा करते हैं।

दरअसल सामन्ती सामाजिक संरचना को बरकरार रखने में अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की अहम भूमिका रही है। चूँकि सामन्ती सामाजिक व्यवस्था से सामन्तों के बराबर उन्हें भी फायदा थे। या कहिए कि अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद एवं

नवाबी सामन्तवाद की नींव शोषण और बरबरता पर आधारित था। अतएव दोनों को वह अकूत पैसा अवाम् को निचोड़ने से हासिल होता था। इसलिए ज़मीन्दारी का अर्थतन्त्र ही उसके सामाजशास्त्र की मिसाल रही। इसके संबन्ध में उपन्यासकार करारा व्यंग्य करते हैं - 'ज़मीन्दारी एक ऐसा सदा बहार पेड़ था जिस पर जब लाठियाँ मारो पैसा झड़ता था।'[(१)] इसके बदौलत ज़मीन्दार पीढ़ी-दर-पिढ़ी अपना रास्ता नापता चला। ज़ाहिर है उपन्यास में सामन्ती ज़मीन्दारी अर्थ केन्द्रित व्यवस्था का ऐतिहासिक संदर्भों से पड़ताल हुई है जोकि उनके समाज शास्त्र केलिए एक सशक्त मिसाल है। यह उपन्यास सामन्ती परिवारों के बनते - बिगड़ते जीवन नैरन्तर्य की तस्वीर पेश करता है। गौरतलब है कि कमोबेश सामन्तों को विलासिता के हैवा ने फँसा लिया है और उपन्यासकार ने अपने बुजुर्गों की इस ज़िन्दगी को बिना लाग-लेपट के उकेरा है। उन्होंने वाकई निर्ममता के हद तक अपनी विरासत की दास्तान पेश की है, मगर अन्दर ही अन्दर उस पीड़ा या टीस को भी मुखरित किया है।

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में ऐतिहासिक परिवार की सत्ता के उदयास्त चित्रित है। इसका धक्का लेखक के अब्बा के ज़रिए उपन्यास में अभिव्यक्त है। अतः वे विकास की यातना को भुगतनेवाला पात्र है। उन्होंने मरते दम तक अर्ध आधुनिकतावाले अपने दोनों बेटों (वाचक और उनके छोटे भाई) को मुम्बई व दिल्ली महानगरों से लौटने की सलाह देते और आशा करते रहे। मगर दोनों बेटे टूटती हुई ज़मीन्दारी का हिस्सा नहीं बनना चाहते थे। अतः महानगर से उनकी वापसी नामुमकिन था। वाचक के पिता इसलिए ही इस कृति का सर्वाधिक सच्चरित्र है जिन्हें अतीत की तमाम यन्त्रणाओं व टूटन को सहना पड़ा। यद्यपि

---

(१) सात आसमान - असग़र वजाहत, पृ - ८६

वे प्रत्येक वाक़या और हालात से धोखा खाते हैं परन्तु मानव गरिमा को बेशक नहीं छोड़ते। मसलन 'पटवारी को अब्बा ने जब एक बीघा ज़मीन देने का वायदा किया तो उन्हें मालूम न था कि खेत का नम्बर क्या है और हक़ीक़त में उसका रकबा कितना है। पटवारी बड़ी मासूमियत से एक दिन उनके पास आया और बोला 'भइया, आपको तहसील आने में दिक्कत होगी। रजिस्ट्री यहीं करा लेते हैं।.........' उनके दिमाग में यह बात आयी तक नहीं कि पटवारी, जिसे वे मर्ज़ी से एक बीघा ज़मीन दे रहे हैं, उनके साथ जालसाज़ी कर सकता है।[१] अर्थात् पटवारी ने एक बीघे के स्थान पर चालाकी से चार बीघा ज़मीन हड़प लिया।

अब्बा ने उनके बेटों के रहने केलिए सारे के सारे इंतज़ाम कर लिया था कि कम से कम उनमें से कोई सपरिवार आकर रहे और जायदाद संभालें। लेकिन ज़िन्दगी के निर्णायक और अन्तिम फरेब उन्हें अपनी संतानों से हासिल हुई जिसकी वजह से उनकी ज़िन्दगी की आखिरी सांसे तनहाई से भरपूर वीरान मकान में हुई थी। उन्हें हमेशा पुरखों की ड्योढ़ी वीरान होने की आशंका सताती थी। उन्हें अपने वतन से जितनी हमदर्दी थी, उतनी ही हमदर्दी उन्हें अपने बच्चों से थी।

इसीलिए ही वाचक ने जब अपने शहर, अपनी योजनाओं या नौकरियों की संभावनाओं या अपने इरादों के बारे में बताकर चिट्‌टी लिखी तो उनके अब्बा ने उसका सामान्य उत्तर लिख डाला। अर्थात् कोई नाराज़गी नहीं प्रकट की। यह पढ़कर लेखक का मन मानसिक क्लेश से उभर आया। लेकिन लेखक ने अब्बा से यह नहीं बताया था कि एक बार बड़ा शहर जिसकी आँखों में घुप

---

(१) सात आसमान - असग़र वजाहत, पृ - २२५

जाता है फिर हर चीज़ की एक कीमत हो जाती है। वह ऐसे छलावों का निर्माण करता है और उन पर विश्वास करता है जो जीवन भर उसका पीछा नहीं छोड़ते। वह हमेशा आगे की तरफ देखता है और अपार संभावनाओं में जीना उसकी मज़बूरी बन जाती है। ज़ाहिर है उत्तर आधुनिक दौर में जीनेवाली नई पीढ़ी अपना पितृ - ऋण इसी तरह चुकाती है। चूँकि हालात बदल गये हैं। फिलहाल दशरथ पुत्र राम की उपस्थिति माँ - बाप केलिए एक अधूरा सपना है। बहरहाल सामन्ती ज़मीन्दारी व्यवस्था की खात्मा मात्र आज़ादी से नहीं हुई बल्कि नई पीढ़ी ने भी एक हद तक इसकी अस्वीकृति की। वाचक स्वयं उस सामन्ती परिवार का हिस्सा होने के बावजूद अपनी महानगरीय संभावनाओं के सम्मुख पुश्तैनी मिल्कियत को नकारता है। उनके छोटे भाई ने भी पुरानी व्यवस्था का कुपोषण किया था। उपन्यास के ज़रिए सामन्ती झूठी शान के पीछे जो सच्चाई है उसे मार्मिक ढ़ंग से पेश किया गया है जिससे पाठक उस सच से अवगत होने केलिए ज़िम्मेदार है। वस्तुतः उपन्यासकार ने अपने जीवन की ऐसी दास्तान सुनाना चाहा कि जिससे उसकी परतें खोलती चली जाये, कभी न खतम होनेवाली कहानी की तरह।

उपन्यास के प्रारम्भ में जिस कुएँ का संकेत है, उसका ऐतिहासिक महत्व है। उसके पानी की ऐतिहासिक सिफत यह है कि जो भी उसका पानी पी लेता है, वहीं ठहर जाता है यहाँ कुआँ एक प्रतीक है - सीधी - साधी सुस्त रफ़तार सैकड़ों सालों के थपेड़ों को सहती, हज़ारों तब्दीलियों को हज़म करती, अपनी ही तरंग में बहती वह ज़िन्दगी का जो किसी भी सांचे में ढ़लने से इनकार कर देती है। उस कुएँ की तलहटी में पानी चाँदी की तरह चमकता है। उसमें

आवाज़ दी जाने पर जवाब भी मिलता है। इस प्रकार की ठहरी, गठी हुई ज़िन्दगी के, बहुत चेहरे है। 'यह हिन्दुस्तानी जीवन की रंगत ही है जो अपने जीवन की आध्यात्मिक समझ और भौतिक सहजता केलिए जाना जाता है, फक्कड़पन, लापरवाही, सनक और मस्तीपन केलिए जाना जाता है।'[१] जैसे, अब्बा मियाँ, अब्बू साब, अब्बाजान आदि। एक एक चेहरा एक एक किताब के समान अपनी किस्सा सुनाती हुई हमारे समक्ष मँडराती हैं। अतएव इस प्रकार के असंख्य चेहरे, अनगिनत किताबों की पोल खोलना ही उपन्यास का मकसद है।

उपन्यास की ऐतिहासिक व्याप्ति उसकी सघनता में विद्यमान है। शिया परिवार की समस्याओं के ताल्लुक वाकई हिन्दू मुस्लिम मानसिकता, साम्प्रदायिकता, दलित समस्या और सामन्ती शोषण से है। मगर इन सबको स्पष्ट रूप से महज़ समस्या के बतौर पेश नहीं किया गया है। बल्कि परोक्ष रूप से ये समस्याएँ उपन्यास में दृष्टिगत है। मसलन उपन्यास में अब्बा मियाँ के बारे में कहते वक्त लेखक ने सूचित किया है कि वे हिन्दू मुसलमानों केलिए हिन्दू रसोइयाँ बुलाया जाता था। वह अपने बर्तन साथ लाता था। वे हिन्दू का छुआ न खाते थे। इसी तरह इस बात को भी सही समझते थे कि हिन्दू, मुसलमान के हाथ का छुआ न खायें। यहीं नहीं वे गैर - मज़हब तौर पर ऊँचे अच्छे व खानदानी लोगों की कद्र करते थे। इसलिए उनके दोस्तों में इलाक़े के पंडित, ठाकुर और कायस्थ ज़मीन्दार थे, जिनसे वे अपने मतलबी रिश्ता रखते थे। मुगल शासन काल में ज़्यादातर मुसलमान शासकों में आपसी संघर्ष रहा है। उनके बीच में साम्प्रदायिक कठमुल्लेपन की गुंजाइश थी, जिसे उपन्यास के ज़रिए प्रस्तुत

---

(१) दुर्गाप्रसाद गुप्ता - 'इतिहास के समय में साहित्य और साहित्य के समय में इतिहास' - साक्षात्कार - मई ९९, पृ - १०७

किया है। उनके नवाबों में अवैध संबन्ध के सिलसिले का संकेत है, लेकिन किसी गैर - मुसलमान स्त्री से संबन्ध रखने का उल्लेख नहीं है। एकाध - स्थान पर लक्खू मियाँ के विदेशी डॉक्टर विक्टोरिया से मिलन का जिक्र हुआ है। ज़ाहिर है नवाब नाजाइज़ संबन्ध भी अपनी ही बिरादरी से रखने के पक्ष में थे। इसमें हिन्दू - मुस्लिम संप्रदायवाद न होकर मुस्लिम - मुस्लिम संप्रदायवाद का, उनके आपसी झगडे, टूटन का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान अस्तित्व में आए नवाब सामन्तों की शान - शौकत, फिजूलखर्ची, सनक व दीवानगी की इतिहास कथा से शुरू होकर आहिस्ता आहिस्ता उनके टूटने और पशत होने की दास्तान है। दरअसल इस किस्से में जो मर्मिकता आयी है, वह अतीत के प्रति उपन्यासकार की भावुकता का ही परिचायक है। गम और टीस से लबालब यह कहानी बेहद अपनेपन के साथ प्रस्तुत की गयी है। इसकेलिए 'नरेटर' के रूप में वाचक के जिस अवलोकन बिन्दु का इस्तेमाल किया गया है, वह कथ्य की प्रस्तुति केलिए एकदम मौजू है। उनकी याद में मोतमुद्दौला जैसे शक्तिशाली नवाब से लेकर उसके अपने समय तक का इतिहास ताज़ा है। वाचक की त्रासदी यह है कि वह अतीत से छुटकारा नहीं पाना चाहता जबकि नयी पीढ़ी उससे तौबा कर चुकी है। यह नयी पीढ़ी इस अतीत को सर्वथा भूल जाना चाहती है। उपन्यासकार का इरादा है कि पुरानी हवेली को कितना भी रंग रोगन करते नया बनाया जाए, उसमें वह लौटना नहीं चाहती। यहीं वह जगह है जहाँ नयी और पुरानी पीढ़ी का द्वन्द्व दिखाई पड़ता है, जिसमें उपन्यासकार की खुली दृष्टि और सन्तुलित सोच दर्ज हुई है। परन्तु उपन्यास में इस द्वन्द्व को बेहद कम

गणना मिली है, जो इसे दर्द की कथा से बहुत आगे नहीं बढ़ने देता। विश्वनाथ त्रिपाठी के मुताबिक 'सात आसमान' 'वंश इतिहास परिवर्तन की प्रक्रिया का आईना है जो था वह नहीं रह गया। लेखक चूँकि 'नहीं रह गया' की काल भूमि से न रह जाने वाले अतीत को देख रहा है, इसलिए अतीत - गौरव के प्रति एक प्रकार के व्यंग्य और विरक्ति का भाव है।'[१]

५.२.४ 'कैसी आगी लगाई': एक विश्वविद्यालयी परिसर की धड़कनें

असग़र वजाहत की औपन्यासिक काबिलियत की एक और मिसाल है उनका बहुचर्चित उपन्यास 'कैसी आगी लगाई'। यह उपन्यास त्रयी का पहला भाग है। यह लेखक के स्वप्न देखने, उसके टूटने और उसे जोड़ने की आकांक्षा की त्रयी है। इसका प्रथम भाग १९९६ - ९७ के दौरान बुदापेश्त और हंगरी में लिखा गया था। प्रस्तुत भाग एक पृष्ठभूमि है जिसमें जीवन अपने विविध रंगों के साथ छात्र जीवन और सपनों के टूटने का जिक्र है। यह हिस्सा एक अर्थ में जीवन का प्रारम्भ है। 'आग' प्रतीक है जो जीवन की पहली शर्त है। यह एक जीवन को जन्म देती है जो निरन्तर बढ़ता जाता है। 'हमारी पीढ़ी के सपने बनते हैं और टूटते है। सपने टूटने का जो सिलसिला उपन्यास के अन्तिम हिस्सों से शुरू होता है वह दूसरे भाग में अपने चरम पर पहूँचता है। तीसरा भाग उस टूटे सपने को पुनःस्थापित करने का काम करेगा और इस प्रक्रिया में पिछले और आनेवाले वर्षों को साकार करने का प्रयास किया जाएगा।'[२]

---

(१) विश्वनाथ त्रिपाठी - 'विकास की यातना', हंस - फरवरी १९९९, पृ - ८७

(२) असग़र वजाहत 'रचनाकार असग़र वजाहत से मधु की बातचीत, साक्षात्कार - अप्रैल २००६, पृ - १३

उपन्यास में मुख्यतः अलीगढ़ शहर व (मुस्लिम) विश्वविद्यालय की ज़िन्दगी को उसकी तमाम सामाजिक वुद्रूपताओं के साथ पेश किया गया है। स्वाधीन भारत की समूची हालातों का बयान है। मसलन, स्वतन्त्र भारत की चुनाव प्रणाली, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, व्यापारिक संस्कृति, सामन्ती सडन, मुस्लिम समाज की सोच, जीवन आशंकाएँ, भय व संदेह मिथ्या चेतना आदि। विश्व विद्यालय की छात्र - राजनीति, शिक्षा पद्धति का बिगड़ता ढ़ाँचा आदि अनगिनत मसलों का पोल खोलने का प्रयास भी उपन्यास में दृष्टव्य है।

प्रस्तुत उपन्यास की शुरुआत दिल्ली शहर के हिन्दू - मुस्लिम दंगे के ब्यौरे से होती है। दंगों के दरमियान होनेवाले लूट में शिरकत वर्ग की हिस्सेदारी गुजरात - गोधरा दंगों की याद दिलाती है कि दंगा है या दंगे का जश्न। दंगे - फसाद के दौरान कर्फ्यू लम्बा खिंचता चला गया था। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वलिद्यालय के छात्रों के बीच दंगों की भारी बहसें होती थी। उनमें कहीं न कहीं प्रौढ़ मत भी मिलते हैं - 'तब्लीगी जमात के लड़के कहते थे कि हमारा ईमान कमज़ोर हो गया है इसलिए हम पर इस तरह की मुसीबतें आती है। अगर हर मुसलमान पक्का और सच्चा मुसलमान हो जाए तो अल्लाह अपने - आप रास्ता निकालेगा'।[१] यह लोकमत से कम नहीं है। कम्यूनिस्ट ख़यालात के लड़कों का कहना था कि साम्प्रदायितका दंगों की राजनीति है और इसकी खात्मा क्लास स्ट्रगल (वर्ग संघर्ष) के तेज़ होने से ही मुमकिन होगा।

यहाँ शिया सुन्नी भीतरी संघर्ष भी विचारणीय है। ज़ाहिर है विश्वविद्यालय भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने में एक से बढ़कर एक है। उपन्यास में संकेत है कि शिआ छात्रों केलिए पाठ्यक्रम में शिऑलजी की क्लास दिया जाता था।

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - १६

कथा वाचक तथा उनके दोस्त अहमद भी शिआ होने की वजह से प्रैक्टिकल के बाद शिऑलजी की क्लास जाते थे। वहाँ आमतौर पर शिओं को 'खटमल' और सुन्नियों को 'मच्छर' कहा जाता था। लेकिन सुन्नियों की अपेक्षा शिओं को अधिक मान्यता मिलती थी कि वे आरामदेह बिस्तरों में रहते है और मच्छर गंदे नालों में। इस प्रकार की विनोद प्रियता के अन्दर खुरेदता यथार्थ छिपा रहता था। उपन्यासकार का इशारा है कि प्रत्येक मज़हब में आन्तरिक संघर्ष निहित है। इसका उन्मूलन करने का दायित्व शिक्षा के संवाहकों में भी है। लेकिन साम्प्रदायिक जनून की गिरफ्त में पड़ी शिक्षा पद्धति व पाठशालाओं के बदलते चेहरे को धोने का उत्तर दायित्व कोई नहीं लेता। भारतवर्ष की यही विडम्बना है।

असग़र वजाहत ने सातवें दशक के अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को अपने उपन्यास की कथाभूमि बनाया है, जब वे स्वयं वहाँ छात्र थे। लिहाज़ा उन्हें चीज़ों और घटनाओं को निकटतम देखने - परखने का अवसर मिला है। उपन्यास में तमाम विश्वविद्यालय अपनी गति और स्थिति के साथ उभरता है। उपन्यासकार साजिद का जामा पहनकर नैरेटर की भूमिका उदा करते है और उस मुस्लिम विश्वविद्यालय के अनदेखे पहलुओं को बाहर लाता है। वे चालीस वर्ष के उस कालखण्ड़ को, जो आपबीती है, फिर से रचते हैं। जो अपने जीवन संघर्ष में पराजय को भी अपनी व्यक्तिगत हार नहीं मानता। लिहाज़ा यहाँ समझौता न कर पाने वाले युवक के स्वाभिमान की ही फतह हुई है।

उपन्यास के ज़रिए अलीगढ़ शहर व विश्वविद्यालय की समूची शक्ल दिखाई पड़ती है। अतएव धीरे - धीरे विश्वविद्यालय का खुलना, रोमांच से भर

जाता है। जहाँ फिरकापरस्ती की अनुकूँज बड़े पैमाने पर दिखाई देती है। यहाँ ज़िन्दगी की संपूर्णता का दिग्दर्शन है। चूँकि आदमी की संपूर्णता केवल न उसके दोषों के आधार पर देखा जा सकता है और न उसकी अच्छाइयों के आधार पर। अतः अपने दोषों पर विजय प्राप्त कर उनसे आगे बढ़कर रास्ता तलाशनेवाला ही बड़ा आदमी होता है।

साजिद के दोस्तों में अहमत, शकील, राही (राही मासूम रज़ा), इल्मी आदि थे। इनमें अहमत और शकील के साथ ज़्यादा उसकी दोस्ती थी। साजिद अपने छात्र जीवन की सारी अच्छाइयों और बुराइयों को जीतता हुआ लगातार लड़ाई के जंग में उतरते है। दूसरों के दुख-दर्दों में सर्वदा साथ देनेवाले जावेद कमाल और के.पी. सिंह जैसे पात्र आज के संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है कि वे अपना नुकसान करके भी, दूसरों की भलाई चाहते हैं। इरफान हबीब प्रतिष्ठित प्रोफेसर होने के बावजूद चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की खुशहाली केलिए संघर्षरत है। मगर मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पण्डितजी, डॉ. कल्याण कुसुम जैसे प्राध्यापक भी वहाँ मौजूद है जो ईर्ष्या - द्वेष को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानते है। इस प्रकार हमारे समक्ष विश्वविद्यालय की सीमित व ज़ाहिल दुनिया खुलती है। जिन्होंने इस विश्वविद्यालय को नहीं देखा, वहाँ रहने और पढ़ने का मौका नहीं मिला, वे उपन्यास पढ़ते हुए अद्भुत हो जाते है। इस विश्वविद्यालय ने पाकिस्तान बनवाने में अपना बौद्धिक योगदान दिया था।

प्रेम प्रसंगों में भी लेखक ने विनोद प्रियता का पर्याप्त सहारा लिया है। मुस्लिम युनीवर्सिटी में सिर्फ एम.ए. की क्लास में 'कोएजुकेशन' थी। बी. ए.

या बी.एस.सी. में यह नहीं थी। इस कारण लड़की शब्द का एक अजीब मतलब ही वहाँ के लड़कों को था। यानी एक तरह से उन लोगों ने लड़कियों के नाम किताबों व पत्रिकाओं में ही पढ़े थे। लिहाज़ा इमाम साहब ने जब यह बताया कि कल एक लड़की (ज़ोया) भी आ रही है तो उन सबकी खुशी और डर का ठिकाना न था। चूँकि वाचक और उनके दोस्त शकील लड़कियों से बात करने में हकलाते थे। मगर अहमद इस काम में बहुत ही होशियार था। हालाँकि उन तीनों केलिए लड़कियाँ रहस्यमयी दुनिया का एक ऐसा हिस्सा थीं जो ख्वाबों में था, इसलिए वह बहुत साफ नहीं था। इस तरह स्त्री पुरुष संबंध का चित्र भी खींचा है।

साज़िद के दोस्तों में शकील बस्ती का था। बदायूँ में उसके अब्बा की बेहद बढ़िया दवाओं की दूकान है। अहमद अमीर घराने के है। लखनऊ के कैसरबाग में उसकी शानदार कोठी है। वहाँ आज़ादी की यादें भरपूर मात्रा में विद्यमान है। १९३७ में वहाँ महात्मा गाँधी की प्रेस कान्फ्रेंस हुई थी। चूँकि अहमद के अब्बाजान पक्के कान्ग्रेसी थे। सदाकत आश्रम में गाँधीजी की बहुत सी तस्वीरें थी। मानो सामन्त के भीतर भी सदाकत आश्रम की कद्र हो, जिसमें सरोजनी नायडू, मौलाना आज़ाद और जवहरलाल नेहरू तक के स्मरण मौजूद थे। उनके अब्बा ने तो घर को कान्ग्रेज़ी माहौल का म्यूज़ियम बना दिया था। वे साम्प्रदायिक सद्भाव को सरेआम स्वीकार करते थे। लिहाज़ा होली, दीवाली, दशहरा ही नहीं ईद, बकरीद, शबबरात, रमज़ान, मोहर्रम सब मनाते थे।

अहमद के अब्बा राजा साहब ने चार - पाँच मुलाकातों में ही साजिद को उनके अतीत के बारे में सब कुछ बता दिया था। राजा साहब के वालिद को उनके चाचा ने ज़हर दिलवा दिया था ताकि गद्दी उन्हें मिल जाए। लेकिन गवर्नर

को यह मंजूर न था। उसने राजा साहब को जो उस वक्त बारह साल के थे, गद्दी दे दी और रियायत की देखभाल करने हेतु एक अंग्रेज़ मैनेजर तैनात कर दिया। मगर युवा राजा की जान भी खतरे में था। अतः अंग्रेज़ मैनेजर ने जल्दी ही महसूस कर लिया कि युवा राजा की जान ख़तरे में है तो उन्होंने गवर्नन को राय दीं कि युवा राजा को विलायत पढ़ाई केलिए भेजें। तेरह साल की उम्र में राजा साहब अपने अंग्रेज़ मैनेजर के साथ विलायत इग्लिस्तान पहूँचे और कैम्ब्रिज ठहरे। इसी ज़माने में उनकी मुलाकात कुछ नेशलिस्ट लीड़रों से हो गई थी। नेहरू से भी एकाध बार मिले थे। बी. ए. पास करने के पश्चात् राजा साहब हिन्दुस्तान वापस आये और असेम्बली के इलेक्शन में जीतकर कांग्रेस में शामिल हो गए। सादाक़त आश्रम में कुछ अर्से रहे। लेकिन आज़ाद भारत में कांग्रेस की पॉलिसी के मुताबिक ज़मीन्दारों को मेम्बर नहीं बनाया गया था। इसलिए उन्होंने एक अलग पार्टी 'अवाम पार्टी' बनायी लेकिन हार ही हुई। मगर उन्होंने साफ कह दिया कि अपने घर भरनेवाले कान्ग्रेज़ों से तो नाशनलिस्ट वे खुद है। राजा साहब बहुत सारे किस्से सुनाते थे, जिनमें महाराजाओं, गवर्नरों, अंग्रेज़ों, अफ़सरों, छोटे ज़मीनदारों, दलालों, गाँव के ठाकुरों, पट्टीदारों के सैकड़ों चित्र शामिल थे। अतः सबके सब ऊँचे दर्जे के फ्रॉड थे। ज़ाहिर है आज़ादी के पन्द्रह साल बाद कान्ग्रेस सरकार से मुस्लिम समाज की आशा चकनाचूर हो गयी थी।

साजिद और उनके दोस्त पढ़ाई मौज के साथ मनाते थे। ज़्यादातर वक्त पेंटिंग करने या उसके इन्तज़ाम में गुज़ारा करते थे। उनके क्लास में जो नयी लड़की आयी थी ज़ोया, तीनों उसके चक्कर में थे। ऊँचे घराने के लड़का होने

की वजह से साजिद और शकील के मुकाबले ज़ोया, अहमद से बातें करना ज़्यादातर पसन्द करती थी। गौरतलब है कि लड़कियाँ सर्वदा पुरुष के बाहरी सौंदर्य व सेटअप की ओर आकर्षित हैं। अहमद राजा सर इक़बाल अहमद का लड़का है। शकील के अब्बा की दवाओं की दूकान है और साजिद के अब्बा तहसीलदारी से रिटायर होकर खेतीबारी करा रहे थे। मतलब यह कि उन दोनों के मुकाबिले या विश्वविद्यालय के बहुत से लड़कों के आगे अहमद रईस, मशहूर, पढ़े-लिखे और इज़्जतदार खानदान का लड़का है और उसके कीमती विदेशी कपड़ों, आमेगा घड़ियों, उसके घुँघराले बालों और उसके गोरे सुर्ख रंगों में प्रत्येक लड़की डूब जाती थी।

पुरुष वर्चस्ववादी समाज में आखिर स्त्री वस्तु से माल बनती जा रही है। वह एक उपभोग वस्तु ही ठहरती है। अतः उस पर स्वामित्व किसी मालदार या ताक़तवर का ही होगा। ऐसे माहौल में स्त्री की उम्र भी नहीं देखी जाती। उपन्यास में अहमद की खाला के दूर की रिश्तेदार, खदीज़ा का जिक्र है। वह बेपनाह खूबसूरत, बेहद हसीन थी। बलराम पुर डिस्ट्रिलरी के मालिक व 'न्यू इंडिया पेपर्स' के मैनेजिंग डायरेक्टर करोड़पति कैप्टन खत्री खदीजा को देखते ही उसपर आशिक हो गए थे। उन्होंने पचास साल की उम्र में अपनी पहली बीवी को त्यागकर खदीजा को अपनाया। अब उन दोनों के बीच अहमद का आना भी दूसरे मालदार का संकेत है। इक्कीस साल का अहमद तीस साल की खदीज़ा से शादी का खयालत भी रचता है। इस दौरान खदीज़ा के साथ पहाड़ों का सैर करना, दोस्तों के साथ उसके घर जाना आदि होता रहता था। आखिरकार, प्रेम मिलन से तलाक और उससे शादी का वायदा हुआ। लेकिन

युवा अहमद नहीं जानता था कि कैप्टन खत्री ने केवल खदीजा को ही नहीं उसके पूरे खानदान को खरीद लिया है। यह जानकर उसका मन हारा और अद्‌भुत प्रेम प्रसंग मोहभंग की स्थिति में पहूँच गया।

कुँवर साहब का चित्रण भी इस बात का साक्षी है कि पुरुष केलिए अय्याशी का स्रोत स्त्री ही है। कभी - कभार स्त्री भी अपने जिस्म का नुमाइश कर पुरुष को लूटती है। वह अपनी जाति का ही अपमान स्वरूप चेष्टाएँ करती है। कुँवर साहब का रंडी (पुरानी रखैल, अज़ीमन) को लेकर घूमना और माल केलिए तीसरे हकदार डैडी का आना भी इस बात केलिए सबूत है कि पुरुष को विषय सुख की ओर आकर्षित करनेवाली स्त्री ही है और यह दोनों जानते हैं। आजकल के कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले लड़के लड़कियों के बीच प्रेम नहीं; काम ही प्रमुख है। ज़ाहिर है पुनीत प्रेम की कल्पना नाम मात्र केलिए भी नहीं। परम्परागत मूल्य इस क्षेत्र से भ्रष्ट है। अहमद का खदीज़ा के बाद रौशन से संबन्ध जोड़ना और फिर कैथी के साथ घूमना फिरना आदि वाकया इस बात को सुदृढ़ बनाती है कि नई पीढ़ी में संबन्ध या रिश्तों का जो सिलसिला है, वह अस्थिर है।

हाजी साहब की दूकान पर अक्सर साम्प्रदायिक राजनीति की बहस - मुबाहिसे होती रहती थी। साजिद, मुख्तार, मामू, अहतर और उमाशंकर इसमें भाग लेते थे। उपन्यास में साजिद द्वारा ऐसे कई प्रश्न उठाये गये हैं, जिससे, पाठक ज़रूर सोचने केलिए मज़बूर हो जाते हैं जिनमें एक सशक्त सवाल हमारी राजनीति की है। जैसे कि हमारी राजनीति में धनबल और बाहुबल का जो खुलेआम नुमाइश हो रहा है, वह मुल्क की सियासत को आखिर किधर ले

जायेगा? संकटग्रस्त भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था अपने को बचाने की खातिर तरह-तरह के प्रहसनों में संलग्न हैं। शुरुआती दौर में उसने जातिवाद व क्षेत्रीयता का आश्रय लिया। अतः जातिगत संगठनों को राजनीतिक रूप देकर अपना वजूद निकालने हेतु उसका खुलकर उपयोग किया। जाति के साथ क्षेत्रीयता को जबरन खींचने हेतु कांग्रेस के नेतृत्व में सामन्ती व पूँजीवादी जो गठबंधन हुए, उसके तहत सिद्धांतविहीन समझौता और अवसरवादिता के सभी प्रतिकार तोड़े गए। बहरहाल उचित और अनुचित सब तरह के समझौते अवाम् को नैतिक स्खलन की ओर ले गए। अतः सत्ताधारी पूँजीपतियों की इस राजनीतिकरण से भारतीय मध्यवर्ग ने, जो विकास व शक्ति शील हो रहा था, अपना आदर्श बनाने की मुहिम चलाई। समय के बढ़ने के अनुरूप जाति के साथ धर्म का गलत इस्तेमाल होने लगा। साथ ही साथ असामाजिक तत्व धर्म में भर्ती पा लिये।

उपन्यास में 'सांप्रदायिक राजनीति के सभी पोल खोलने की ज़बरदस्त कोशिश हुई है 'अरे भाइया लड़ना झगडा, मारपीट, दंगे-फ़साद किसे पसन्द हैं? न हिन्दू को न मुसलमान को......... ये तो नेताओं का खेल है........ जब जहाँ चाहे फसाद करा दें।'[१] ज़ाहिर है वर्ग संघर्ष के बदले वर्ग सहयोग की राजनीति में नेताओं की अधिक दिलचस्पी हैं। हिन्दू या मुसलमान में कोई आपसी वैर नही है। बल्कि वैर है उनकेनेताओं में। उनकी आपसी स्पर्धा ही भारत विभाजन जैसी शर्मनाक हादसा की परिणति है। उपन्यासकार का खुलासा - 'बात यह है कि राजनीति की; आर्थिक हालत की। जानते हो पाकिस्तान क्यों बना? पहला फैक्टर अंग्रेज़ों की पॉलिसी - 'फूट डालो और

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - १४४

राज करो' दूसरा और सबसे अहम फैक्टर ये था कि उभरता हुआ मुस्लिम पूँजीपति वर्ग और पुराना बड़ा मुस्लिम ज़मींदार वर्ग यह नहीं चाहता था कि आज़ादी के बाद उसे हिन्दू पूँजीपतियों से सीधा मुकाबला करना पड़े।'(१)

इन लोगों की बातों में अक्सर ऐसे सवाल उठते कि आखिर हिन्दू और मुसलमान क्यों साथ नहीं रह सकते? मात्र सवाल ही नहीं जवाब भी मौजूद होते थे। जैसे कि जवहरलाल नेहरू और मुहम्मद अली जिन्ना साथ - साथ नहीं रह सकते। जिन्ना कांग्रेस में थे। हालाँकि उन्हें अपनी बात बनती नहीं नज़र आई और लगा कि मुस्लिम लीग का मंच उन्हें क़ायदे आज़म बना सकता है तो उधर कूद गए। कांग्रेस में रहते तो उनकी हैसियत मौलाना आज़ाद से भी कम होती। नेहरू और लिय़ाकत अली खाँ में भी बड़ी दोस्ती थी। तो बात साफ है कि मज़हब की आड़ में यहाँ नेतागिरी ही चली थी। सब अपना वजूद बनाये रखने की कूवत में थे और एक बात यह है कि स्वाधीन भारत में ज़मींदारी टूट गई थी तो गैर - हिन्दू सामन्तवादियों केलिए पाकिस्तान ही आकर्षक मुल्क साबित हुआ और ही और हिन्दूस्तान में बिड़ला और टाटा से पाकिस्तान के सेठ - साहूकार सीधा मुकाबला नहीं करना चाहते थे। अतः वे अपनी तरक्की ही चाहते थे। इसकेलिए उन्हें विभाजन का जामा आवश्यक पड़ा। लेखक ने साम्प्रदायिक राजनीति की रोकथाम केलिए एकमात्र समाधान स्वरूप शर्त का भी उल्लेख किया है। लोगों के अन्दर वर्गीय चेतना पैदा की जाए और कम्यूनिस्ट के इन कारिन्दों को भी शाबाशी दी है। एकाध स्थान पर कम्यूनिस्टों की नास्तिक भावना (मान्यता) पर प्रश्न उठाया है। इस प्रकार उपन्यास में साम्प्रदायिक राजनीति केलिए पूरी टिप्पणी प्रस्तुत की गई है।

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - १४६

प्रस्तुत उपन्यास प्रशासन व पुलीस तन्त्र की सड़ाँध का प्रामाणिक दस्तावेज़ है। अतएव इसमें साम्प्रदायिक दंगों के कारक तत्वों के संकेत के साथ - साथ अनैतिकता व भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में पुलीस की अहम भूमिका का बेलाग चित्रण है। हाजीजी वाला वाकया इसकेलिए सबूत हैं। वाचक के दोस्त अतहर के अब्बा हाजीजी को पुलिस गैर - कानूनी तरह से गिरफ्तार कर गई। जिले के परिवार नियोजन विभाग के एक नया उत्साही अफसर ने तय किया कि परिवार नियोजन केलिए हर दूकारनदार को निरोध बेचने का काम करना चाहिए। उसने अपने कर्मचारियों की कई टीमें बना दीं और कहा कि शहर की हर दूकान में निरोध रखवाओ। वे जब हाजीजी के दूकान आये तो हाजी जी ने साफ इनकार कर दिया। तत् अनुरूप सरकारी काम में बाधा डालने के जुल्म में उसे घसीटते हुए थाने ले गये और बंद कर दिया। साजिद अपनी आँखों के सामने हाजी जी को पिटते देख रहा था। उन्हें डंडों, जूतों व ठोकरों से पीटा जा रहा था। आज़ाद होने के पश्चात् भी पुलिस इतना जुल्म क्यों करती है? लोगों की बात सुनने और उन्हें जुल्म से निजात दिलानेवाला कोई क्यों नहीं है? जालिम को सज़ा क्यों नहीं मिलती? मजलूम की मदद क्यों नहीं होती? ऐसे तरह-तरह के सवाल उनके मन में उठने लगे। नूरू मियाँ एम.एल.ए. ने हाजी जी को जेल से राहत दिला दी जिनकी राजनीति में अटूट पकड़ थी। लेखक के मुताबिक लोगों में राजनीतिक चेतना नही है। वे यह नहीं जानते कि उनकी और देश की बर्बादी की पूरी ज़िम्मेदारी कांग्रेस पर है; सरकार पर है। राजनीति या नीतियों की उन्हें न तो जानकारी दी जाती है और उस आधार पर वे अच्छे - बुरे का फैसला करते हैं। उनके सामने मात्र

व्यक्ति होता है और व्यक्ति के काम होते हैं। जो व्यक्ति उनका काम आता है वे उन्हें सच्चा नेता घोषित करते हैं। चाहे उस नेता से संबंधित पार्टी महँगाई, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, गलत नीतियाँ, भाई - भतीजावाद सब करें जिससे जनता का कोई लेना देना नहीं। यहाँ कांग्रेस के खिलाफ हमला बोला है कि वह पूँजीवाद और सामन्तवाद के संरक्षण का काम करती है। इसलिए उस पार्टी का कोई सदस्य चाहे जितना भी अच्छा क्यों न हो आदर्श नहीं बन सकता। हाजीजी के लड़के अतहर नूरू मियाँ एम.एल.ए. को न जानते तो ये बात इसका उल्टी होती। कितने गरीब, मासूम लोगों को पुलिस पकड़ लेती है। अदालतें सज़ाएँ सुना देती है। चूँकि वे लोग किसी नूरू मियाँ को नहीं जानते। यानी सबका किसी न किसी नूरू मियाँ को जानना ज़रूरी है। यह बिलकुल लोकतन्त्र के बरखिलाफ़ है। लेखक एक ऐसी व्यवस्था की मांग करता है जिसमें किसी भी नूरू मियाँ के बगैर लोग सुख और शान्ति से रह सके। लेकिन इस बात से लोगों को वाकिफ़ करना राजनीतिक पार्टियाँ नहीं चाहेगी। क्योंकि उनका मकसद तो जनता में आशंका बरकरार रखना और अपना काम निकालना हैं। अतः दरकार है मुख्य मुद्दों की तरफ जनता का ध्यान आकर्षित करने की। प्रस्तुत उपन्यास उसकेलिए एक विकल्प है। भारत में नारों में भाई चारा निहायत है किन्तु आपसी संबन्ध सिकुडते जा रहे हैं। सांप्रदायिकता और जातिवाद की नागफनी जंगल में ज़ख्मी जनता बौने होते जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति का अवमूलन पर्याप्त मात्रा में हो रहा हैं। फिलहाल व्यापारिक संस्कृति को बढ़ावा मिलती है।

दलितों पर हमला हमेशा होता रहता है। रामदीन जाति का 'लोध' है।

असरियापुर गाँव में रहता है और मज़दूरी करता है। मज़दूरी नहीं मिलता तो रिक्शा चलाता है। सोने केलिए जगह नहीं मिलता है तो दूकान के सामने रिक्शा खड़ा करके वहीं सोता है। लेकिन पुलिसवाले बगैर पैसे के रिक्शा में सवार होते हैं। जब पूछता है तो बदले में मिलते हैं मार व गाली। गौरतलब बात यह है कि दलितों के साथ इनसाफी बरतने केलिए आह्वान देने वाली, उनको संरक्षण देनेवाली पुलीस कर्मी अपने कर्तव्य से तो ज़रूर भ्रष्ट है। मगर दलितों को लूटने में वे सदा सजग रहते हैं। एस.पी. से शिकायत करने से भी कोई फायदा नहीं हुआ। हालाँकि रामदीन का नाम और तस्वीर अखबार में छपवा दिया और डी.आई.जी. व मुख्यमन्त्री को उसकी एक-एक कटिंग लगाकर शिकायत दर्ज किया गया। मगर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुआ। हाँ रामदीन तो चर्चा का विषय ज़रूर बना। उसकी ख्याति भी शहर भर में हुई। लेखक ने उक्त प्रसंग का इज़हार कर हमारे प्रशासन व पुलिस व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार किया है। उनके 'ये हिन्दोस्तान है प्यारे'[(१)] स्व कथन में भी यह साफ झलकी है।

लेखक की विनोदप्रियता प्रेम प्रसंगों में ही नहीं, शैक्षिक समस्याओं के चित्रण में भी है। गम्भीर तेवर को बहुत ही हास्य परिहास की शैली में उभारा गया है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के शिक्षकों के विलास और बौद्धिक दरिद्रता तमाम शैक्षिक संस्थाओं केलिए चुनौती खड़ा करते हैं। अर्थात् यहाँ कोई एक छिलका नहीं असंख्य 'छिलके' हैं। विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के रीड़र डॉ. पांडेय की राय में 'हिन्दी में एम. ए. पास करना दुनिया का सबसे सरल काम है।'[(२)] वहाँ के ज़्यादातर अध्यापकों केलिए पढ़ाने से दिलचस्प काम गप्पे मारना है। वे अपने - अपने सांस्कृतिक विकास में सजग है। मगर पढ़ाई वगैरह

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - १६०

(२) वही, पृ - १६८

उनकेलिए नगण्य है। वहीं पंडितजी हिन्दी साहित्य के इतिहास के चार काल दो मिनट में बता देते हैं। पाठ्यक्रम भी बहुत पुरानी है। पढ़ाने की सरलता को ध्यान में रखकर ऐसा किया गया है। आधुनिक साहित्य में केवल 'छायावाद' पढ़ाया जाता था। उसके बाद जो कविता लिखी गई उसके प्रति प्राध्यापकों के मन में अजीब सी घृणा थी। वे उसे साहित्य ही न मानते थे। इसी तरह प्रेमचन्द के बाद कोई अन्य कहानीकार या उपन्यास कोर्स में न था। वहीं एक ओर आचार्य डॉ. सुमन शोध करनेवाली रेखा भटनागर नामक लड़की को घर इसलिए बुलाना चाहते हैं कि उसे साड़ी बाँधना तक सिखा सकें। अतः उसकी पी.एच.डी. पूर्ण होने केलिए उसे आचार्य के सामने समर्पण करना पडेगा। यहाँ एक ओर हिन्दी साहित्य मर्सिया हुआ जाता है तो दूसरी ओर लेखन शैली भी इतनी गम्भीर हो गई है कि उसे शोक - शैली तक कह सकते हैं।

लेखक ने भाषा में भेद-भाव के प्रवेश को स्वयं अनुभूत किया है और उसपर प्रश्न चिह्न लगाया है। उस विश्वविद्यालय में हिन्दी भाषा से नफ़रत की दो वजहें है। एक तो हिन्दी को हिन्दुओं की ज़ुबान माना जाता है। एक ऐसी ज़ुबान जो पिछड़ी हुई है। जाहिलों, अनपढ़ों और देहातियों की ज़ुबान है। अतः हिन्दी पढ़ने व पढ़ानेवालों को भी नकारात्मक दृष्टि से देखते थे और इस भावना के पीछे साम्प्रदायिक मानसिकता भी काम करती है। फिलहाल विश्वविद्यालयों में भाषा किस तरह वर्ग भेद की शिकार बनती है, यहाँ उजागर हुई है।

उपन्यास में नसरीन आपा का व्यक्तित्व अधिक झलकता है। वह प्रगतिशील विचार धारा के धनी है। ऐक्टिविस्ट कॉमरेड थी। डॉक्टर नसरीन रिज़वी यूनिवार्सिटी के 'आर्ट्स क्लब' की कोआर्डीनेटर है । तथा फिलासफी

डिपार्टमेंट के रीड़र है। विश्वविद्यालय के निठल्ले अध्यापकों में एक अपवाद भी है। एक दिन पार्टी के कामरेड लाल सिद्दीक ने उससे शादी करने का मैंडेट जारी रखा तो उसने ठुकरा दिया। लाल सिद्दीक की लॉजिक यह थी कि वे क्रान्ति को समर्पित हैं लेकिन सेक्स की बुनियादी ज़रूरत पूरी न हो पाने की वजह क्रान्ति के काम में रुकावट आती है। अतः अब पार्टी के कार्य केलिए उन्हें भी काम संबन्ध ज़रूरी लगने लगा था। मगर यह बात मित्रों के हस्तक्षेप से टल जाती है और उससे मैंडेट वापस कराया गया।

उपन्यास में व्यंग्य है कि आजकल लोग पढ़ाई नौकरी के हिसाब से करते है। अपने दिलचस्प विषय को लेकर पढ़ने केलिए सब हिचकते हैं। देखते है कि कौन-सा विषय पढ़ने से अपना कैरियर जम जाएगा। अध्यापक की नौकरी हो इन्जिनीयरी हो या डॉक्टरी, पेशा हासिल करने के सबसे सरल रास्ते को अपनाते हैं। इसलिए ही अध्यापक, इन्जिनीयर या डॉक्टर अपने में शायद ही काबिल होगा। लेकिन वह काम तो करता होगा और वेतन भी हासिल करता होगा। लेखक के क्लास में करीम नाम का एक लड़का था जो पूरा मौलवी या जमाअते इस्लामी किस्म के आदमी था। वह हिन्दी में एम.ए. इसलिए करने आये थे कि उसके चाचा यू.पी. के किसी छोटे शहर में इस्लामिया इंटर कॉलेज के मैनेजर हैं और वहाँ हिन्दी टीचर की एक खाली जगह है। शादीशुदा रज़ी का अपने प्रोफेसर हेड़ की भतीजी से दुबारा शादी का प्रस्ताव अन्ततोगत्वा पक्की नौकरी और प्रोमोशन की हविश में था। अल्पसंख्यकों में बहुविवाह और अनमेल विवाह को भी सर्वत्र मान्यता मिल रही थी।

उपन्यास में पूँजीवादी व्यवस्था पर टिप्पणी दरपेश है। संकटग्रस्त

भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था फिलहाल अपना उल्लू सीधा करने के वास्ते प्रहसन के नये - नये तेवर अपनाती रहती है। आरम्भ में जातिवाद व क्षेत्रीयता का जामा पहनकर यह समाज को लूट रही थी। आज वह राजनीति के साथ मिलकर साम्प्रदायिकता रूपी दीमक बन गयी है। अतः भ्रष्टाचार से धन कमाने की खुली छूट इसके पीछे है। लेखक का मानना है कि सिवाय भ्रष्टाचार के विकास नामुमकिन है। अतएव विकास की मशीन में यह ग्रीज़ का काम करती है। आज की चुनाव प्रणाली भारतीय जनतन्त्र केलिए बहुत बड़ी समस्या उठा करती है। उपन्यासकार की खुलासा - 'क्या यह चुनाव वास्तव में चुनाव है? लोकतन्त्र में फायदे किसका है? आम जनता को इससे क्या लाभ है?'[१] उपन्यास में चुनाव का समीकरण आज के 'राज' केन्द्रित चुनाव के जैसा ही है। वोट बैंकों की बढ़ोत्तरी केलिए दलबदल (संप्रदायवादी) राजनीति आतंकवाद के हैवे से लागों को खत्म करती है। आरक्षण देकर और जातिमत वैषम्य पैदा कर अपना उल्लू सीधा करने की रीति आज भी ज़ारी है। मसलन ठाकुर वोट, ब्राह्मण वोट, अहीर वोट, कायस्त वोट आदि। लोकतन्त्र के नाम पर तानाशाही ही कायम है। सब कहीं अवसरवाद का बोलबाला है। राजनीतिज्ञों केलिए पार्टी से बड़ी चीज़ अपना अपना कैरियर, और अपना अपना भविष्य है। मतलब कांग्रेसी हो या सी.पी.एम. दूसरों के समक्ष तमाम भविष्यवाणी के बावजूद अपने हितों केलिए आपस में निर्भर होकर गाड़ी चलायेगा ही। लेखक का व्यंग्य है कि वे इतना निर्भर है कि अलग होकर गाड़ी चला ही नहीं सकते।

धर्म की राजनीति एवं जातिवाद की वजह से वर्ण व धर्म का राजनीतिकरण हुआ। अब साम्प्रदायिक और जातिवादी होना एक फाशननुमा बन गया है।

---

(१) कैसी आगी लगाई असग़र वजाहत, पृ - २६४

गणतन्त्र की रक्षा की आड़ में राष्ट्रीय राजनीतिक दल जातिवादी संगठनों का राजनीतिक फायदा उठाते हैं। इसकेलिए प्रतिस्पर्धा के तेवर अपनाने लगे हैं।

एकल हिन्दू संस्कृति की माँग तथा भारतीयकरण का ढ़िंढ़ोरा पीटने वाली भारतीय जनता पार्टी, फिलहाल हिन्दू संस्कृति के भीतरी संघर्ष की आग में लगातार तेल उँडेल रही हैं। वोट बैंक केलिए क्षत्रिय, ब्राह्मण, कायस्थ तथा अन्य जातीय संगठनों को वे लगातार प्रलोभन देती रहती है। अतः अब तो वामपन्थ पर है या कहिए सोनिया गाँधी की कांग्रेस पार्टी की गिरफ्त में है और समाजवादी कहे जानेवाले दल भी सारे अर्थों में भाजपाई बन गये हैं। विदेशी मीडिया एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ द्वारा भारतवर्ष में विवेकहीनता की ओलें पडी हुई है। तीसरी दुनिया के सबसे शक्तिशाली मध्यवर्ग को इनसे निहायत आपत्ति हुई है।

उपभोक्तावाद की अंधी संस्कृति रूपी धूमकेतु की भीषणता ने भारत में सर्वत्र अनिश्चिंतता व आशंका का एहसास अनुभूत किया है। वे देश, समाज व संस्कृति से कोसों दूर अपनी उपलब्धियों और सुख-साधन की जुगाड़ में है। धार्मिक कठमुल्लापन और सांस्कृतिक पुनरुत्थानवाद की कड़ी धूप में साधारण जन जलकर राख हो गए। भारतवर्ष में सूचना क्रान्ति की वजह से अपसंस्कृति फैल रही है। नौजवानों में विवेकहीनता, अतार्किक मानसिकता, वीरानगी आदि इसी का परिणाम है। प्रस्तुत उपन्यास उपर्युक्त सभी बात को नंगा साबित करते हैं और इन सबके विरुद्ध क्रान्ति को दर्ज करते हैं। इसकेलिए मार्क्सवादी विचार धारा की माँग करता है। हमारे यहाँ अस्सी प्रतिशत लोगों के पास ढंग के मकान नहीं है, सड़कें नहीं है, स्कूल नहीं है, अस्पताल नहीं है। लेकिन

सिविल इंजीनियर बेकार है। पाँच सौ लोगों पर एक डॉक्टर पड़ता है पर डॉक्टरों तक केलिए नौकरियाँ नहीं है। भरपूर वर्षा होने पर भी पानी नहीं है। दुनिया की सबसे उपजाऊ ज़मीन होने के बावजूद पैदावार नहीं है। यह सब भारतवर्ष पर पड़नेवाले पुच्छल तारे की साजिश हैं। इन सबकी खात्मा के बगैर राजनेता व सरकार ताजमहल की बहस के पीछे पडी हुई है कि किसी हिन्दू राजा ने ही वह बनाया था। इसलिए मुसलमानों का भारतीयकरण होना चाहिए। मुख्तार, उमाशंकर और साजिद (वाचक) की बहसों में यह बात साफ है कि मुस्लिम लीग वाले सिद्धान्त के तहत देखें तो ईसाइयों व पारसियों को भी भारतीय बनाना होगा और अगर यह सिद्धान्त मान लिया जाए कि जिस देश का जो धर्म है उस धर्म के माननेवाले उसी देश में रहेंगे तो सारी दुनिया के बौद्धों को भारत बुलाना पडेगा।

बताया जाता है कि जब आज़ादी मिली और अंग्रेज़ चले गए तो सभी राष्ट्रीय समाचार पत्र जो सेठों साहूकारों के थे, नेहरू के समाजवाद के विरोधी हो गए। नेहरू के एक विश्वासपात्र मन्त्री रफी अहमद क़िदवई ने जब यह देखा कि अख़बार सेठों, साहूकारों की मुट्ठी में है तो उन्होंने कुछ युवा पत्रकारों को आगे बढ़ाकर होराइज़न ग्रुप ऑफ न्यूज़ पेपर्स, की बुनियाद डाली। 'होराइज़न' नाम से अंग्रेज़ी और 'क्षितिज' नाम से हिन्दी में पत्रिकाएं निकाली गई जो नेहरू के समाजवाद या विश्व समाजवाद की समर्थक थी। कहते हैं 'हाराइज़न ग्रूप ऑफ न्यूज़ पेपर्स' यानी एच.जी.एन.पी.की शानदार इमारत केलिए पैसा ज़मीन ढेकेदार आदि के बारे में आज तक कोई जानता ही नहीं। जबकि रफ़ी अहमद और नेहरू को मरे अर्सा हो चुका है। इन्दिरा गाँधी ने समाजवाद की पतवार

सँभाल ली है और सिंडीकेटवाले सी.आई.ए. से हाथ मिलाया है। आज की परिस्थितियों में 'होराइज़न' और अधिक महत्वपूर्ण हो उठा है। क्रान्ति होने का संदेश उपन्यासकार देते रहते हैं और तुरन्त ही होने की माँग भी करते हैं। बैकों के राष्ट्रीयकरणवाले मामले में मोरारजी देसाई का इस्तीफ़ा देने का जिक्र है।

उपन्यास में भूमण्डलीकरण की साजिशों का संकेत हैं। सोवियट यूनियन का सूचना केन्द्र 'पच्चीस बारहखम्भा' की कूट भाषा में परिहास स्वरूप प्रयुक्त है कि वह सब जाना चाहते हैं क्योंकि वहाँ असंख्य सुविधाएँ है। उदारीकरण और पेटेंट दोनों को एक साथ प्रयुक्त करने का भी जिक्र है।

अहमत के अब्बाजान राजा साहब की बातों में स्पष्ट है कि उन्होंने कई फंक्शन वाले चाकू का पेटेंट लिया है। यानी पूरी डिज़ाइन उनके नाम से पेटेंट है। यदि कोई यह चाकू बनाना चाहता है तो उसे पहले उनकी अनुमति लेनी होगी। उनके अनुसार पेटेंट का सही तौर पर इस्तेमाल करना चाहिए। मोटी - मोटी किताबें चाटकर उगल देना अक्लमन्दी नहीं है। भारत में नकल करने की रीति को अक्ल समझते है इसलिए वह पीछे हैं बल्कि अंग्रेज़ नई तहकीक़ को अक्ल समझते हैं। यही उनके आगे रहने का राज़ है। तरक्की सिर्फ पैसे से नहीं होती। इसकेलिए एक नज़रिया दरकार है। हमारे समाज में यह नहीं है। इसलिए सब लक़ीर-फ़कीर बने हुए है। कास्ट सिस्टम और 'रिलीजन' ने इस मुल्क को तबाह कर दिया है। उपन्यास में इन्दिरा गाँधी की शान पर भी प्रश्न उठाया है। क्रान्ग्रेस को भी न छोडा है। नूरू मियाँ पूरे संस्थान हैं अपने आप में। नेशनलिस्ट मुसलमानों की वह पीढ़ी अपने अतीत पर गर्व कर सकती है। कांग्रसियों की वह पीढ़ी अपने त्याग की चर्चा कर सकती है। उपन्यासकार का

व्यंग्य है कि भ्रष्टाचार नूरू मियाँ को छू नहीं सकता। उन्हें हज़ार, दस-बीस-पचास या लाख दो लाख लेकर कुछ भी नहीं हो सकता। चूँकि उनकी आमदनीवाला भ्रष्टाचार के समक्ष यह सब तुच्छ है। जहाँ चुनाव केलिए पैसे का सवाल है नूरू मियाँ खुले आम कहते हैं - 'घर का पैसा चुनाव में कोई नहीं लगाता। उसकेलिए पार्टी पैसा देती है'।[१] नूरू मियाँ केलिए पार्टी का मतलब सी.बी. गुप्ता है जिनके हाथ में कानपूर के सेठों की नकेल है। सी.बी. गुप्ता नूरू मीयाँ को दो बार मन्त्री पद ऑफर कर चुके हैं। नूरू मियाँ का कहना है - 'क्यों झंझट में पड़ें। हमें तो काम होने से मतलब है....... मन्त्री हो या सन्त्री, हमारा काम करता है।............... मन्त्री बने उल्लुओं की तरह घूमने से क्या मिल जाएगा'।[२] मुख्तार इस्लामी भावनाओं के तहत शाहिद मियाँ की मदद करता है। नूरू मियाँ के इलेक्शन में इसलिए काम करता है कि वह मुसलमान है। उसे कांग्रेस, देश या संविधान से कोई लेना - देना नहीं है। बस 'इस्लाम' ज़िन्दाबाद उसका नारा है। चुनाव प्रचार की तरह की सीढ़ियों को पार करते वक्त वे जनता के पैसे से ही ऐयाशी करते हैं। मार-पीट की कुछ वारदातों और ग्रामीण इलाके में 'बूथ कैपचरिंग' की छुटपुट घटनाओं के अलावा चुनाव का माहौल शाँत रहा, बतौर आज रहते हैं। चुनाव का नतीजा नूरू मियाँ केलिए अनुकूल रहा। जीत का जश्न भी आज के माहौल के बराबर हुआ। ज़ाहिर है आज की चुनाव प्रणाली जनता से सीनाज़ोरी ही करती है।

साजिद - सल्लो प्रेम - प्रसंग में, सल्लो का रूप वर्णन नग्नता के हद तक है। अतः सुन्दरता कला के हर तर्क को यहाँ परास्त कर देती है। सल्लो, साजिद के नौकर खाना पकानेवाली बुआ की भतीजी है। अहेरीखेड़ा में साजिद

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - २३४

(२) वही, पृ - २३४

के साथ उसका मिलन, संभोग आदि के चित्र समलैंगिकता के परतों को खोलते हैं। हालाँकि कानपूर के किसी रिक्शेवाले के साथ आखिरखार सल्लो की शादी की खबर इस तथ्य केलिए सबूत है कि कमज़ोर वर्ग की स्त्रियाँ मन-बहलाव में जितनी स्वतन्त्रता दिखाएँ अन्ततोगत्वा उनका वर्गान्तरण नहीं हो पता। हालाँकि सल्लो की नियति पर साजिद ज़रूर दुख व्यक्त करता है कि उसके पास सल्लो को देने केलिए कुछ भी तो नहीं था। अतः मात्र देह भोगने केलिए ही साजिद ने सल्लो से संबन्ध नहीं बनाया था। इस तरह प्रो.इल्मी, रज़ी, राही व अहमद के जो प्रेम प्रसंग उपन्यास में उभरता है, वे मानवीय ज़िन्दगी को भरे-पूरे रूप में जीने का परिचायक है। वह यह कि आदमी अपनी कमज़ोरियों को छुपाने से नहीं बल्कि उन्हें आज़माने से ही बड़ा बनता है। इसमें देह संबन्धों का जो वर्णन है वह रीतिकालीन हास्यास्पद न बनकर पात्रों की मनःस्थिति में विकसित हुई है।

असग़र ने इसमें मीड़िया द्वारा उपसंस्कृति के प्रचलन पर आलोचना की है। उनके अनुसार मीडिया की भाषा में शब्दों का भारी अपव्यय है। चूँकि मीडिया में छद्म राजनीति प्रवेश कर चुकी हैं। या अखबारों के मालिक सेठ है - या ऐसे ग्रूप हैं जो किसी विचारधारा के अन्तर्गत बनाए गए है। मतलब है जो पत्रकार जिसका खाता है उसका बजाता है। पैसा इस पेशे में खूब मिलता है। ईमानदारी का गला घोंट कर अन्धा पैसा इस पेशे में कमा सकता है। उपन्यासकार की साफगोई 'पत्रकारों ने अपने आपको महिमामंडित किया हुआ है ताकि अखबारों की साख बची रहे......... उनका सम्मान होता रहे............ और गाड़ी चलती रहे'।[१] ज़ाहिर है पत्रकार हो या मीड़ियाकर्मी सब अपने -

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - ३८५

अपने व्यापार तन्त्र में निमग्न है।

उपन्यास के अन्त में साजिद अपने को बिलकुल पराजित पाता है। बहरहाल पैसे की अन्धी लालसा में आदर्श खोने केलिए वे तैयार नहीं थे। ये सब राजधानी का ही हार है। कमज़ोरों का नरक है दिल्ली शहर। यहाँ किसी को किसी के प्रति हमदर्दी नहीं है। लानत है इस शहर पर। बसों में लोग इस कदर भर जाते हैं कि बच्चे कुचल जाते हैं, औरतों को चोटें लग जाती हैं, बूढ़े ज़ख्मी हो जाते हैं और किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। दफ़्तर के चपरासियों से लेकर हर राह चलता आदमी दो टके की इज़्ज़त को पहचान लेता है, और अपमान कर देता है। ताकतवर हमेशा कमज़ोर पर झपटता है। किसी को किसी से, अपने अलावा न लेना है न देना है। यही नहीं, न किसी को शहर से लगाव है न मोहल्ले से प्यार है। करोडों हेक्टर ज़मीन बेकार पड़ी है। यह एक मात्र राजधानी की ही हालत नहीं है। तमाम भारत की विसंगति का एक संकेत हैं।

विज्ञान के यह सिद्ध करने के बावजूद कि हर तरह की ज़मीन पर खेती हो सकती है। हालाँकि करोड़ों हेक्टर ज़मीन पर काम करने केलिए करोड़ों हाथ भी उपलब्ध हैं। फिर भी ज़मीन इसलिए बेकार पड़ी है कि अफीमचों का ज़माना है। यहाँ आदमी केलिए दुसरे आदमी के दिल में कोई जगह नहीं है। यह तो शहर कहने केलिए भी योग्य नहीं है। यह छोटे और महानगर के अनैतिक 'क्रास' से पैदा हुई है। यह भ्रष्ट दलालों का शहर है। यहाँ दलालों से लेखक का मतलब राजनीतिज्ञों से है। भड़वों, रण्डियों और षड्यन्त्रकारियों का शहर है। रहस्यों और बेज़ोड़ तिकड़मों का शहर है। इसका कोई कल्चर नहीं

रहा। दिल्ली शहर की गरिमा अब गायब है। 'क्रूरता और अपमान, स्वार्थ और घृणा, तिरस्कार और भ्रष्टाचार और अनैतिक तरीके से वह सब प्राप्त करना जो चाहिए - इस शहर का बुनियादी चरित्र है। राजनीतिक सत्ता और उसकी शतरंजी चाल ने भी इस शहर को एक चरित्र दिया है।'[१] अतएव इस शहर में सफलता केलिए 'गॉड फादर' का होना निहायत ज़रूरी है। उनके पैर चाटने होंगे। इसलिए ही साजिद कहते हैं 'पत्रकारिता में, राजनीति में, व्यापार में - किसी भी क्षेत्र में पहले एक गॉड फादर, बनाओ।.... सफलता हासिल करने का यही राज़ है।'[२] लेखक की यह साफगोई हमारी सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती है।

यह कि राजधानी भी एक दिन हरा देती है। तमाम परिभाषाएँ खोख़ली नज़र आती है। लेकिन सच बात तो यह है कि मनुष्य जितना भी मोहभंग की स्थिति में पहूँचे, ज़िन्दगी में जितना भी विफल व निरर्थक साबित हो हालाँकि जीवन नैरन्तर्य के क्षय के बरखिलाफ वह बहता ही रहता हैं। जिस तरह युद्ध में हारे हुए सिपाही घर लौटते हैं उसी तरह ज़ख्मी अपमानित, भूखा, निराश, आस्था और भविष्यहीन साजिद का घर लौटना निस्सन्देह जीने की कला से नावाकिफ होना नहीं बल्कि उस कला को अस्वीकारने से है। यहाँ जिस हार की हल्की आवाज़ चिपक जाती हैं, वह स्वाभिमानी व्यक्ति की है। जिस अभिलाषा से राजधानी जीतने गए थे, अपनी प्रतिभा और मेहनत के बलबूते समय के चेहरे पर कुछ लिखने या पत्रकार बनने गए थे, वे सब राजधानी की कालिमा में दब गए। यानी वही हुआ जो राजधानियाँ अकेले दुकेलों के साथ करती हैं।

इस हार के पीछे जो सच्चाई छिपी हुई है, वजह है 'राजनीति में, उद्योग

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - ३८८

(२) वही, पृ - ३८८

में और अपराध जगत में कोई 'सोर्स' नहीं है। मैं किसी को खुश करने की कला नही जानता और थोड़ी बहुत शर्म भी है जो आड़े आती है। इतनी हिम्मत भी नहीं है कि दूसरों का निवाला छीनकर खा जाऊँ और इतना कमज़ोर भी नहीं बन सका कि अपने को कीड़ा समझकर जी लेता। इसलिए मैं हार गया। खुलकर कहो कि चालाकी और मक्कारी से, 'बेईमानी और धोखा धड़ी से, चतुराई और कमीनेपन से, स्वार्थ और धृष्टता से, छल और छद्म से, चोरी और सीनाज़ोरी से, अन्याय और अत्याचार से हार गया।"[१] लेखक की खुलासा कि यह अपराध जगत जीतनेवालों या शुद्ध लाभ हासिल करनेवालों मतलब अर्थ लाभ - पद् लाभ, प्रतिष्ठा, सम्मान या कोई और लाभ का है। परिभाषाएँ थोथरा हैं।

उपन्यास में लाल सिंह सरीखे क्रान्तिकारी कामरेड भी है। के. पी. ही नहीं दूसरे लोग और जावेद कमाल तक ने उसे कुछ ज़्यादा ही 'हार्ड लाइनर' माना है। चूँकि वह पार्टी में ऊँचे पदों पर रह चुका है इसलिए वह 'लइन' दे सकता है। उनके बहस - मुबाहिसों में जो सैद्धान्तिकी बाहर निकलती है वह मात्र सैद्धान्तिक बयानबाजी तक सीमित है। हालाँकि वह भगतसिंह का जीवित इतिहास है। इसप्रकार के कामरेड़ों को उपन्यास में आरोपित कर अपन्यासकार ने हमारे देश की राजनीतिक शून्यता का इज़हार किया है। सच्चे समाज सेवकों की माँग की है कि वे तन और मन से, पूरी लगन के साथ सामाजिक कल्याण रूपी मशाल को आगे बढ़ाएँ।

उपन्यासकार ने सातवें दशक की राजनीति व राजनीतिक परिदृश्य के तहत उपन्यास को आगे बढ़ाने की महत्वपूर्ण कोशिश की है। छठे दशक तक

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - ३९१

अलीगढ़ विश्वलिद्यालय में वामपंथी छात्र आन्दोलन ज़ोरों से चला आ रहा था। काँग्रेस, जन संघ, मुस्लिम लीग और कम्यूनिस्ट पार्टी उन दिनों सक्रिय भागीदार थे। मगर वर्ग संघर्ष की राजनीति वर्ग सहयोग में तब्दील हुई। बेशक धर्म निरपेक्षता की लड़ाई वामपंथी राजनीति के आधार के बिना नहीं लड़ी जा सकती। ऐसा दावा करने वाले वामपंथी आज धर्म सापेक्ष्य संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं।

उपन्यास में रज़ी और साजिद की मुलाकातों में राजनीति और समाज पर विस्तार से बातें होती थी जिनमें प्रत्येक पार्टी की अकर्मण्यता पर व्यंग्य है। कांग्रेस का अपना कोई चरित्र कभी नहीं रहा उसने सर्वदा ढुलमुल नीतियाँ अपनाई और इसका नतीजा यह हुआ कि एक समय तक अखण्ड राज्य करनेवाली काँग्रेस की हालत आज दयनीय हो रही है। मसलन जिस उत्तर प्रदेश में उसकी तूती बोला करती थी उसी उत्तर प्रदेश में लाख कोशिशों के बावजूद उसके पैर नहीं जम पा रहे हैं। सी. पी. आई ने आँख मूँदकर काँग्रेस का साथ दिया इसकी वजह एक दृढ़ और संघर्षशील चरित्र के अभाव में वह भी तिरोहित होती चली गई। रज़ी के मुताबिक असली मसला आर्थिक है। फिलहाल राजनीति में पूँजी केलिए ही नीति है। जिन लोगों के हाथ में आर्थिक शक्ति है वे उसे अपने हित में बनाए रखना चाहते हैं और हमारी सरकार के साथ निलकर 'वर्किंग क्लास स्ट्रगल' के साथ गद्दारी करते हैं जबकि सी.पी.एम. ने समझौता नहीं किया है। वह 'क्लास स्ट्रगल' के सिद्धान्त को मानती है।

उपन्यास में आए होराइज़न ग्रूप ऑफ न्यूज़ पेपर्स की जो स्थिति है वह कहीं से भी कम्यूनिस्ट चरित्र होने की गवाही नहीं देती। वहाँ भी अवसरवादिता

और दिखावा है जो दूसरे दलों में होता है। जनसंघ और मुस्लिम लीग सरीखी कट्टरपन्थी पार्टियों का उस समय कोई जनाधार नहीं था, वे मात्र सांप्रदायिक राजनीति कर रही थी जिनका प्रभाव बहुत कम था। साजिद को राजनीतिक दीक्षा सी.पी.एम के कार्यकर्ताओं से मिली थी, उनके चरित्र को निकटता से देखने का अवसर भी मिला था। अतः उनकी ईमानदारी और संघर्ष करने की जिजीविषा को उसने साथ रहकर महसूस किया था। ऐसे में उसे यही दिक्कत था कि वह न तो कांग्रेस में जा सकता था और न सी.पी.आई में। वह एम.ए. करने के बाद स्वयं को दोराहे पर खड़ा पाता है, जहाँ निर्णय करना ज़रूरी है। उसकी राजनीतिक फैसेलेपन की बेचैनी इन शब्दों में झलकती है 'यह कई बार कई तरह से कई हमदर्दों ने कहा था कि अगर 'होराइज़न' में कै रियर बनाना है तो सी.पी.आई. ज्वाइन कर लो या किसी बड़े सी.पी.आई नेता को साधो। अगर ये नहीं कर पाए तो बस पड़े सड़ते रहोगे। मैं अगर यह तय भी कर लेता कि मुझे सड़ना नहीं है तब भी मैं कुछ न कर सकता था, क्योंकि मैं इतना तो समझ ही चुका था कि चीज़ें उतनी साफ़ नहीं है जितनी पेश की जाती है। यानी ये नहीं हो सकता कि मैं सी.पी.आई ज्वाइन करते ही छलाँगें लगाने लगूँगा। और फिर सी.पी.आई. वाले मुझे क्यों लेंगे? या लेंगे तो वहाँ कोई अकेला तो हूँगा नहीं। सैकड़ों होंगे। तो छलाँग मारने या कुलाचे भरने के चक्कर में सी.पी.आई. में चला भी गया तो क्या होगा? फिर मैं जहाँ तक ईमानदारी की बात है सी.पी.आई को कांग्रेस के समान समझता हूँ और कांग्रेस से जितनी घृणा की जा सकती है, वह मुझे है, इसलिए इसका क्या सवाल पैदा होता है कि मैं सी.पी.आई ज्वाइन करके कैरियर बनाऊँगा यदि पार्टी को ज्वाइन करके कैरियर बन सकता है तो कांग्रेस क्या बुरी है?'[१]

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - ३७२

यह अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति साजिद की दृढ़ व्यक्तित्व का परिचायक है। अतएव जो युवक अपने कैरियर के दोराहे पर खड़ा होकर वैचारिक दृढ़ता के साथ सभी दलों का विवेचन करें, वह बेशक ईमानदार व साहसी है। उसकी वैचारिक संघर्ष निश्चय ही बढ़िया है। यदि वह कमज़ोर व ड़रपोक होता तो सी.पी.आई के किसी नेता को अपना गॉड़फादर बनाकर पत्रकारिता के जगत में ख्याति अख्तियार कर सकता था। मगर वह असफल होने के शर्त पर भी किसी प्रकार का समझौता नहीं अपनाता। बल्कि उसने कहानियाँ लिखकर उस समय की सर्वाधिक प्रचलित व चर्चित 'धर्मयुग' पत्रिका में छपाने की कोशिश की। असफल होकर गाँव लौटकर आने की स्थिति में भी वह स्वाभिमान की आहुति नहीं करता। अतः अपने सिद्धान्तों की फतह पर अपने कैरियर की हार को वह तुच्छ मानता है। फिलहाल मान, प्रतिष्ठा और पैसे की भागदौड़ में व्यक्ति अपनी वैचारिकता और स्वाभिमान को गिरवी रखकर सामने वाले बड़े आदमी की जय - जयकार कर रहे हैं, या परमुखापेक्षी बन गये हैं, ऐसे युवकों के समक्ष साजिद आदर्श चरित्र है।

उपन्यासकार की यह साफ समझ है कि दक्षिणपन्थी अजेण्डा के विरुद्ध संघर्ष खड़ा करने में वामपन्थी राजनीति ही सफल हो सकेगी। वामपन्थी कार्य पद्धति व सिद्धान्तों का विश्लेषण करने केलिए जीवित चरित्रों को भी दर्ज करने का प्रयास यहाँ हुआ है। मसलन कामरेड़ कमाल, नसरीन, लाल सिद्दीकी एवं रज़ी जैसे पात्र यूटोपिया नहीं है बल्कि जीते - जागते चरित्र है जिनकी निष्ठा और समर्पण को अलीगढ़ की हीन पीढ़ीयों ने स्वयं महसूस किया है। कामरेड़ लालसिंह पार्टी के होलटाइमर है उनकी ज़िम्मेदारियाँ बेहद ज़्यादा है। बहरहाल

निम्न मध्यवर्गीय सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि में रहकर भी वह निस्वार्थ सेवी है। हालाँकि वे राजनीतिक ज़िन्दगी के सामने अराजक दरपेश है। मतलब पार्टी अनुशासन की चिन्ता के बगैर या जिला कमैटी की फैसले के बिना स्वच्छन्द विचरण करते हैं। ज़ाहिर है यह जीवन पद्धति कम्यूनिस्ट नैतिकता के बरखिलाफ़ है।

गौरतलब है अलीगढ़, मुस्लिम विश्वविद्यालय में सांप्रदायिक ताकतों का कम अस्तित्व था। वहाँ निर्णायक भूमिका में तो कम्यूनिस्ट ही रहे, जिन्हें अपनी वैचारिक दृढता केलिए चाहें कितनी ही मुसीबतों को उठानी पड़ी मगर वे अपनी लीक से नहीं हटे। मसलन के.पी. सिंह, राही, जावेद कमाल और साजिद ऐसे ही चरित्र है। यद्यपि अपनी वैचारिक दृढ़ता की वजह नौकरी प्राप्त होने में इन्हें दिक्कत ज़रूर आई तदापि अपनी तरह से स्वाभिमान जीवन इन्होंने ही जिया। बाद में राही को बम्बई ज़रूर जाना पड़ा। प्रो. अनवारुल हसन के दुष्चरित्र के शिकार के पी. सिंह व जावेद कमाल को अपनी नौकरी और कैंटीन छोड़ना पड़ा। मगर सत्ता के आगे शहनाई बजाकर पूर्णतः साष्टांग की मुद्रा में रहना वे सोच भी नहीं सकते थे, जैसा अन्य सुविधाभोगी करते हैं। लिहाज़ा अलीगढ़ ही नहीं, कोई भी विश्वविद्यालय के.पी. सिंह, जावेद कमाल, राही और साजिद को पचाने में कठिनाई महसूस करता है।

असग़र वजाहत ने इस उपन्यास त्रयी के द्वारा विश्वविद्यालयों के भीतर का ऐसा नक्शा बनाया हैं, जो कि आज से भी वैसा ही है जैसा पैंतीस-चालीस वर्ष पहले था। फिलहाल शिक्षा के नाम पर बाज़ारवाद ही चलते है। अध्ययन व अध्यापन के क्षेत्र में नैतिकता की गुंजाइश न के बराबर है। बल्कि यहाँ

अवसरवाद और धूर्तता का अखण्ड साम्राज्य है। यहाँ पाखण्ड, अज्ञानता और सांप्रदायिकता की ही तूती चलती है। छात्र - छात्राओं से शिक्षकों का सरोकार लेन-देन में तब्दील हो गए हैं। इस क्षेत्र में जीत चतुर व चालाक व्यक्ति ही हासिल कर सकेगा। हमारे यहाँ बहुत की कम विश्वविद्यालय बचे हैं, जहाँ शिक्षकों की अगुवाई वैचारिक रूप से मज़बूत व ईमानदार हैं। इसके उल्टे ऐसे अध्यापकों की भरमार है जो अपनी राजनीतिक समझ व औकात की आड़ में जाति, क्षेत्र व धर्म की राजनीति कर रहे हैं और अपना वजूद निकाल रहे हैं। पढ़ना - पढ़ाना उनके कर्म व कर्तव्य न होकर पैसा जुड़ाने का पेशा मात्र बन गया है।

साजिद की वैचारिक ताप की बेचैनी व आदर्श चरित्र पाठकों को उत्साहित एवं उजागर करने में काबिल है। अतएव सूरज पालीवाल की राय में 'असग़र वजाहत का यह उपन्यास और इसका नायक साजिद एक बार फिर हमें उन मूल्यों की ओर ले जाता है, जो हार जीत की चिन्ता किए बगैर स्वाभिमान और वैचारिक दृढ़ता को बचाने की अपील करते हैं। असग़र वजाहत अपने समय का दस्तावेज़ ही नहीं बनाते बल्कि शिक्षा जगत और राजनीति के गिरते स्तर पर अपनी चिन्ता भी व्यक्त करते हैं। इसलिए यह उपन्यास केवल एक विश्वविद्यालय के बाद एक नायक और केवल एक धर्म जाति के उत्थान पतन का लेखा - जोखा नहीं है बल्कि प्रातिनिधिक रूप में अपने समय और उसके बाद की चिन्ताओं को एक साथ उभारता है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है।'(१)

'कैसी आगी लगाई' के संबन्ध में असग़र वजाहत का कथन है - 'यह

---

(१) हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध - सूरज पालीवाल, पृ - ११४

त्रयी 'आज़ादी' से 'आज़ादी' तक की त्रयी कही जा सकती है। पहली आज़ादी हमें साम्राज्यवाद से मिली थी और दूसरी आज़ादी की लड़ाई अधिक जटिल है, जो बहुआयामी है, जो ज़्यादा लम्बी चलने वाली है। यह 'आज़ादी' की लड़ाई अपनी जड़ता से भी है।' [१]

लिहाज़ा उपन्यास की यह लड़ाई, साम्प्रदायिकता जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद, अंध - विश्वास, हिंसा, अपराध और नव साम्राज्यवाद, भूमण्डलीकरण तथा बाज़ारवाद से है। इसकी यह लडाई लोकतंत्र के उस रूप से भी है जो वोटों केलिए हमें विभाजित करता और हमारा शोषण करता आया है। इस तरह उपन्यास त्रयी अतीत व भविष्य को अपने अन्दर समेटने का प्रयास करती है।

यह अलीगढ़ शहर पर लिखा गया तीसरा उपन्यास है। पहले पहल इस्मत चुगताई ने 'काली लकीर' (१९३८) लिखा था, मगर अब्दुल्ला कॉलेज तक इसका परिवेश सिमट रहा। दुबारी कोशिश 'टोपी शुल्का' (१९६८) के द्वारा राही मासूम रज़ा की रही जिन्होंने किस्सागोई की ही शैली में अलीगढ़ के राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक ज़िन्दगी के अन्तर्विरोधों को चित्रांकित किया। बहरहाल, असग़र वजाहत की पहल ने राजधानी की तमाम गतिविधियों को बहुआयामी रूप प्रदान किया है।

५.३ असग़र वजाहत के उपन्यासों का शिल्प पक्ष

असग़र वजाहत के उपन्यासों की यह खासियत है कि आन्तरिक स्तर पर उसमें अत्यन्त गम्भीरता व अर्थवत्ता होती हैं मगर बाहरी स्तर पर उसमें सरलता ही रहती है। इसलिए ही आलोचकों ने इनके उपन्यासों की रचना शैली को

---

(१) असग़र वजाहत 'रचनाकार असग़र वजाहत से मधु की बातचीत', साक्षात्कार - अप्रैल २००६, पृ - १३

(२) कुँवर पाल सिंह - 'मानवीय सरोकारों की रागात्मक अभिव्यक्ति', कथादेश - दिसंबर २००४, पृ - १३

प्रेमचन्द की विरासत से जोड़ने का प्रयास किया है। कुँवर पाल सिंह के मुताबिक 'असग़र प्रेमचन्द की परम्परा का अपने साहित्य में अतिक्रमण भी करते है और विकास भी।'[२] दर असल राही मासूम रज़ा अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, पंकज बिष्ट आदि के खेमे में इनके उपन्यासों को जोड़ सकते हैं।

इतिहासबोध की परिकल्पना 'सात आसमान' को अतीत से वर्तमान तथा भविष्य की सुन्दर कड़ी के समान पिरोने का प्रयत्न करती है। इसमें उपन्यासकार ने इंसानी ज़िन्दगी को पूर्णतः निहारने केलिए विचारधारा का नहीं, बल्कि तटस्थता का रुख अख्तियार किया है। लिहाज़ा इसमें इतिहास की भूमिका तो ज़रूर है, मगर विचारधारा की नहीं। अतः उपन्यासकार ने इसमें किसी तरह की दार्शनिकता, कोई गम्भीर चिन्तन या किसी विचार को जानबूझकर आरोपित नहीं किया है। दरअसल उन्होंने अपने जीवन की ऐसी दास्तान सुनाना चाहा कि जिसमें उसकी परतें खोलती चली जाये, कभी न खत्म होनेवाली कहानी के बतौर। इसके संबन्ध में उनका तर्क है 'मैं अगर चाहता तो सामन्तवाद की लम्बी चौड़ी आलोचना कर सकता था। राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वातन्त्रोत्तर भारत के बहुत से सामाजिक आर्थिक मुद्दों के आधार पर इस उपन्यास को एक तथा कथित विद्वत्ततापूर्ण रचना बना सकता था चूँकि बहुत से लेखक यह काम कर रहे हैं, इसलिए यह क्षेत्र मैं ने उनकेलिए खुला छोड़ दिया। मेरा मानना है कि किसी भी रचना में पठनीयता का गुण आवश्यक है, इसलिए इस उपन्यास में पठनीयता पर मैं ने ध्यान दिया।'[१]

'सात आसमान' पर इन्तज़ार हुसैन के 'बाबरनामा' का असर पड़ा है।

---

(१) असग़र वजाहत - 'जीवन' को कथा - कहानी नहीं बनाना चाहता था', कथादेश - नवम्बर २००४, पृ - ३७

उपन्यास में नायक - नायिका की कोई परिकल्पना नहीं है। कोई चिरविकसित प्रेम प्रसंग का भी लेखक ने सहारा नहीं लिया है। परन्तु उपन्यास की ऐतिहासिक व्याप्ति उसकी सघनता में विद्यमान है। इसी वजह से उपन्यास में पात्र आते हैं और वह समाप्त हो जाते हैं। वे आगे फिर नहीं आते। जैसे, जीवन में होता है कुछ लोग थे, पैदा हुए, जीवन जिया और मर गये। उपन्यासकार ने दो परिवार के अतीत को कई रूप - रंगों में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

उनके उपन्यासों में यद्यपि पात्रों की संख्या अधिक है तदापि प्रत्येक पात्र हमारे मन की गहराईयों को छूने में सक्षम है। मतलब यह है कि प्रत्येक पात्र के प्रति उपन्यासकार की प्रतिबद्धता महीन है। मसलन, 'सात आसमान' में असंख्य चेहरे हैं, एक - एक चेहरा एक - एक किताब के समान हमारे समक्ष खुलता हैं। इनके पात्रों की चरित्र सृष्टि सूक्ष्म व मार्मिक हैं। जैसे, अब्बू साब (सात आसमान), साजिद (कैसी आगी लगाई), अन्तू (रात में जागने वाले)। पात्रों के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को भी निहारने का श्रेय उपन्यासकार ने किया है। पात्रों के रहन सहन, उठना बैठना, सोच विचार आदि चेष्टाओं को बिलकुल नाटकीय ढंग से उकेरने का प्रयास सराहनीय हैं।

विषय वस्तु के अतिरिक्त भाषा उनकेलिए एक हथियार रही है। अतीत में इनवाल्व होने के बावजूद 'सात आसमान' की भाषा सपाट है। यह सागा शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसमें उपन्यास का पारम्परिक स्वरूप नहीं है, शिल्प भी नवीनतम है। उनके उपन्यासों में हिन्दू - उर्दू शब्दों की भरमार की वजह से हिन्दुस्तानी भाषा शैली की झलक मिलती है। बोलचाल की भाषा का सर्वत्र प्रयोग मिलते हैं। हालाँकि तत्सम शब्दावली से यह कहीं भी परहेज नहीं

है। जैसे, जलवा, अज़ीज़, वज़ीर, वाक़या, तसबीह, तसव्वुर, सर्फ, सियासत, बरखिलाफ़, वसीक़ा, वीरन, मुआयने आदि (सात आसमान)। अरबी फारसी शब्दों व वाक्यों की भरमार के बावजूद भाषा सरल व सहज है। जैसे, 'तौबा', सुभानअल्लाह', 'नीम हकीम खतर', नीम हक़ीम खतर ए जान

नीम मुल्ला खतर ए, ईमान'[१] मतलब आधा या कम पढ़ा लिखा हक़ीम जान केलिए ख़तरा होता है और आधा पढ़ा मौलवी ईमान केलिए ख़तरा है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। अंग्रेज़ी शब्दों के इस्तेमाल अधिक रोचक बन पड़े हैं 'इन्नोवेटिव', पेटेन्ट, एडजस्टेबल, माइक्रोफाइंग, ग्लास, फंक्शन, डिमोनस्ट्रेशन आदि (कैसी आगी लगाई)। मुहावरे और लोकोक्ति का प्रयोग प्रायः नहीं हुआ है। हालाँकि एकाध स्थान पर अंग्रेज़ी के कहावत का प्रयोग अधिक भाव व्यजक है 'कामनसेंस इज़ द मोस्ट अनकामन सेन्स'।[२] लिहाज़ा किस्सागो की भाषा में रोचकता महीन है, जिसका पालन उपन्यासकार ने किया है। आत्म कथन भाषा शैली को अधिक रोचक बनाये है। 'पहर - दोपहर' में इसका अद्भुत साक्षात्कार है। लम्बे बहसों में कहीं भी भाषा की तन्मयता गायब नहीं है। शायरी की नमी से भाषा में निखार आया है। 'सात आसमान' में जितने भी शेर-ओ-शायरी अपनायी गयी है वह पाकिस्तान के उर्दू कवि नासिर काज़मी के है। उपन्यासकार ने शब्दों के बीच कहीं - कहीं मौन का सहारा लिया है। जिससे भाषा में अधिक मार्मिकता आयी है। जैसे कि 'कैसी आगी लगाई में' लम्बे बहसों के बावजूद कथावस्तु पूर्णतः खुलता है।

औपन्यासिक संरचना में भी इन्होंने नव्य प्रयोग किया है। किस्सागोई की

---

(१) कैसी आगी लगाई - असग़र वजाहत, पृ - २२०

(२) वही, पृ - ८१

परम्परा को नये आयाम दिये है। इसी वजह से इसमें सहजता है, कथा - रस में कोई उबाऊपन महसूसता नहीं। मगर बोझिलता के बावजूद जटिलता भी आयी हुई है। कहीं उपन्यासकार ने प्रेमचन्द की विरासत का अतिक्रमण के हद को भी पार किया है। यह उपन्यास के कैनवास में स्वयमेव जीवन की यथार्थवत्ता ही है। जहाँ बेहद संवेदनशील प्रसंग है, उन्हें सहज और कलात्मक रूप दिये हैं। 'सात आसमान' तथा 'कैसी आगी लगाई' में किस्सागोई का खूब निर्वाह हुआ है। 'सात आसमान' में यह एक मौखिक परम्परा के द्वारा पीढ़ी - दर - पीढ़ी हस्तान्तरित होता है। यह परंपरा दिलचस्प होने के साथ ख़तरनाक भी है। इसमें इतिहास एक किंवदन्ती बन जाता है। मगर यह अविस्मरणीय होकर भी भरोसेमन्द है।

सादगी और किस्सागोई लेखक को बेहद अज़ीज़ है। चूँकि उसके संस्कार उन्हें हासिल हुआ है और उनके अन्तर्मुखी व्यक्ति से मेल खाते हैं। अतएव वे हमसे बौद्धिक विमर्श नहीं कर सकता, केवल किस्सा सुना सकते है। मगर इनकी व्यंग्य शैली की यह खासियत रही है कि यह चोट करने के साथ गुद - गुदाता भी है। किस्सागो में एक विशेषता यह है कि वे केवल कथा को नैरेट ही नहीं करते बल्कि एक कवि के मुग्ध भाव से तथ्यों को परखते हैं और एक कहानीकार की हैसियत से उसकी कैफ़ियत में पहूँचकर कमेंट भी देते हैं। मगर पाठक को गली के मुहाने पर नहीं छोड़ता। इस तरह उन्होंने भारतीय औपन्यासिक ढ़ाँचे का तिरस्कार कर नये दीगर पहलुओं से उपन्यास को जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रेम प्रसंगों में बिम्बों का निर्वाह हुआ है जो कि अधिक नैसर्गिक है।

'कैसी आगी लगाई' में जैसे अनोखे सौन्दर्य बिम्ब है उन्हें नज़र अन्दाज़ न करते हुए और अरुन्धती राय के उपन्यास (गॉड ऑफ स्माल थिंग्ज़) के अन्तिम हिस्से को ज़ेहन में रखते हुए कहा जा सकता है कि देह - भाषा की लय की तरह उपन्यास की भी अपनी लय होती है जिसे परिभाषित करना कठिन है।'[१]

उनके उपन्यासों का शिल्प पक्ष अधिक सुदृढ़ एवं सुन्दर बन गए है।

ज़ाहिर है असग़र वजाहत के प्रत्येक उपन्यास सामाजिक सरोकार से जुड़े हुए है। इनमें जीवन की गतिमयता है जो कि बेहद सराहनीय हैं।

---

(१) परमानन्द श्रीवास्तव 'निरन्तरता के क्षय के बरक्स', आलोचना - जनवरी - मार्च २००४, पृ - १०६

उपसंहार

उपसंहार

अपने समय और संदर्भ को सही ढंग से पहचानने वाला साहित्यकार ही दरअसल समाज के अन्तः स्पन्दन को साहित्य में ज़ाहिर कर सकता है। लिहाज़ा साहित्यकार की क्षमता इस बात में निहित है कि वह किस हद तक समाज की गतिविधियों को उजागर करने में काबिल है।

युगीन यथार्थ को सही मायने में प्रस्तुत करने में डॉ. असग़र वजाहत बेहद कामयाब हुए है। इनकी रचनाओं का मुख्य स्वर विद्रोह रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में जहाँ आदमी की हालत जानवर से भी बदतर बना दी गयी हो, क्रूरता, दमन, शोषण और आमानवीयता को ऊँचे शिखर पर पहुँचा दिया गया हो, चाटूकारिता, धोखा, फरेब और जोड़ - तोड़ किए बगैर ज़िन्दगी गुज़ारने का कोई रास्ता न छोड़ गया हो, पूरी ज़िन्दगी को झूठ, मक्कारी और फरेब से भर दिया गया हो, वहाँ किसी भी लेखक का यही दायित्व है कि वह समाज के ढ़ाँचे में आमूल - चूल परिवर्तन लाने केलिए बीड़ा उठाएँ - लेखन से भी और कर्म से भी। उनका साहित्य इस उद्देश्य के बलबूते पर अड़िग है।

कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार, पत्रकार, आलोचक, अनुवादक, पटकथा लेखक व यायावर असग़र वजाहत, प्रत्येक विधा में सिद्धहस्त है और हर एक विधा उनके लिए सहज है। वे लेखन कर्म को ईमानदारी के साथ निभाने

के पक्ष में है। उनकी राय है कि कुछ भी लिखते हुए सबसे पहले लेखक को ही यह लगना चाहिए कि उसे लेखन में मज़ा आ रहा है। यहाँ 'मज़ा आने' से उनकी मुराद यह है कि लेखक जो कहना चाहता है वह कह पा रहा है या नहीं? उन्हें महसूस हुआ है कि कुछ विषय ऐसे होते है जो लघु कहानी में जितने सटीक बैठते है, उतना लंबी कहानी, उपन्यास या नाटक में नहीं बैठ सकते। रचनाकार की इस बेचैनी का इज़हार एक साक्षात्कार के दौरान उन्होंने इन लफ़्ज़ों में किया है - 'कभी - कभी तो लगता है कि लेखन कर्म ही अपने आप में ही बेचैन, असंतुष्ट और कभी समाप्त न होने वाले प्रश्नों का माध्यम है।'

असग़र वजाहत ज़िन्दगी में सरलता एवं सादगी को ज़्यादा महत्व देते हैं। यही प्रवृत्ति उनकी रचनाओं में भी प्रतिबिम्बित है। यहाँ सरलता से मतलब जीवन की सहजता एवं स्वाभाविकता से है। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'सरल' शब्द के लाक्षणिक एवं सांकेतिक अर्थ का इज़हार भी किया है। उसका अर्थ देश के आम आदमी से जुड़ा है। अतः उसका तालूक हर चतुर आदमी के छल-छन्द का शिकार होने केलिए मजबूर कमज़ोर व्यक्ति से है। उन्होंने सर्वदा अपनी रचनाओं के ज़रिए साम्प्रदायिकता और उससे जुड़े तत्ववाद पर खुलकर और पर्याप्त तल्खी के साथ लिखा है। साम्प्रदायिक जुनून के खिलाफ एक अभियान दर्ज करने की कूवत उनकी रचनाओं में निहित है। वे अपनी कहानियों, उपन्यासों व नाटकों में ज़्यादातर मुस्लिम साम्प्रदायिकता और तत्ववाद की गहरी खबर देते हैं मगर ऐसा इसलिए हरगिज़ नहीं है कि जाती तौर पर वे मुसलमान है। गैर - मुस्लिम संप्रदायवाद की भी उन्होंने आलोचना की है। यह प्रवृत्ति सचमुच गैर साम्प्रदायिक और धर्म निरपेक्ष लेखक के

दायित्व बोध से जुडी हुई है कि सबसे पहले अपने अपने संप्रदाय की विकरालता को खत्म करें। फलस्वरूप साम्प्रदायिकता का वह संपूर्ण चेहरा उजाग़र होता चलेगा जिसको नेस्तनाबूद करने की ज़रूरत है।

उन्होंने साठोत्तर दौर के नाटकों से एकदम भिन्न तरीके से नाटक लिखना शुरू किया। साठोत्तर नाटककार जैसे लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, आदि के नाटकों की कथ्य चेतना मुख्यतः स्त्री पुरुष संबन्ध, पारिवारिक विघटन तथा नारी जागरण से जुड़ी हुई है। अतः जिन समस्याओं की ओर साठोत्तर नाटककार की निगाहें कम पड़ी है उन मसलों को उसकी गहराई में उतरकर परखने की कोशिश वजाहत द्वारा हुई है। यों कहा जा सकता है कि उन्होंने समाज के एकदम अछूते विषय को अपने नाटकों के कथ्य का प्रधान विषय बनाया।

वे एक सफल नाटककार ही नहीं, प्रतिभा संपन्न रंगकर्मी भी है। उनके मतानुसार हिन्दी नाट्य लेखन की विडम्बना यह है कि हिन्दी की श्रेष्ठ प्रतिभा का पारिश्रमिक नाटक को नहीं मिल रहा है। वे इसके सबबों से भी नावाक़िफ नहीं है और उनका विकल्प है कि हिन्दी में प्रायः सभी लेखक जो नाटक लिख रहे हैं वे नाट्य लेखन के प्रति पूर्णतः समर्पित हो।

'ओ जन्म्या ई नई', 'समिधा', 'इन्ना की आवाज़', 'फिरंगी लौट आए', 'वीरगति' व 'सबसे सस्ता गोश्त' सरीखे नाटकों में असग़र वजाहत ने शासक एवं शोषकों की क्रूरता में दबी आम आदमी की बदहालत को वाणी दी है। सामाजिक सद्भावना इनकी नाट्य रचनाओं की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उनके प्रत्येक नाटक अपने परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता का परिचायक है। अतः

वे एक ऐसे रचनाकार है जो सामाजिक जीवन की गहराइयों में उतरने की क्षमता रखते हैं।

असग़र वजाहत के कथात्मक गद्य में विदग्धता व व्यंग्य का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य है। इसकी समृद्धि की वजह वे परम्परागत कहानी से एकदम अलग शैली को वे अपनी कहानियों में आत्मसात करते हैं। परिणामतः यह स्वतन्त्र व्यंग्य और उसमें निहित दृष्टान्त सा महसूस होता है। उनकी कई कहानियाँ तो केवल संवाद है। अतः संवादों के माध्यम से ही यहाँ कथावस्तु चरित्र और उनके ऐतिहासिक यथार्थ उपलब्ध हो जाते है।

असग़र वजाहत ने अपनी कहानियों का सृजन समाज की बारीकियों से संपृक्त होकर किया है। उनकी ज़्यादातर कहानियों के मूल में साम्प्रदायिक राजनीति की साजिशों का अंकन है। फिलहाल साम्प्रदायिकता का खौफनाक वातावरण पहले से भी भीषण एवं बीहड़ बन पड़े हैं। उनके समकालीन कहानीकारों में स्वयं प्रकाश की 'पार्टीशन', 'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा?' जैसी कहानियों के लिहाज़ से यह बात साफ निकलती है कि दोनों की विचार भूमि समान विशेषताएँ रखती है। प्रेमचन्द की कहानियों से असग़र वजाहत बेहद प्रभावित हुए है। श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने असग़र वजाहत के कहानीकार में प्रेमचन्द तथा उर्दू कहानीकार मंटो का सुखद मिश्रण महसूस किया था।

एक समानान्तर जीवन की परिकल्पना करनेवाले उनके उपन्यास मौजूदा सामाजिक विसंगतियों का दस्तावेज़ है। 'रात में जागने वाले', 'पहर दोपहर', 'सात आसमान' और 'कैसी आगी लगाई' में जीवन का अन्तरंग

वर्णन दरपेश हैं। किस्सागोई का सहारा लेकर बहुत ही तनमयता से इन्होंने साबित किया है कि सामाजिक चेतना इनके सृजन की पहली शर्त है। एक उपन्यासकार के रूप में असग़र वजाहत ने ज़िन्दगी की हक़ीक़त को इस तरह चित्रित किया कि उससे जीवन और समाज का मानवीय भवितव्य तय होता है। असग़र वजाहत का शायराना अंदाज़ उनकी भाषा का भी शायराना अंदाज़ है जो बहुत प्रभावशाली है। ऐसे में भाव, भाषा, कथा शैली और नई औपन्यासिक संरचना की दृष्टि से उनके उपन्यासों की सराहना तो अवश्यम्भावी है, साथ ही इन्हें हिन्दी के बेहतर उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

उनके रचनाकार व्यक्तित्व ने एक भयमुक्त समाज व देश का सपना देखा था। उन्होंने अपने चौतर्फ़ा की ज़िन्दगी के नब्ज़ को जाना है। उनकी कृतियाँ मनुष्य जीवन की खौफनाक त्रासदियों व विद्रूपताओं को बेहद सरलता से हमारे सम्मुख रखती हैं और उनका एक आस्थावादी विकल्प दर्ज करती हैं। देश के भविष्य के प्रति उनका मन सर्वथा आशंकित है।

उनका झुकाव मार्क्सवादी विचार धारा की और है। वे कई स्वयं सेवी गतिविधियों में सजग शामिल हैं। वे दुनिया भर के कई गैर सरकारी संगठनों में सक्रिय भागीदार है। शानदार कमरे में स्वच्छन्द होकर महज़ साहित्य सृजन करने को रचनाकार की श्रेष्ठता वे हरगिज़ नहीं मानते। बल्कि वे सामाजिक गतिविधियों के बरक्स व्यावहारिक तौर पर विद्रोह पहल करने के हिमायती है। चूँकि उनकी संवेदना आम आदमी के प्रति है। 'कैसी आगी लगाई' की भूमिका में 'एक अनपढ़ का विलाप' के बतौर उन्होंने सूचित किया है -'मेरी प्रतिबद्धता संसार के सबसे कमज़ोर आदमी से है।'

असग़र वजाहत समकालीन हिन्दी के उन विरले रचनाकारों में मुख्य है, जो न केवल साहित्य की अनेक विधाओं बल्कि साहित्येतर अनेक सृजन माध्यमों में भी एक साथ क्रियाशील है। इन्होंने मध्यवर्गीय जीवन के साथ गरीबी रेखा के नीचे दबी ज़िन्दगी पर अपनी तूली चलाई है जो अपनी अस्मिता की लड़ाई में संघर्षरत है, जो टूट गया है, किन्तु हताश - निराश नहीं हुआ।

उनको दुःख है कि फिलहाल धर्मनिरपेक्षता, देशभक्ति, भावनात्मक एकता और राष्ट्रीयता केवल नारे बनकर रह गई है। उनकी कामोबेश रचनाएँ नागफनी के जंगल से हिन्दुस्तान को बचाने की प्रेरणा देती हैं। उनकी साफगोई है कि फिलहाल मुल्क में सारे साम्प्रदायिक और अवसरवादी तत्व मिलकर जनता को धर्म, जाति और सम्प्रदाय के आधार पर भ्रमित कर रहे हैं और आर्थिक रूप से एक बार फिर परावलम्बन के जाल में फँसा रहे हैं। नकली देश - भक्ति और कौम के रहनुमाओं पर असग़र ने अपनी तमाम कृतियों के ज़रिए व्यंग्य बाण भेजे है।

उन्होंने अपने नाटकों के ज़रिए एक महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है कि वर्तमान माहौल में धार्मिक संगठन, सन्त, महन्त, नए अवतारों का सृजन करके भारतीय समाज की मूल उदारतावादी परम्पराओं के ताने - बाने को उधेड़ रहे हैं। अपने धर्म - सम्प्रदाय को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। असग़र वजाहत समकालीन ज़िन्दगी के उन तमाम नासूरों पर उँगली रखते हैं जिन्हें छुपाने की कोशिश हमारे समाज के नियन्ता करते हैं। धर्म, सत्ता, जाति और धनलिप्सा का कोढ़ देश को नष्ट कर रहे हैं, मगर इनके विरुद्ध संगठित आन्दोलन की पहल कहीं भी नहीं। इसके प्रति उनके मन में दुःख है। उन्होंने सूचित किया है - 'दुःख इसलिए है कि बहुत मात्रा में झूठ बोला जा रहा है।

उनकी कथनी और करनी में, जीवन और लेखन में अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से वे प्रेमचन्द की विरासत में आते है। वे अपनी बात जोखिम उठाकर कहते रहे। वे जन साधारण के साथ विश्वासघात करने को सबसे बड़ा दुष्कर्म मानते है। फिलहाल सत्ता के पीछे लोग पागल हो रहे हैं, वास्तविक प्रश्नों को धूमिल करके भ्रम और वाग्जाल के संसार का सृजन कर रहे है, मगर असग़र इन हालातों से समझौता करने और हार मानने को तैयार नहीं; ठीक 'कैसी आगी लगाई' के साजिद के बतौर।

वे देश के साधारण जन से संवेदना के स्तर पर लगातार जुड़े रहे। उसके दुःख दर्द में भागीदार रहे। उनका साहित्य इसका अत्कृष्ठ निदर्शन है। निःसंदेह सृजनकार के व्यक्तिगत जीवन एवं अनुभवों का मूर्त रूप उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रत्येक लेखन के विचार एवं भावनाएँ स्वयं की ज़िन्दगी की प्रतिच्छाया होती है। असग़र के साहित्य में सामाजिक - सांस्कृतिक व धार्मिक स्तर पर विद्रोही तेवर नज़र आते हैं। वे बचपन से ही ज़िद्दी और विद्रोही स्वभाव के थे। इसी वजह वे स्पष्टवादी हो गए। यद्यपि उनका बचपना बेफिक्री एवं मस्ती में बीता तदापि धर्म व रोज़ी रोटी की समझ उन्हें बचपन से ही थी। धर्म के संबन्ध में उनके मन में हज़ारों प्रश्न उठते थे हालाँकि प्रत्येक धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण तटस्थ है। वे हर धार्मिक परम्परा और मान्यता को तोड़ देना चाहते थे जो मानवता से दूर हो। वे इंसाफ एवं इंसानियत को ज़्यादा वरीयता प्रदान करते है। 'ओ जन्म्या ई नई' का मौलवी उनके इस प्रबल व्यक्तित्व का परिचायक है।

असग़र वजाहत जनवादी चेतना के रचनाकार है। उनकी तमाम रचनाएँ इस लिहाज़ से चर्चा का विषय है। उनका साहित्य तत्कालीन सामन्ती, पूँजीवादी और साम्राज्यवादी मूल्यों से संघर्ष करते हैं। उन्होंने अपने कहानियों, उपन्यासों व नाटकों में तहदार ज़िन्दगी की गहरी पर्तों में झाँका है और वे इनसान के उज्ज्वल पक्ष को बाहर लाया है। इन्होंने विद्रूपता, अमानवीयता व साम्प्रदायिक उन्माद में पागल इनसानों पर कलम चलाई। 'मैं हिन्दू हूँ', 'ज़ख्म', 'स्विमिंग पूल' आदि कहानियों को ज़ेहन में रखते हुए बताया जा सकता है कि उन्होंने अपने लेखन को सामूहिक उत्तरदायित्व मानते हुए सामाजिक वैषम्य पर कुठाराघात किया। उन्होंने दोहरे शोषण की शिकार भारतीय नारी की मुक्ति की आकांक्षा एवं आशंका सत्ती, सरला तथा श्यामा के ज़रिए प्रकट की है।

सामाजिक चेतना के लिहाज़ से उनके नाटक एवं कहानियाँ, उपन्यास की अपेक्षा ज़्यादा महत्वपूर्ण है। उनके उपन्यास आत्मकथात्मक है। इसमें फिल्मी दुनिया की अन्दरूनी ज़िन्दगी का इज़हार भी उन्होंने किया है।

तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व साम्प्रदायिक हालातों में उन्हें महसूस हुआ कि हमारा मुल्क जो है आगामी विघटन के कगार पर है। समाज में सर्वदा आम आदमी का ही शोषण बरकरार है। अतएव उनकी प्रत्येक कृति आम आदमी की बदहालत को वाणी देती है।

बेशक उनकी रचनाएँ सामाजिक विषमताओं एवं विद्रूपताओं केलिए जवाबदेह है।

ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

१.	अंधेरे से	असग़र वजाहत भाषा प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९७६
२.	उनका डर तथा अन्य कहानियाँ	असग़र वजाहत शिल्पायन दिल्ली प्र.सं. २००४
३.	कुरआन	मलिक फहद कुरआन प्रिंटिंग प्रेस अल मदीना पी.बी.न. ६२६२
४.	कैसी आगी लगाई	असग़र वजाहत राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००४
५.	चार नुक्कड़ नाटक	असग़र वजाहत पुस्तक मंडप नई दिल्ली प्र. सं. १९९१

६.	पाँच नाटक	असग़र वजाहत प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली प्र. सं. १९९०
७.	मैं हिन्दू हूँ	असग़र वजाहत राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. २००६
८.	सब कहाँ कुछ	असग़र वजाहत किताब घर नई दिल्ली प्र. सं. १९९६
९.	सात आसमान	असग़र वजाहत राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९६
१०.	स्विमिंग पूल	असग़र वजाहत राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९०
११.	संपूर्ण गद्य रचनाएँ (खण्ड तीन)	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना किताब घर नई दिल्ली प्र. सं. १९९२

आलोचनात्मक ग्रन्थ

१	अधूरे साक्षात्कार	नेमिचन्द्र जैन, अक्षर प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९६६
२	अपनी बात	भीष्म साहनी वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९०
३	आज का हिन्दी नाटकः प्रगति और प्रभाव	डॉ. दशरथ ओझा राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली प्र.सं.१९८४
४	आज का हिन्दी साहित्यः संवेदना और दृष्टि	डॉ. रामदरश मिश्र अभिनव प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७५
५	आज की राजनीति और भ्रष्टाचार	नरेन्द्र मोहन राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली प्र. सं. १९९७
६	आज के प्रश्न जाति का ज़हर	राजकिशोर वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००१

७	आधी रात से सुबह तक	लक्ष्मीनारायण लाल राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली प्र. सं. १९७७
८	आधुनिक नाटक का मसीहा: मोहन राकेश	गोविन्द चातक राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७५
९	आधुनिक हिन्दी कविता	सुवास कुमार नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली प्र. सं. १९८९
१०	आधुनिक हिन्दी कहानी	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८९
११	आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	लक्ष्मीनारायण लाल साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद प्र. सं. १९७३.
१२	आलोचना के आगे: उत्तर आधुनिकतावादी और उत्तर संरचना वादी विमर्श	सुधीश पचौरी राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. २०००
१३	इतिहास और आलोचना	नामवर सिंह नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. १९६२

१४	कथा साहित्य के सौ बरस	विभूति नारायण शिल्पायन दिल्ली प्र. सं. २००१
१५	कबीर	आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली प्र. सं. १९९०
१६	कबीर की खोज	राजकिशोर वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र. सं. २००१
१७	कहानी के नये प्रतिमान	कुमार कृष्ण वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. २००५
१८	कहानी नयी कहानी	नामवर सिंह लोकभारती इलाहाबाद द्वि. सं. १९७३
१९	कहानी स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र. सं. १९८४
२०	काव्य और अर्थबोध	त्रिलोचन साहित्यवाणी इलाहाबाद प्र. सं. १९९५

२१	कुछ विचार	प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस बनारस इलाहाबाद प्र. सं. १९६१.
२२	जन नाट्य मंच	सफदर हाशमी राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली प्र. सं. १९८९
२३	जनवादी कहानी: पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक	रमेश उपाध्याय वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २०००
२४	जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता	प्रभाकर श्रोत्रिय भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली प्र. सं. १९९०
२५	ढ़लान से उतरते हुए	निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली प्र. सं. १९८५
२६	दलित हस्तक्षेप	रमणिका गुप्ता शिल्पायन दिल्ली प्र. सं. २००४
२७	दिल्ली का हिन्दी नाटक और रंगमंच	रमेश गौतम अभिरुचि प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २०००

२८	दुर्ग द्वार पर दस्तक	कात्यायनी परिकल्पना प्रकाशन लखनऊ प्र. सं. १९९७
२९	दूसरे शब्दों में	निर्मल वर्मा भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली प्र. सं. १९९७
३०	दृश्यान्तर	नरेन्द्र मोहन किताब घर दिल्ली प्र. सं. १९८५
३१	दृश्य अदृश्य	नेमिचन्द्र जैन वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९३
३२	धर्म और साम्प्रदायिकता	नरेन्द्र मोहन प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९६
३३	धर्म का दुखांत	शंभूनाथ आधार प्रकाशन प्रा. लि. हरियाणा प्र. सं. २०००
३४	नक्सलवादी आन्दोलन	विप्लव दास गुप्त मैकमिलन दिल्ली प्र. सं. १९८१

३५	नया नाटकः उद्‌भव और विकास	नरनारायण राय कादम्बरी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००१.
३६	नयी कविता का आत्म संघर्ष	गजानन माधव मुक्तिबोध राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली प्र. सं. १९८३.
३७	नयी कविता की भूमिका	डॉ. प्रेमशंकर नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्र. सं. १९८८.
३८	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर शब्दकार दिल्ली प्र. सं. १९७८
३९	नई कहानीः संदर्भ और प्रकृति	देवीशंकर अवस्थी राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली प्र. सं. १९७३
४०	नयी रंगचेतना और हिन्दी नाटककार	जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९४
४१	नागार्जुन की कविता	अजय तिवारी वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र. सं. १९९०

४२	नाट्य भाषा	गोविन्द चातक तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८१.
४३	निराला की साहित्य साधना	रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. दिल्ली प्र. सं. १९७२
४४	परिधि पर स्त्री	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९७४.
४५	प्रगतिशील भारतीय साहित्यकारों के छविचित्र	ड़ॉ. वी. आर. शर्मा किताब घर दिल्ली प्र. सं. १९८५
४६	प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ	डॉ. रामविलास शर्मा विनोद पुस्तक मंदिर आगरा द्वि. सं. १९५७
४७	प्रधान मन्त्री कार्यालय से आपात्काल एक डायरी	बिशन टंडन वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००२
४८	बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ	प्रभा खेतान वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००४

४९	बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध	नरेन्द्र मोहन कादम्बरी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९६.
५०	भारत विभाजन की अन्त:कथा	प्रियंवद भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली प्र. सं. २००७
५१	भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास परम्परा	रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि दिल्ली प्र. सं १९७५
५२	भारतीय संस्कृति	नरेन्द्र मोहन प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९७.
५३	भूमण्डलीकरण और उत्तर सांस्कृतिक विमर्श	सुधीश पचौरी प्रवीण प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००३
५४	भूमण्डलीकरण: विचार नीतियाँ और विकल्प	कमल नयन काबरा प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्र. सं. २००५
५५	मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य	रामविलास शर्मा वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८४

५६	मानव मूल्य और साहित्य	धर्मवीर भारती भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्र. सं. १९६०
५७	मानवाधिकार के तकाजे	नन्दकिशोर आचार्य वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर प्र. सं. २००३
५८	मुक्तिबोध की कविताई	अशोक चक्रधर राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्र. सं १९९८
५९	मेरा पन्ना	कमलेश्वर शब्दकार दिल्ली प्र. सं. १९७८
६०	मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक	नेमिचन्द्र जैन राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली प्र. सं. १९९३
६१	यशपालः पुनर्मूल्यांकन	प्रो. कुँवरपाल सिंह शिल्पायन दिल्ली प्र. सं. २००४
६२	रचना और राजनीति	प्रेम शंकर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९९

६३	रचना के सरोकार	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९६
६४	रीतीकाव्य की भूमिका	डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र. सं. १९९०
६५	रंगभाषा	गिरीश रस्तोगी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली प्र. सं. १९९९
६६	लक्ष्मी नारायण लाल की नाट्य साधना	नरनारायण राय सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७९
६७	विद्रोह और साहित्य	नरेन्द्र मोहन देवेन्द्र इस्सर साहित्य भारती दिल्ली प्र. सं. १९७४
६८	शताब्दी के ढ़लते वर्षों में	निर्मल वर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली प्र. सं. १९९५.
६९	सपने कहाँ गए?	विद्यानिवास मिश्र प्रभाव प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. १९९८

७० समकालीन कविता: संप्रेषण विचार: आत्मकथा — वीरेन्द्र सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. १९८७

७१ समकालीन कहानी की पहचान — डॉ. नरेन्द्र मोहन, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. १९७७.

७२ समकालीन हिन्दी कविता — ए. अरविन्दाक्षन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. १९९८

७३ समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच — जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. १९७८

७४ समकालीन हिन्दी नाटककार — गिरीश रस्तोगी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. १९८२.

७५ समकालीन हिन्दी साहित्य: विविध परिदृश्य — रामस्वरूप चतुर्वेदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. १९९५.

७६ समकालीन साहित्य चिन्तन — डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. महीप सिंह, ज्ञान गंगा, दिल्ली, प्र. सं. १९९५

७७	समय समाज साहित्य	प्रभाकर श्रोत्रिय किताब घर नई दिल्ली प्र. सं. २००२
७८	सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे	रमणिका गुप्ता वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं २००४
७९	साम्प्रदायिकता: तथ्य एवं मिथक	राम पुनियानी वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. २००५
८०	साहित्य और सामाजिक मूल्य	डॉ. हरदयाल विभूति प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८५.
८१	साहित्य और सामाजिक संदर्भ	शिवकुमार मिश्र कला प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७७
८२	साहित्य का खुला आकाश	विद्यानिवास मिश्र प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९६
८३	साहित्य का समाजशास्त्र	डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली प्र. सं. १९८२.

८४	साहित्य की सामाजिकता	मिथिलेश्वर शिल्पायन दिल्ली प्र. सं. २००५
८५	साहित्य की सामाजिक भूमिका	डॉ.देवेश ठाकुर संकल्प प्रकाशन मेरठ प्र. सं. १९८६
८६	साहित्य के बुनियादी सरोकार	कर्णसिंह चौहान अरुणोदय प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९२
८७	साहित्य के समकालीन सरोकार	धर्मेन्दु गुप्त आसेतु प्रकाशन दिल्ली प्र.सं १९९३
८८	स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानी में मानवीय प्रतिभा	हेतु भरद्वाज पंचशील प्रकाशन जयपुर प्र. सं. १९८३
८९	हिन्द स्वराज्य	महात्मागाँधी नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद प्र. सं. १९६८.
९०	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	रामदरश मिश्र राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली. प्र. सं. १९६८

९१	हिन्दी उपन्यास जनवादी परंपरा	कुँवरपाल सिंह अजय बिसरिया नवचेतन प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. २००४
९२	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली प्र. सं. २००२
९३	हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य	मीहप सिंह लिपि प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८०
९४	हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श	डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी अमर प्रकाशन कानपूर प्र. सं. २०००
९५	हिन्दी उपन्यासः सामाजिक चेतना	डॉ. कुँवरपाल सिंह पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७६
९६	हिन्दी उपन्यासः स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९७
९७	हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास	हेतु भारद्वाज पंचशील प्रकाशन जयपुर प्र. सं. २००५

९८	हिन्दी कविता: आधुनिक आयाम	रामदरश मिश्र वाणी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७८
९९	हिन्दी कहानी अस्मिता की तलाश	मधुरेश आधार प्रकाशन पंजकूला प्र. सं. १९९७.
१००	हिन्दी कहानी एक अन्तरंग पहचान	रामदरश मिश्र नाशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र. सं. १९७९.
१०१	हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति	डॉ. हरदयाल वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. १९९५
१०२	हिन्दी नाटक आजकल	डॉ. जयदेव तनेजा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. २०००
१०३	हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास	डॉ. दशरथ ओझा राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली प्र. सं. १९९१
१०४	हिन्दी नाटक और रंगमंच: पहचान और परख	डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिपि प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९७५

१०५ हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध — सूरज पालीवाल, शिल्पायन, दिल्ली, प्र. सं. २००८

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. The social Background of Indian Nationalism — A.R. Desai, G.C. Oxford University Press, Bombay Year, 1948.

पत्र - पत्रिकाएँ

	नाम	अंक
१	अक्षरा	५० अक्तूबर दिसंबर २०००
२	आउटलुक	३० अक्तूबर २००६
३	आजकल	दिसंबर २००६
४	आलोचना	जनवरी मार्च २००४ जुलाई दिसंबर २००२
५	इंडिया टुडे	१५ अप्रैल २००६
६	कथन	अप्रैल जून २००२
७	कथादेश	मई १९८३ जुलाई २००३ नवम्बर २००४ दिसंबर २००४ फरवरी २००६
८	ज्योत्स्ना	१९९० अंक ४
९	नटरंग	अंक ४८ अप्रैल- दिसंबर अंक ४९ १९९५

१०	नव भारत टाइंस	१९ जनवरी २००३ २६ नवम्बर २००६ ६ मई २००७ २५ मई २००८
११	नुक्कड़	जुलाई दिसम्बर २००१ जनवरी - जून २००२
१२	पक्षधर वार्ता	जनवरी अप्रैल २००८
१३	भाषा	मार्च जून १९८३
१४	मधुमती	मई २००२
१५	समकालीन भारतीय साहित्य	अप्रैल जून १९९५ जुलाई सितंबर १९९५
१६	समयान्तर	फरवरी २००८
१७	साक्षात्कार	अप्रैल मई १९८६ मई १९९९ अप्रैल २००३ अप्रैल २००६
१८	साहित्य अमृत	फरवरी २००२
१९	हंस	जनवरी १९९९ फरवरी १९९९ अगस्त १९९९ फरवरी २००१ मार्च २००३ मार्च २००६